पर्यावरण, प्रकृति और मानव

प्रो० बी० एल० गर्ग
एम एस सी

अभिनव प्रकाशन, अजमेर

ISBN 81-85245 24-X

✲ प्रथम संस्करण 1990

✲ प्रकाशक
अभिनव प्रकाशन
पहली मंजिल, 56 कचहरी रोड
पोस्ट बॉक्स नं 118
अजमेर—305 001

✲ मुद्रक
स्वस्तिक प्रिन्टर्स
हाथी भाटा अजमेर

✲ मूल्य पचहत्तर रुपये

Paryavaran, Prakarati Aur Manav By B L. Garg Rs 75/-

अनुक्रम

□ □

सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य मे पर्यावरण

भारतीय सस्कृति म पर्यावरण के प्रति सवेदनशील जागरूकता वैदिक काल से ही मिलती है। अथववेद में लिखा है—

'माता भूमि पुत्रोऽह पृथिव्या'

भूमि माता है। मैं पृथ्वी का पुत्र हू।

वैदिक ऋषि को प्रकृति के विभिन्न घटक पवत, वन, नदी आदि सहोदराए जान पडते थे। यथा—

गिरयस्ते पवत हिमवन्तोऽरण्यते पृथ्वी स्योनमस्तु —अथव

(हे पथ्वी) तरे पवत, तेरे हिमावृत शत्य, तेरे अरण्य सुखदायक हो।

केवल यही नही, वैदिककाल का मानव प्रकृति के प्रति सवेदनशील तो था ही, साथ ही उसका सौन्दय-बोध भी विकसित था। उसे धरती का सौन्दय इतना प्रिय था कि वह उसे अनन्तकाल तक देखत रहने की कामना करता था। यथा—

यावत तेभि पश्याभि भूमे सूर्येण मेदिना।
तावन्मे चक्षुर्माभिष्टोत्तरामुत्तरां समाम्॥

हे भूमि! प्रकाशित सूय के साथ जब तक तेरी ओर देखता रहू, तब तक वष वर्षान्तर तक मेरी दृष्टि क्षीण न हो।

मा ते मर्म विभ्रग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम। —अथर्व

हे पवित्र करने वाली भूमि! मैं तेरे हृदय को आघात न पहुचाऊ।

कवयित्री महादेवी वर्मा के शब्दो म आज के वैज्ञानिक युग मे जब पृथ्वी से सब कुछ लकर भी उसे नष्ट करने के साधन खोजता रहता है, वैदिक मानव की यह भावना पर्यावरण की विशुद्धता के प्रति हम मे सजग दृष्टि प्रदान करन के लिए यथेष्ट है।

—डॉ रामगोपाल गोयल

पर्यावरण और मानव

प्रकृति ही मानव का पर्यावरण और यही उसके ससाधनो का भण्डार है। आज का मानव प्रकृति की गोद मे पलकर भी अपनी स्वय की अज्ञानता के कारण तथा वैज्ञानिक व तकनीकी जानकारी के अहवश, पर्यावरणीय ससाधनो का क्रूरता के साथ दोहन करने मे लिप्त है। गत 25 वर्षों से पारिस्थितिकविदो ने समझने व समझाने का अथक प्रयास किया है कि दिक् व काल की सीमाओ मे हमारे ससाधन सामित ही हैं। अति उपभोगी सभ्यता म औद्योगिक उत्पादन प्राकृतिक ससाधनो और ऊर्जा के भण्डारो पर ही निभर हैं और यह दोनो ही निश्चित रूप मे उदारता व त्वरित गति से उपयोग मे लाये जा रह हैं व क्षीण हो रहे हैं। इस प्रक्रिया म ससाधनो द्वारा पोषित जीव-तन्त्र सकीण, दूषित तथा विषाक्त होता जा रहा है। आज विज्ञान ने मानव को एक चौराहे पर ला खडा किया है जिसके दो विकल्प हो सकते है। प्रथम विकल्प विवेक, मितव्ययता और नतिकता का लम्बा मार्ग अथवा दूसरा विकल्प-पर्यावरण विनाशक विलासमयी उपभोग मूलक सस्कृति का मार्ग ?

हमारे वेद, पुराण, उपनिषद् तथा अय शास्त्रो मे धरती को माता कहकर सम्बोधित किया है और प्राकृतिक शक्तियो को वदनीय माना गया है। यह भाव केवल इसलिय अभिव्यक्त किया गया है कि धरती माता हमारी व सम्पूण प्राकृतिक शक्तियो, की जननी व पोषक है। पथ्वी तथा प्राकृतिक शक्तियो के बीच सतुलन पर ही मानव का अस्तित्व निभर है। यदि प्रकृति का सन्तुलन गडबडा जाये तो उसका अस्तित्व ही काल ग्रसित हो जायेगा। सम्भवत यही कारण है कि मनीषियो ने धरती तथा उसके प्राकृतिक ससाधना के सरक्षण का सदेश दिया है। प्रकृति का मानव के साथ जो गहन रिश्ता, जिस परिप्रेक्ष्य मे भारतीय प्राचीन ग्रथो मे दर्शाया गया है वैसा अय स्थाना पर मिलना दुलभ है। मानव तो इस अनन्त ब्रह्माण्ड मे एक अशमात्र लघु प्राणि है।

यह ब्रह्माण्ड जो अपार शून्य के रूप मे दृष्टिगत है ज्ञान की हमारी सीमा रेखा—सौर परिवार तक ही है जिसमे हमारी धरती के अतिरिक्त बुध, शुक्र, मगल, बृहस्पति, शनि, अरुण, वरुण व यम वणनीय हैं। इस धरती को छोडकर अय किसी ग्रह पर 'जीवन की उपस्थिति प्रमाणित होना

शेष है। पृथ्वी पर ही जीवन के नाना रूप लघु से लघुतर व वृहत से वृहत्तर दिखाई पडते हैं। परन्तु जिस निर्दयता के साथ हम इस धरती माता को लूट रहे हैं, सचमुच ही हमारी प्रगति के लिये शुभ नहीं है। प्राकृतिक समाधनो का दुरुपयोग, असमय म मानव विनाश का प्रतीक है। पृथ्वी पर यदि हम उसकी अजैविक सम्पदा तथा जैविक ससाधनो को भावी पीढियो के लिये बचाकर नहीं रखेंगे तो हमारी कृतघ्न पीढी इसके लिये कदापि क्षमा नही की जावेगी।

'सुजलाम् सुफलाम शस्यश्यामलाम्" की सुखद कल्पनायें भावी पीढियो के लिये अवश्य ही एक कहानी मात्र बन कर रह जावेगी। महात्मा गाँधी के शब्दो म यदि कहू कि भावी पीढियो के हित को सोचे बिना, धरती को विनाश के कगार पर ला खडा करना, केवल हिंसा ही होगी।

'माँ धरती हमारी सभी आवश्यकताओ की पूर्ति करती है, किन्तु हमारी सभी इच्छाओ और लालसाओ तथा अभिलाषाओ की नही। अतएव हमको अपने अस्तित्व के रख-रखाव के लिये, अपनी इस जननी की हर प्रकार से रक्षा करनी होगी। इतिहास साक्षी है कि मानव के क्रूर हाथो स सम्पन्न हुई विनाशलीला मे कितनी ही जीव प्रजातियाँ नष्ट हो गयी है तथा अ य कई विनाश के कगार पर खडी है। 19वी तथा 20वी शताब्दी मे हुए सभ्यता एव औद्योगीकरण के तेज प्रसार के कारण पक्षीजगत् अधिक प्रभावित हुआ। यूरोप, अमेरिका, अफ्रीका तथा एशिया के महाद्वीपो मे लाखो हेक्टयर भूमि पर से वनो का अविवेकपूर्ण कटाव हुआ। नये वन कम लगाये गये या लगाये ही नहीं गये। इसका नतीजा यह निकला कि वे वन जो पक्षियो के आवास स्थल थे, जहा वे अपने घोसले बनाते थे, और अण्डे देते थे, मानव क निमम हाथो द्वारा छीन लिये गये। तात्पय यह कि घोसला बनाने लायक उपयुक्त स्थानो के अभाव मे पक्षियो के समूह के समूह उस स्थान को छोडकर अन्यत्र चले गये और स्वय को नये वातावरण के अनुसार ढालने लग। जो पक्षी प्रजातिया ऐसा करन मे असमर्थ रही, वे धीरे धीरे लुप्त हो गई। अब तक वनस्पतियो के भी अनेक समूह धरती के गभ मे समाहित हो गये हैं, इनमे बहुतो के चिन्ह धरती मे मिल जाते हैं। पुरावनस्पतिशास्त्र के अध्ययन से अनेक पौधो का पता चलता है जो कालान्तर म पाये जाते थे किन्तु वे अब विलुप्त हो चुके हैं।

सम्पूर्ण विश्व मे पर्यावरण के प्रति व्यापक चेतना का जाग्रत होना, तथा व्यक्तिगत स्तर पर भी उत्तरदायित्व पूर्ण भावना का उदित होना, इस शताब्दी की सबसे महत्वपूर्ण घटना है। सवप्रथम 1972 म स्वीडन की राजधानी 'स्टॉक होम' म सम्पन्न हुए पर्यावरणीय सम्मेलन म यह बात

उभर कर सामने आयी कि पर्यावरण संरक्षण आवश्यक हो गया है और तभी विश्व स्तर पर संरक्षण हेतु नित्य नये-नये साधनो, प्रयासो व खोजो को बल मिलता जा रहा है। संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा भी प्रसारित अपील 'ओनली वन अर्थ' (केवल एक ही धरती) वर्तमान मे सम्पूर्ण दुनिया के लोगो की एक आवाज बन गई है। इसी संदर्भ मे शुकदेवप्रसादजी, संयोजक, 'अखिल भारतीय पर्यावरण गोष्ठी' की यह पंक्तियां अत्यन्त सारगर्भित हैं--

"धरनी माता को प्रणाम। वन्दनीय तरुओं को नमन्॥
सूर्यदेव को नमस्कार। जलदेवता को प्रणाम्॥"

भारतीय मनीषियों ने समूची प्रकृति ही नहीं, वरन सभी प्राकृतिक शक्तियों को पूजनीय माना है। ऊर्जा के अपरिमित स्रोत को देवता के रूप मे मान्यता दी है — सूर्यदेवो नमः'। वस्तुस्थिति यह है कि सूर्य हमारा अर्थात इस पृथ्वी ग्रह का जीवनदाता है। बिना इसके वनस्पतियो तथा परोक्ष मे अन्य जीवो का अस्तित्व संभव नहीं है। वैदिक काल मे ऋषि-मुनियो ने तभी तो यह कामना अभिव्यक्त की है कि सूर्य कभी हमसे जुदा न हों। सूर्य को तो जगत की आत्मा उद्घोषित किया है। उपनिषदों ने सूर्य को प्राण की संज्ञा दी है। कहना होगा की सूर्य मानव-मात्र मे, सभी प्राणियो मे, वनस्पतियो मे जीवन का संचार करता है।

सागरो की अतल गहराइयो मे अरबो वर्ष पूर्व, जीवन का जो आदि रूप पनपा था, उसमें सूर्य की किरणों से ही जीवन संचारित हुआ था। यह प्रक्रिया आज भी निरन्तर जारी है। वनस्पतियां सूर्य की किरणों से ही ऊर्जा प्राप्ति कर आहार का सृजन करती हैं तथा उन्ही से अन्य प्राणधारी जीव-जन्तु अपना पोषण करते हैं। यदि जीवनदाता के रूप में [illegible] के प्रतीक की कल्पना की गई थी तो उसका औचित्य था। आज [illegible] शाश्वत मूल्यो को बिसराया नहीं गया है और घर का द्वार [illegible] ओर रखा जाता है ताकि सूर्य का प्रकाश घर मे चारों ओर [illegible]।

उपनिषदो मे वायु की भी व्याख्या की गई है। [illegible] अवधारणा निहित है। इनका कहना था कि वायु [illegible] वास करता है। भारतीय संस्कृति मे जल का [illegible] वरुण देवता इसी का पर्यायवाची हैं। [illegible] (नदियों) के किनारे उदित हुई, क्यो [illegible] मूल्य बदल गये हों परन्तु हमारी [illegible] पोखरों में मल-मूत्र विसर्जन [illegible] भी स्वीकारा जाता है कि [illegible]

[illegible]

पदार्थों को नहीं त्यागें। इसीलिये ऋषि-मुनियों ने सदैव शुद्ध एव पवित्र जल की उपलब्धता की कामना की है यथा,—

'शुद्धा न आपस्त वे क्षरतु ।'

अर्थात-हमारे शरीर के लिये शुद्ध जल सदैव प्रवाहित होते रहे।

परम्परा यह रही थी कि तालावो व सरिताओ मे स्नान करने से पूव कक्र फेंककर सोयी हुई पवित्र-पाविनी गगा को जगाया जाता था। तत्पश्चात ही वन्दना क उपरान्त, उसम स्नान किया जाता था। परन्तु आज हमारी सोच की सवेदनशीलता न यान्त्रिकता को झकझार डाला है। हम अपनी थाती मे निहित शुभ सकल्पा को समझने मे असमथ रहे है और आज की तकनीकी सस्कृति की ओर द्रुत गति से दौड रहे हैं। यह कैसी त्रासदी है? जिस पवित्र गगा के विषय मे, हम आदि काल से सोचते आ रहे हैं कि उसक दशन मात्र से ही मुक्ति का माग खुल जाता है। परन्तु हाय र 'आधुनिक तकनीकी प्रसाद'! आज गगा सहित अ य सभी नदिया दूषित हो चुकी हैं। आज के जीवन मूल्यो व शैली मे अदभुत बदलाव आ गया है कि माँ-गगा शहरो का मैला तथा फक्टरियो की गदगी ढोते-ढोते इस कदर प्रदूषित हो गई है कि उसका पानी पीने योग्य ही नही रह गया है, वह अनेक प्रकार का बीमारियो का घर बन चुकी है। औद्योगिक विकास की यह कैसी गाथा है कि हमारी जीवनदात्रा नदिया की निर्मलता पवित्रता व पावनता को ही नष्ट कर दिया गया है।

भारतीय सस्कृति व सभ्यता मे वृक्षो को भी पूजनीय माना गया है। केला वट, पीपल, तुलसी आदि इसक अनुकरणीय उदाहरण हैं। भारतीय आयुर्विज्ञानियो का भी मानना है कि विश्व म एसी कोई वनस्पति नही है जिसका औषधि के रूप मे उपयोग नही किया जा सके। सम्भवत् इसी कारण वृक्षो को भी वन्दनीय समझा गया है। हम देवता उसी को मानते है जो नि स्वाथ भाव से दूसरा की सवा मे तत्पर रहे और हमेशा ही कुछ देता रहे लेवे कुछ नही। वक्ष अपनी उत्पत्ति के साथ ही अनेक रूपो म प्राणि जगत् को कुछ न कुछ देता ही है। इसलिये पुराणों मे वक्षो के लिये कहा गया है।

मूले ब्रह्मा त्वचा विष्णु साखायाम् महेश्वरम ।
पत्रम, सवदेवानाम् वृक्ष देव नमास्तुते ।

वक्ष फूल-पत्ता तथा फलो के बोझ को वहन किय रहते है धूप की तपन तथा शीत की पीडा का सहन करत रहते है पर तु दूसरो क सुख क लिये अपना शरीर सदव अर्पित करन मे कभी नही थकत। ऐसे वन्दनीय श्रेष्ठ को शत् शत नमन। यह एक मार्मिक भावना है वक्षा के प्रति अनुराग की जो

अन्य देशो की सस्कृतियो मे नही मिलेगी । यहा वृक्ष का पुत्र से भी ऊचा स्थान दिया गया है इसके काटने की बात तो सोची भी नही जा सकती परन्तु वाह र, आधुनिक सभ्यता !

आज हमारे नैतिक-मूल्यो मे गिरावट आ गई है, हम अपनी सुसास्कृतिक भाषा को भी सुन पाने मे सकोच कर जाते है। यह इसी का कुपरिणाम है कि प्रकृति को दोनो हाथों से लूटन व नष्ट करने की होड मानव मात्र मे लगी हुई है। हमारी अर्वाचीन सस्कृति प्रकृति मे देवी का दशन करती थी, उसकी पूजा करती थी, उसको मॉं के रूप मे देखती थी, परन्तु आज इस मूल्यविहीन युग मे, हम अपनी स्वय की पहचान को भूल गये हैं, नैतिक मूल्यो की रक्षा करने का तो प्रश्न ही नही उठता ! मनुष्य जाति व प्रकृति के बीच जो रिश्ता कायम था, वह नापाक हो गया है। मानव अपने ही कुकृत्यो से अपने पर्यावरण को इस कदर बिगाड लिया है कि वह आज जीने के योग्य नही रह गया है।

मानव के सम्मुख, प्रकृति को वश मे करने की प्रवृति बलवती हाती जा रही है, तथा उसे लूटन का नतीजा रहा है कि ऊर्जा स्रोत के समस्त भण्डार-कोयला, पैट्रोल, डीजल आदि जवाब देने लग हैं। यह हमारी औद्योगिक युग की बढती हुई मागो को पूरा करने म असमथ सिद्ध हो रहे हैं। प्राकृतिक शक्तियो मे जो हम आज तक देवी-देवताओ के स्वरूप को देखते आय थे, उसका तात्पय यही है कि हम उनकी रक्षा करें, उनसे अनुराग की भावना रखें तथा स्वस्थ एव सन्तुलित जीवन व्यतीत करें। परन्तु आज क समाज म न ता जल ही शुद्ध रह गया है और न वायु। वायु म विप, नदियो मे विप, वादियो मे विप घाटियो मे विप यहाँ तक कि मानव आचरण म भी विप घुल गया है। जिस सस्कृति मे भूमि तथा सभी प्राकृतिक सम्पदाय यथा-जल, वनस्पतियाँ आदि पूजा अचना की वस्तुऍं समझी जाती रही हो उनके पीछे छिपे रहस्य दूरगामी परिणामो को अभिव्यक्त करत है। उन लोगो को यह पता था कि एस ससाधन मानव की महती आवश्यकताऐ है, तथा उनका अपव्यय होने पर यथाशीघ्र ही चूक जायेंगे और यह लूट खसोट समस्त मानव समाज के लिये सकट पूण तथा घातक सिद्ध होगी। कुछ ही शब्दा म कहा जा सकता है कि मशीनी क्रान्ति का नशा यदि इसी प्रकार मानव पर हावी होता रहा तो निश्चिय ही हमे मानवीय रिश्तो को तिलाजली देकर, पाश्विक जीवन जीने पर आमादा होना पडेगा।

आज हम 21वी शताब्दी मे प्रवेश करने के लिये उत्सुक है और उसकी देहली पर दस्तक दे रहे है, परन्तु हमे स्वय को आकलन करना है कि हम अपनी किन विरासतो के साथ आने वाली शताब्दी मे प्रवेश चाहग ? प्रकृति से निरन्तर कटन वाली, निष्ठुर तुकबंदी की संस्कृति, मूल्यरहित जीवन, झूठी

विरासतों तथा हास्यास्पद नैतिकता के साथ हमे 21वी शताब्दी मे प्रवेश करना है, ऐसे ही नाजुक व मार्मिक अवसर पर एक आह्वान की याद ताजी हो जाती है—'सम्पूर्ण वसुन्धरा एक परिवार है तथा वह सुखद एवं कल्याणमयी हो।' यह तभी संभव है जब हम यह संकल्प करें की पृथ्वी तथा उसके ससाधन व छिपी सम्पदायें सुरक्षित बनी रहें। इसकी अनुपालना मे हम अपनी धरती को हरी-भरी बनाये रखें। फिर भी यह कहना पड़ेगा कि मतिभ्रम के कारण मनुष्य यह दम करने लगा है कि उसने अपने वातावरण पर सौ फीसदी प्रभुता प्राप्त कर ली है। परन्तु उसका यह समझना, उसकी सबसे बडी भूल है। वह अपने निवास स्थान पर या कार्यालय को पूर्ण वातानुकूलित कर लेता है और सोचने लगता है कि जलवायु संदर्भ मे पूरी तरह स्वतन्त्र हो गया है तो यह वास्तविकता नही है—उसे अपनी निकटस्थ वनस्पति व प्राणी वर्ग को भी वातानुकूलित सुसज्जित करना होगा। परन्तु इस अप्राकृतिक वातावरण मे वह प्राकृतिक उष्णता, शीत, सूखा, व अन्य जलवायवीय क्रियाओ से अछूता नही रह सकेगा। इसी प्रकार से यदि किसान यह मानने लग जाय कि उसने आधुनिक वैज्ञानिक व प्रौद्योगिकी के विकास के परिणामस्वरूप अपने खेतों को पूर्ण नियन्त्रित कर लिया है तो वह एक भारी भूल कर रहा है कि फास्फोरस का एक अंश अवश्य ही पहाड़ियों से झीलों मे उसके खेत द्वारा पलायन कर रहा है—और यह इस तीव्रगति से सम्पन्न हो रहा है जो भविष्य मे कल्याण के मार्ग मे केवल रोड़े ही डाल सकता है। नियन्त्रण की बात तो बहुत दूर रह जाती है। यहा जो दर्शन, यथार्थ मे प्रस्तुत है—पारितन्त्र मे मानव का स्थान, भूचक्रणों मे उसका योगदान—को देखते हुए तो प्रकृति पर मनुष्य का पूर्ण प्रभुसत्ता असम्भव है। क्योंकि मानव उसमें स्वयं भी स्वतन्त्र न होकर उस पर आश्रित है और आहार शृंखलाओं मे उसने एक उचित स्थान प्राप्त किया हुआ है। मनुष्य के लिये यह श्रेयस्कर होगा कि वह स्वयं समझले कि अन्य जीवों की भांति वह भी पारितन्त्र का एक आश्रित अंग है।

यह कहते हुए दया का भाव भी उमड़ता है कि मानव जो उत्पादन, निर्माण व प्रदूषण फैला रहा है तथा प्राकृतिक ससाधनों व सम्पदाओं का क्रूरता से दोहन कर रहा है जिससे कि समस्त आर्थिक पुरस्कार प्राप्त हो जाय साथ ही पूर्ण वैज्ञानिक आरक्षण भी। सभ्यता के आरम्भ के दिनों मे तो उसे अपने जीवनाधार के लिये पर्यावरण के सुधार व विकास की अनुमति दी जा सकती थी परन्तु आज के परिवेश मे यह अनुमति सर्वथा अनुचित होगी, उसे भी कुछ विशिष्ट नियमों मे बांधना होगा।

पर्यावरण व प्रदूषण की समस्या केवल राष्ट्रीय ही नही वरन अन्तर्राष्ट्रीय है। विभिन्न राष्ट्रो की अपनी भिन्न-भिन्न समस्याएँ हैं। 1947 को स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात सन् 1950 मे भारतवासियो ने भी अपना एक सविधान स्वीकार किया। सविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार जीवन जावन के गौरव, एक सतुलित पर्यावरण मे रहने, सक्रामक रोगो और उनके खतरो से बचाव की गारटी देता है।

भारतीय पर्यावरण म सन्तुलन बनाय रखने के लिए केन्द्र तथा प्रातीय सरकारो ने विभिन्न याय व्यवस्थाओ को स्थापित किया है। सामान्य कानून के अन्तगत भारतीय दण्ड सहिता क द्वारा अनेक अधिनियम पयावरण सुरक्षा हेतु प्रभाव मे लाये गये हैं, जैसे —

1 किसी प्रकार की छूत की बीमारी जो जीवन की सुरक्षा के लिये घातक हो।
2 सामान्य काम म आने वाले जल प्रवाह, स्रोत, झरने तथा पानी के सुरक्षित भण्डार को अपनी मलिनता से खराब करते ह—दड का प्रावधान।
3 जो तत्व वायुमण्डल को प्रदूषित करते हो, जिससे स्वास्थ्य पर हानिकर व प्रतिकूल प्रभाव पडता है, दड व्यवस्था मे आता है।
4 सावजनिक उत्पाती को अपराधी घोषित किया जाता है।
5 पर्यावरण को हानि पहुचाने वाले नागरिक दण्ड दन की परिधि मे आत हैं।

इनमे अनेक सशोधन भी हुए हैं और विशिष्ट कानूनो का भी निर्माण किया गया है, यथा—'वाइल्ड लाइफ (प्रोटक्शन) एक्ट 1970।'

□ □

पर्यावरण तथा उसकी उपयोगिता

जिस वातावरण या परिवेश मे आज हम रह रहे हैं, उसे ही 'पर्यावरण' कहते हैं। हमारे चारा ओर फैला प्रकृति का यह सुन्दर करिश्मा ही वातावरण का सजनकर्ता है। इसके विभिन्न घटको म से ही मानव एक घटक है। पर्यावरण के सभी घटक एक दूसरे पर निभर हैं तथा उन्हें प्रभावित करते है। जिम प्रकार पर्यावरण की सुन्दरता एव भव्यता मानव पर आधारित है, उमी प्रकार मनुष्य का जीवन पर्यावरण पर निभर है। इमलिये पर्यावरण हमारे लिय अत्यन्त उपयोगी एव महत्वपूण है। वैदिक कालीन ऋषि-मुनियो ने हजारा वष पूव ही माना था कि प्रकृति हमारी जननी है जो अपना सब कुछ अपन बच्चा को अपण कर देती है तथा अपन स्वय के लिये कुछ नही चाहती।" मानव एव प्रकृति मे परस्पर प्रगाढ सम्बन्ध है जो एक दूसरे के प्रति प्रेम व सवेदना का सदेश देता है।

मानव जाति के जीवन के लिय जैविक ससाधना का सुलभ होना अनिवाय है। जैविक ससाधना क अन्तर्गत वनस्पतिया व प्राणी जगत दोनो ही का समावेश हाता है। वनस्पतियो मे घास, झाडियाँ पड पौधे सम्मिलित हैं जिनस मानव को 85 प्रतिशत आहार भोज्य पदार्थो के रूप म प्राप्त होता है व शेष 15 प्रतिशत पशुआ के रूप म। यह भी स्मरणीय है कि मनुष्य का भाति पशु भी अपन आहार के लिये वनस्पतियो पर निभर रहते है। पहनने योग्य वस्त्र जलाने के लिये लकड़ी फल, फूल, वृक्षो से ही प्राप्त होते हैं। वस्तुत वनस्पति जगत जीवमण्डल के लिये अस्तित्व का साधन बन गया है। मानव ने जबसे इस भूतल पर आँखें खोली हैं अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिय इन्ही पेड पौधो की ओर देखता आया है। तब यह पथ्वी भी वनो मे पटी पडी थी, वन मानव के लिये साधन सम्पन्न क्षेत्र थे—पेट की अग्नि को बुझाने के लिये रहन, उठन-बठने चलन फिरन सोने जागने, जन्म-मत्यु सभी प्रकार के समाधान वना से मुहय्या हो जाते थे। आज भी मानव अपनी बाल्यवस्था मे झूले अथवा पालने क रूप म वृक्षो से जुडा है वृद्धावस्था मे लाठी के रूप म वक्षा का ही सहारा लेता है। आदि काल म कनफूल, कन्द मूल, मत्स्या के शिकार हतु प्रयुक्त होन वाले उपयोगी शस्त्र आदि को वना स ही ढूढता था। रोगों स ग्रसित होन पर उपचार के अचूक नुस्खा हतु भी वन्य जडी-बूटिया थी। परन्तु सभ्यताओ के विकास क साथ-

साथ वन सिमटते चले गये हैं, छोटे और छोटे होते जा रहे हैं तथा उनकी उपयोगिता का स्वरूप ही परिवर्तित होता जा रहा है।

कृषि युग का आरम्भ होने पर वनो को बेतहाशा काटा जाने लगा, जनसख्या की वृद्धि के साथ साथ खेती का दायरा बढ़ने लगा और स्थायी रूप मे घुमक्कड मानव को एक स्थान पर बसने की प्रक्रिया का आरम्भ हुआ। अब तक वन क्षेत्र के दायरे घटने से कोई विशेष हानि का अनुभव भी नही हुआ, क्योंकि वनो का क्षेत्र विशाल था और वनस्पतियो का बाहुल्य था। परन्तु वतमान मे यह स्थिति नही रही। भौतिक सस्कृति का सबसे बडा कहर सर्वाधिक रूप मे 'पर्यावरण' पर ही बरपा है। इससे वनो एव वृक्षो की अपूरणीय क्षति हुई है। आधुनिक आकडो के आधार पर सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्र का 22 7 प्रतिशत ही वन क्षेत्र रह गया है, जबकि 33 प्रतिशत क्षेत्र मे वनो का होना अनिवाय समझा जाता है। आज वनो के नाम पर केवल उपवन, अभ्यारण व राष्ट्रीय पार्क ही शेष गये है। भारत की स्वतत्रता के पश्चात इन 40 वर्षों मे हमने 6 000,000 करोड रुपये मूल्य के वनो को नष्ट कर दिया है जिसके परिणाम-स्वरूप सूखा, बाढ भू-अवरदन, भू स्खलन, तथा पर्यावरण असतुलन की समस्याओं को बल मिला है। पवतो तथा वनो की छाती को बीधकर बनी सडके व रल की पटरिया तथा उनमे रेंगते वाहनो द्वारा निरतर उगलती, विषैली काबन-डाइऑक्साइड गैस तथा कल-कारखाना से उगलती अन्य गैसें यथा सल्फर डाईऑक्साइड काबन मोनो ऑक्साइड, प्राकृतिक सौन्दय को नष्ट करने पर तुल गये हैं। नदियो के सूखने से जल विहीन होने का भय उत्पन्न हो गया है तथा वितलीय जल (Plutonic water) का स्तर भी निरतर गिरता जा रहा है। वृक्षो की निमम कटाई के कारण वनो का क्षेत्र फल सिकुड गया है और देश म मरुस्थलो का रानव बराबर प्रसार की ओर अग्रसर होता जा रहा है।

पर्यावरण की शुद्धता अच्छे स्वास्थ्य का लक्षण है। मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल की गैस त्रासदी स तो सभी भारतवासी अवगत हैं—3 दिसम्बर 1984 की वह काल रात्रि जो मौत के पजे फैलाये थी—जाडे के मौसम की कडकती सर्दी मे सोया हुआ शात शहर-मत्यु की काली विभीषिका के चक्रव्यूह मे घिर गया। उस रात मे भयावह गैस स्राव ने मृत्यु का जो नगा खेल खेला, सम्भवत हम कभी भूल नही पायेगे। यह एक ऐसा उदाहरण है हमारी उदासीनता का प्रकृति के प्रति, उस पर्यावरण के प्रति जो हमारे जीवन का मूलाधार है। यह पूर्णतया स्पष्ट है कि भोपाल गैस त्रासदी का दुष्प्रभाव उन स्थानो पर न्यूनतम रहा जहा पेड पौधो का बाहुल्य था। यदि सभी स्थानो पर वृक्षो का आधिक्य होता तो निश्चय ही इस प्रलयकारी घटना को बडी

सीमा तक शांत रखना सम्भव हो सकता था। वृक्षा की उपस्थिति विषैली गैसो को आत्मसात करने मे समर्थ है। कार्बन-डाइ आक्साइड तो वनस्पति के लिये खुराक है जो बदले मे जीवनदायिनी प्राण-वायु आक्सीजन लौटाते हैं।

प्रकृति अत्यन्त उदारमना है परन्तु क्रूर व्यवहार को सहन नही कर पाती। जब उस पर आघात किया जाता है अथवा उसका विदोहन किया जाता है, तब वह हमे क्षमा नही करती। वस्तुत वृक्षो व अपने ही पर्यावरण के साथ हमने अवश्य ही क्रूर व्यवहार किया है।

एक व्यक्ति प्रतिदिन लगभग 400 ग्राम कार्बन डाई-आक्साइड गैस श्वसन क्रिया द्वारा बाहर फेंकता है। 70 करोड की जनसंख्या वाले भारत देश के विषय मे आप स्वयं अनुमान लगा सकते है कि वनस्पति के पोषण का मुख्य स्रोत कार्बन-डाई ऑक्साइड ही है जो भोजन वनस्पतियो मे सचित हो जाता है, तथा जीवधारियो के लिये अनिवार्य है। प्राण वायु जीवधारियो के लिये अनिवार्य है। प्राण वायु जीवधारियो को वनस्पति वर्ग से ही प्राप्त होती है। पेड पौधो की रसास्वेदन क्रिया मे पृथ्वी से जल का अवशोषण करते है इसके साथ ही उनमे वाष्पोत्सर्जन भी होता है जो प्रदूषित पदार्थो को स्वच्छ बनाने मे सहायक है तथा वातावरण को भी स्वास्थ्यवर्धक बनाते है।

वर्तमान मे सबसे महत्वपूर्ण आधार बिन्दु है पर्यावरण तथा सम्बन्धित घटको का आर्थिक पक्ष। सभी प्रमुख उद्योग-धन्धो के लिये कच्चामाल पृथ्वी के गर्भ से ही प्राप्य हैं जिसे प्राकृतिक सम्पदा का नाम दिया गया है। स्वयं सिद्ध है कि पर्यावरण पर न केवल स्वास्थ्य, वरन आज के युग की भौतिकता भी निर्भर है। ऊर्जा के प्रमुख स्रोत वृक्ष ही रहे हैं। वनो का उपयोग ईंधन प्राप्ति मे ही नही है वरन वह सौर ऊर्जा से अपने वृक्षो के माध्यम से भोजन सृजन करने मे सहायक है जो प्राणियो के लिये आवश्यक है। पट्रोल व कोयला जो 'जीवाश्म ईंधन' है का ऊर्जा के रूप मे उपयोग भी पर्यावरण का ही एक अंग है। वन से अन्य दूसरे आर्थिक लाभ भी है यथा-जडी बूटिया, इमारती लकडी दियासलाई बीडी उद्योग तारपीन का तेल कागज गोंद मोम, लाख तन्त रेशम रजक, इत्र, सुगंध फल उद्योग, वस्त्र उद्योग किसी न किसी रूप मे हमारे पर्यावरण से ही सम्बन्धित है। सूखा भूकम्प व बाढ आदि प्राकृतिक आपदाओ से जो आर्थिक हानि व विनाश होता है—पर्यावरण के असंतुलन के क्रिया कलाप ही तो हैं।

धम तथा पर्यावरण के मध्य भी प्रगाढ सम्बन्ध रहा है। भारतीय संस्कृति एव सभ्यता इस तथ्य का पुष्ट प्रमाण है। भारत मे सभी धर्मो को सदैव आदर की भावना से देखा गया है और प्राय सभी धर्मो का एकमात्र आदश रहा है 'जिओ और जीने दो"। जीओ और जीने दो का सम्बन्ध न केवल मानव समुदाय तक ही सीमित है वरन इसका चर अचर, जड, जीव, प्रकृति व पर्यावरण से भी अटूट सम्बन्ध है। भारतीय शास्त्रो वेदो, पुराणो, उपनिषदो व अन्य ग्रथो मे हमेशा सूय, अग्नि, जल, वायु इन्द्र आदि की पूजा का प्रावधान रखा गया है। पीपल वट वृक्ष, तुलसी केला आदि पादपो को भी देव तुल्य मानकर उनकी पूजा अराधना की जाती है। कल्प वक्ष तो मानो कामनाओ की पूर्ति का प्रतीक बन गया है। यज्ञो में आहूति देने पर इच्छित फल प्राप्त होत है जिससे प्रकृति विकसित, प्रस्फुटित व प्रफुल्लित होकर मनुष्य मात्र की सभी अभिलाषाओ की आपूर्ति करती है।

ईस्लाम धम मे भी प्रकृति को सजोने सवारने का मानव का पुनीत कत्तव्य माना गया है। धम की आयतो मे जीव हत्या का निषेध तथा पेड-पौधो की रक्षा करने की हिदायते हैं। हजरत अबूबक्र ने भी कहा था फल देने वाल पड़ो को काटना बुरा है तथा फसलो व जानवरो को तबाह नही किया जाना चाहिये। कुरान शरीफ मे भी अनक स्थानो पर इस प्रकार के सकेत मिलते हैं कि खुदा तथा जीव के बीच अटूट रिश्ता है।" कुरान यह भी मानता है कि खुदा आकाश मे रहता है वह प्रेम और दया का आगार है। किन्तु जब इस्लामिया देश राकेट छोडते है तो विस्फोट होता है जिससे खुदा को चोट पहुचती है। मोहम्मद साहब स्वय खजूर के वक्ष के पास बैठकर शिक्षा दिया करते थे, उनका कहना था कि "खुदा स्वय सौन्दय का प्रतीक है और बन्दा उसका पुजारी है।"

जन तीर्थंकरो के उपदेश भी आचार-विचार, रहन-सहन, रीति रिवाज, सत्य, अहिंसा अस्तेय तथा ब्रह्मचय के आदर्शों से परिग्रहित है। उनके उपदेशानुसार प्रकृति की रक्षा करने का सदव प्रयत्न करना चाहिय ताकि पर्यावरणीय प्रदूषणो को रोका जा सके तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया' की कल्पना साकार हो सके।

ब्राह्मण काल मे आर्यो ने प्रकृति को हमेशा पूजा है। द्राविडो ने भी प्राकृतिक उपादानो पत्र, पुष्प, चन्दन को पवित्र माना है तथा उनकी मान्यता थी कि हवन क्रिया से प्रदूषण समाप्त हो जाता है, इसलिय वे पुष्प चन्दन की सुगन्ध से वातावरण को सुरभित बना दिया करते थे। आर्यो ने भी यज्ञ पद्धति को स्वीकारा था इसीलिय आज भी हिन्दू लोग परम्परागत वक्ष जल वायु व अग्नि की पूजा करते हैं।

ईसाई धर्म सदा से ही अहिंसा का पक्षधर रहा है। ईसा मसीह स्वय जीवो पर दया, करुणा मैत्री व अहिंसा मे विश्वास रखते थे। वे भौतिकवादी विचारधारा के कट्टर विरोधी थे। उनकी स्पष्ट मान्यता थी की भौतिकवादी दृष्टिकोण ही असतुलन उत्पन्न करता है। स्वय को सूली पर चढाने वालो के प्रति भी उनके मन मे दया का भाव ही रहा था। ईसा मसीह का मूल सदेश था 'जिओ और जीने दो (live and let live), मानव मात्र से प्रेम करो, जीवो पर दया करो, प्रकृति की पूजा करो तथा हिंसा से दूर रहो'।

कहने का तात्पय यह है कि सभी धर्मों म सदा से ही मानव मात्र के कल्याण की परिकल्पना निहीत है, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को स्वीकारा है तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामाया' की कल्पना से सजोया है। उन्होने जड जीव, चर, अचर के अस्तित्व के लिये प्रकृति के सभी उपादानो के सरक्षण का भी आवहान किया है। आज विश्व के सभी धर्मों के उपदशा का एक ही सार है —

प्रकृति का दोहन करने से पर्यावरण प्रदूपित होगा तथा मानवता के काल ग्रसित होने की सभावनाएँ बलवती होती रहगी। बमो के विस्फोट से, गैसीय रिसाव से, वक्षो के असगत काटने मे, कल कारखाना के धुए से, गदे रासायनिक द्रव्यो के बहाव से, जल, थल, नभ, अग्नि, वायु सभी प्रदूपित हाग इसलिये मानव कल्याण को ही अपना सच्चा धम जानकर वातावरण को प्रदूपित होने से बचावे और यही पर्यावरण का सारभूत शाश्वत सत्य है।

अपव्यय रोको, प्रदूपण रोको।
तथा अपने पर्यावरण की रक्षा करो॥

भारत मे प्रारम्भ से ही पर्यावरण के प्रसग को लेकर भी सर्वोदय दशन का मूलमन्त्र रहा है सारा जनसमुदाय सुखी रहे सभी निरोग रहें, सभी पारस्परिक कल्याण का प्रयास करें तथा किसी को किसी प्रकार का दुख ना रह। महात्मा गाधी की आर्थिक नीति मे—सर्वोदय दशन के स्तम्भ-भूदान, सम्पतिदान मणिदान व श्रमदान के आधार पर भूमिदान, सम्पतिदान ग्राम दान, श्रमदान एव ग्राम्य स्वराज्यदान के अनुकूल—न तो शहरीकरण को बढावा मिलेगा और न ही पर्यावरण अशुद्ध होगा। देश मे 80 प्रतिशत खेती बैला से ही सम्पन्न हाती है तथा भूमि को प्रदूपित होने से बचाया जा सकता है। और यही सरल तकनीकी प्राकृतिक सौ दय और मानवीय अस्तित्व के लिए उपयुक्त भी है।

यदि हम पर्यावरण परिशुद्धि के लिय प्रयत्नशील नहीं रहे तो सर्वोन्य के चारा स्तम्भ-भूदान, सम्पतिदान मणिदान व श्रमदान म छिपी भावना सबका उदय, सबका कल्याण, सब का सुख, किसी को दुख नहीं अपने महत्त्व को

अक्षुण नहीं रख सकते, धूल-धूसरित हो जावेंगे। आज पर्यावरणीय प्रदूषण के फलस्वरूप शहरो ही नही, अपितु गावो का अस्तित्व भी नष्ट हो रहा है। फिर भला सर्वोदयी वर्गहीन समाज के निर्माण की अवधारणा कैसे फलिभूत हो सकती है? इस पर प्रश्न चिन्ह लगाना आवश्यक है। सम्प्रति जन प्रदूषण वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण तथा विकिरण प्रदूषण विश्व पर्यावरण को प्रदूषित करने पर आमादा है। ऐसी विषम परिस्थिति म सबका सहविकास, सबका अभ्युदय जो सर्वोदय की आत्मा है इसको किस प्रकार जीवित रखा जा सकेगा? आज यही प्रश्न विश्व के सभी बुद्धिजीवियो के लिये चिन्ता का विषय बन गया है।

सभी ओर से प्राप्त आंकडा से निष्कष निकलता है कि भूमि, वायु व जल हर पल दूषित होते जा रहे हैं। प्रति वष अनुमानत 100,0000 लाख टन ऑक्सीजन का दहन हो जाता है तथा 240,000 लाख टन कार्बन डाइ ऑक्साइड विसर्जित होती है। 'हरित क्रांति 'रक्त क्रांति' मे बदलती जा रही है वनविहीनीकरण तीव्रगति से सम्पन्न हो रहा है तथा आनुवंशिक सग्रहण मे भी भारी ह्रास हो रहा है। मायस (1980) न स्पष्ट अभिव्यक्त किया है कि मानव अपने ससाधनो का उपयोग बिना साचे विचारे अन्धाधुन गति से कर रहा है और वे तेजी से समाप्ति की ओर अग्रसर हो रहे है। बृहद तकनीकि विकास कायक्रमो के कारण अपक्षय पदार्थों के नष्ट करने मे भी भारी कठिनाइयो का सामना करना पड रहा है। न्यूजीलैंड निवासी तथा एवरेस्ट विजेता सर एडमण्ड हिलैरी न भी अपना पुस्तक 'पारिस्थितिकी 2000' मे स्वीकार किया है कि विश्व 2000 क सम्बन्ध म सन 1980 मे अपन प्रतिवेदन के अनुसार विश्व जनसख्या का विस्फोट होने जा रहा है, जिसमे प्रदषण और बढेगा और आज की तुलना मे 'पारिस्थितिक स्थायित्व' के छिन्न-भिन होने का क्रम उत्पन्न हो जायगा। यद्यपि औद्योगिक क्रान्ति के कारण जीवन की गुणवता मे भारी सुधार हुआ है परन्तु मानव के सम्पूण स्थायी खतरो की सम्भावनायें बलवती बनती जावेगी।"

□ □

पर्यावरण : एक वैज्ञानिक अध्ययन

पर्यावरण शब्द—दो शब्दों परि+आवरण संधि से मिलकर बना है जिसका अर्थ 'परि'=चारों ओर तथा 'आवरण'=घेरा अर्थात हमें चारों ओर से घेरने वाला पर्यावरण ही है। 'पर्यावरण' का ही आधुनिक पर्यायवाची पारिस्थितिकी है, जिसका ज्ञान उतना ही प्राचीन है जितना पुरातन मानव स्वयं है। मानव विलक्षणता यह रही है कि वह अपने चारों ओर घेरे को, उसमें सम्पन्न होने वाले परिवर्तनों-क्रियाओं तथा अंतर्क्रियाओं को समझकर तथा उन्हीं के अनुरूप स्वयं को ढाल कर आगे प्रशस्त होता रहा है और यही आदिम मानव के विकास की कथा है। पूर्व में भारतीय ऋषि-मुनियों व अन्य मनीषियों को इस विषय का ज्ञान अवश्य था जो अपने वेदों, पुराणों उपनिषदों तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में अभिव्यक्त कर गये हैं। औषधि विज्ञान के महान विद्वान आदिगुरु 'चरक' ने पादपों के जीवन हेतु जल, वायु, देश (मिट्टी) व काल (समय) के चार महत्त्वपूर्ण कारकों का वर्णन कर गये हैं। इन्हीं चार मूल कारकों को लक्ष्यकर सैद्धांतिक औषधि विज्ञान पर मूल ग्रंथ-चरक संहिता को रचा गया जिससे मानव समाज का भारी कल्याण हुआ है।

वर्तमान में प्रचलित 'पारिस्थितिकी' का आंग्ल अनुवादित शब्दार्थ इकोलॉजी (ECOLOGY) का उद्गम् ग्रीक भाषा के दो शब्द OIKOS (ECOS)=House (घर) तथा LOGUS=Study (अध्ययन) से हुआ है। अतः 'घर' का अभिप्राय पादपों व जन्तुओं के आवासस्थल अथवा पर्यावरण से है। जर्मन वैज्ञानिक अरनेस्ट हैकिल (1809) ने इस शब्द की पूर्ण व्याख्या करते हुए ECOLOGY को निम्न प्रकार परिभाषित किया है—'किसी भी जीव-जन्तु व समस्त अकार्बनिक व कार्बनिक वातावरण के पारस्परिक सम्बन्धों का पर्यावरण' कहते हैं।

कालान्तर में भी इसे अनेक प्रकार से परिभाषित किया गया गया है और हमारे उद्देश्य हेतु 'बीसवीं शताब्दी के चेम्बर्स' शब्द कोश में दी गई परिभाषा पर्याप्त व सर्वमान्य है। इसके अनुसार 'जन्तुओं अथवा पादपों, या जीव-समूहों या समुदायों और उनके वातावरण के परस्पर सम्बन्धों के अध्ययन को ही पारिस्थितिकी' कहते हैं। इसमें मोटे तौर पर हम जीवधारियों तथा उनके पर्यावरण जिसमें सभी भौतिक एवं जैविक वातावरणीय कारक सम्मिलित

है, के परस्पर आदान-प्रदान की प्रक्रिया तथा विभिन्न जातियो मे अन्तर व अन्तजातीय सम्बन्धो का निरीक्षण करते हैं। अत हम पर्यावरण विज्ञान अथवा पारिस्थितिक तन्त्र का वैज्ञानिक दृष्टिकोण मे अध्ययन करना होगा, तभी हम अपने पर्यावरण ढाँचे के वास्तविक स्वरूप से परिचित हो सकेगे।

ईसा पूर्व चौथी शताब्दी मे थियोफ्रेस्टस ने सर्वप्रथम पादपो और उनके भौतिक वातावरण के अन्तर सम्बन्धो पर प्रकाश डाला था तथा विश्व का प्रथम पारिस्थितिकी वेत्ता होने का श्रेय लिया था। 16वी शताब्दी में विज्ञान की यह शाखा प्राकृतिक इतिहास' (Natural History) के नाम से जाना जाने लगा। 18वी शताब्दी मे बफन (1707-1788) ने जीवो तथा वातावरण के परस्पर सबधो का सुव्यवस्थित ज्ञान प्राप्त किया और उनकी मान्यता बनी की सभी पादप समुदाय एव जन्तु समुदाय अपने वातावरण के प्रति अनुकूलित होने हैं जिसे उन्होने 'वातावरणीय अनुकूलता' कहा। 19वी शताब्दी म अनको वैज्ञानिको मे पादपो तथा जन्तुओ की वातावरणीय अनुक्रियाओ का अध्ययन किया तथा सेटहिलारे ने इस विज्ञान को ईथोलॉजी (Ethology) नाम दिया।

1 पारिस्थितिक तन्त्र (Eosystem)

पर्यावरण को प्राय भौतिक तत्वो की वास्तविकता क नियन्त्रण को लेकर गलत रूप मे प्रस्तुत किया जाता रहा है। साथ ही पर्यावरणीय समस्याएँ जो वतमान मे एक महत्वपूर्व विषय के रूप मे उभर कर सामन आ रही है केवल आर्थिक दशन के परिपक्ष मे ही देखी जाती रही है। यदि इन्हे भौगोलिक परिवेश मे देखा जाता तो अपेक्षित उपयोगी सिद्ध होता, जिसम आर्थिक उन्नति के साथ जीवन की गुणवत्ता का भी अवलोकन किया जा सकता था। आज 'पर्यावरण' शब्द ने विश्व के अधिकाश लोगो का ध्यान आकृष्ट किया है और यह त्रुटिपूर्ण अर्थो म समझा गया है। पर्यावरण का साहित्यिक अथ है—जो चारो ओर है और चारो ओर कावनिक व अकावनिक पदाथ है जिन्हे दो आनुवंशिक घटको म विभाजित किया गया है—(अ) प्राकृतिक पर्यावरण, यथा कायिकी, जलवायु वनस्पति मृदा जलाशय, वन्य प्राणी तथा खनिज आदि व (ब) मानव पर्यावरण, तथा सभी तत्व जिन्होने मानव को छुआ है और जिसके अन्तगत मानवीय प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं।

पर्यावरण की सम्पूर्णता को अधिकाधिक समझने के लिये निस्सदेह प्रकृति की स्थूल-शारीरिकी (anatomy) व कायिकी (physiology) का अध्ययन आवश्यक है। तालाब, नदी, सागर, वन, ग्राम आदि को पारिस्थितिक तन्त्रो के रूप मे प्रस्तुत किया जाता है। सर्वप्रथम सन 1935 मे अंग्रेज वैज्ञानिक ए०जी० टेन्सले ने इसके लिये शब्द ' ECOSYSTEM' का प्रयोग किया था।

तत्पश्चात अन्य वैज्ञानिकों ने इसकी जटिलताओं के कारणवश अन्य अन्य शब्दों का उपयोग किया। मोवियश (1877) ने बायोसिनोसिस' फॉरबिस (1877) ने माइक्रोकॉस्म तथा सूकाचेव (1944) ने 'जिओबायोसिनोसिस नामों से सम्बोधित किया था। परन्तु टेन्सले द्वारा अभिव्यक्त नाम 'इकोसिस्टम' अथवा 'पारितन्त्र' अथवा पारिस्थितिक तन्त्र ही सवमान्य रहा है। उपरोक्त शब्द इकोसिस्टम को विस्तृता के साथ समझने के लिये समुदाय के जीवन सन्तुलन' के रहस्य को जानना अति आवश्यक है।

पारितन्त्र एक अत्यन्त जटिल सकल्पनात्मक इकाई है जो सजीव जीवों तथा उनके वातावरण से निर्मित है। मौलिक रूप म यह एक ऊर्जा द्रव्य एव सूचना स्थानान्तरण तन्त्र है अर्थात प्रत्येक जव समुदाय क सदस्य निरन्तर एक दूसरे से अनुक्रिया करते है, जिनके माध्यम से आवश्यक ऊजा एक पोषण स्तर स दूसर और दूसरे से तीसरे स्तर तक स्थानान्तरित होकर समुदाय के सभी सदस्यो की मूल भूत आवश्कताओ की पूर्ति करती है। साथ ही अनुक्रियाओ की शृ खला मात्र जावित सदस्यो तक ही सीमित नही रहती। वास्तव म ऊर्जा तथा आवश्यक खनिजो का निरन्तर प्रवाह ही समुदाय जीवन-चक्र को गतिशील रखता है। इनकी निरतरता जव समुदायो को पारस्परिक अनुक्रियाओ व प्रतिक्रियाओ के साथ-साथ अजीवित पर्यावरण से क्रियात्मक आदान-प्रदान के लिये भी आवश्यक है। पैटन (1959) का कथन है कि समस्त तन्त्र चक्र मे होने वाली अनुक्रियाएँ वास्तव म पुन निविष्ट (feed back) क्रियाएँ हैं जो पारित त्र म पाये जाने वाल जीवधारियो के विकास एव जीवसख्या को नियन्त्रित करती हैं।

2 पारितन्त्र के घटक —

किसी भी एक पारितन्त्र के निम्न दो घटक हैं—(अ) अजीवीय तत्व (ब) जीवीय तत्व

(अ) अजीवीय तत्व —निर्जीव घटको के अन्तगत सम्मिलित हैं—

(i) अकार्बनिक घटक—यथा कार्बन, नाईट्रोजन, ऑक्सीजन, खनिज तत्व, कार्बन डाइऑक्साइड, जल आदि जो सदैव पारितन्त्र मे चक्रीय पथो मे चलायमान रहते हैं।

(ii) कार्बनिक घटक—यथा कार्बोहाइड्रेटस वसाएँ प्रोटीन्स ए टी पी अणु डी एन ए अणु, आर एन ए अणु क्लोराफिल (पर्णहरित) आदि जो तन्त्र क जविक तथा अजविक तत्वो के मध्य कड़ी के रूप मे पाये जाते हैं तथा

(iii) जलवायु घटक—यथा तापक्रम, प्रकाश, नमी के अतिरिक्त धाराएँ, पवन, दाब गुरुत्वबल जैसे भौतिक कारक।

उपरोक्त अजैविक तत्व पारितन्त्र को दो प्रकार से प्रभावित करते है। एक विशिष्ट भौतिक एव रासायनिक लक्षण जो तन्त्र की प्रकृति को निर्धारित करते ह क्योकि ऐसे लक्षण तन्त्र की समष्टिया (populations) मे पाये जाने वाले प्राणियो को सीमाबद्ध कर देते है व दूसरे भौतिक तथा रासायनिक कारको के साथ ऐसे लक्षण समष्टियो पर परस्पर होने वाली क्रियाओ, अनुक्रियाओ को निर्धारित करते ह व पारितन्त्र को नियन्त्रित रखते हैं।

(ब) जीवीय तत्व—पारितन्त्र म जीवित पादपा, प्राणियो व सूक्ष्म जीवो की समष्टियाँ भी पायी जाती हैं जो सयुक्त होकर तन्त्र की समुदाय (Community) सरचना करती हैं। एक समुदाय में स्थित सम्पूण जैविक द्रव्य को जीवभार (biomass) कहा जाता है। जैविक तत्वो के अन्तगत जीवधारियो को भिन्न सवर्गो मे विभाजित कर दिया गया है —

(i) उत्पादक अथवा सृजक (Producers)—यह वे सजीव सदस्य हैं जो कावनिक तथा अकावनिक तत्वो से भोजन का सश्लेपण करते है। यह स्वपोपित (autotrophic) जीव हैं। पारितन्त्र मे उत्पादक केवल प्रकाश-सश्लेपी (photosynthetic) पादप ही हो सकते है। तालाबो, झीलो मे सूक्ष्मदर्शीय पादप, जलीय पादप तैरने वाले पादप, सागरीय शैवाल (algae), घास स्थलियो की नाना प्रकार की घासें (grasses) तथा वनो मे प्रयुक्त-झाडियाँ (bushes) तथा छोटे व बडे वृक्ष पारितन्त्र मे उत्पादक एव सजक (producer) की हैसियत से रहते हैं।

(ii) उपभोक्ता (Consumers)—यह वे सजीव सदस्य हैं जो उत्पादको द्वारा सश्लेपित भोजन का उपभोग करते हैं तथा उपभोक्ता कहलाते है। इस सवर्ग के जीवधारियो को आगे भी श्रेणीबद्ध किया जा सकता है —

(क) शाकाहारी प्राणी (Herbivores)—अपने आहार अथवा पोषण के लिये पूर्णतया पादपो पर निर्भर रहते हैं— प्राथमिक उपभोक्ता के रूप म मान्य हैं। एक वन म हिरन प्राथमिक उपभोक्ता हैं, प्रेयरी घासस्थलियो म बकरी, गाय, भैंस बायसन आदि प्राथमिक उपभोक्ता ही हैं, तालाबो व सागरो म शैवालो का आहार करने वाले जीवधारी यथा प्राजीव, क्रस्टेशियनलार्वा तथा सीप व घोंघे आदि प्राथमिक उपभोक्ताओ की श्रेणी म ही रखे गये हैं। अनेक कीट व चूहे मूषक स्थलीय वातावरण म मुख्य शाकाहारी जीव हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि उपरोक्त जीवधारी अपने-अपने पारितन्त्र हेतु प्राथमिक उपभोक्ता मान्य हैं तथा प्रत्येक तन्त्र का सम्पूर्ण जीवन इन्ही शाकाहारियो की उपस्थिति म क्रियान्वित (operate) होता है। एल्टन (1927) ने इस श्रेणी के प्राणियो को 'मुख्य उद्योग प्राणियो' की सज्ञा दी थी।

(ख) मांसाहारी (Carnivores)—प्रथम मांसाहारियों का भोजन आहार शाकाहारी प्राणी होते हैं, द्वितीयक मांसाहारी प्राथमिक मांसाहारियों को अपने आहार के रूप में प्राप्त करते हैं तथा तृतीयक मांसाहारी प्राणी द्वितीयक मांसाहारियों का भक्षण करते हैं। यह सभी मांसाहारी प्राणी संयुक्त रूप में द्वितीयक उपभोक्ता कहलाते हैं। इस प्रकार क्रम से आहार एक श्रेणी के प्राणियों से दूसरी व तीसरी और चौथी श्रेणी के प्राणियों में स्थानान्तरित होता है तथा एक आहार शृंखला (food chain) बन जाती है। पारितन्त्र में ऐसी अनेक आहार-शृंखलाएँ होती हैं। स्पष्ट है कि एक ही तन्त्र के प्राणि-समुदाय में—एक प्रजाति या समष्टि दूसरी प्रजाति या समष्टि के लिये आहार बन जाती है तथा एक 'जाल' सा बन जाता है। आहार-शृंखलाओं के इस ताने-बाने को 'आहार जाल' (food web) कहा जाता है। प्राथमिक व द्वितीयक उपभोक्ता श्रेणी के जीवधारी-'गुरु उपभोक्ता' अथवा भक्षक प्राणी अथवा परपोषित प्राणी कहे जाते हैं।

(ग) विघटक (decomposers)—यह भी पारितन्त्र के सजीव सदस्य हैं जो इस वर्ग में अधिकांशतः जीवाणुओं व कवकों के रूप में पाये जाते हैं। ऐसे जीव समूह उत्पादक व उपभोक्ताओं के मृतक शरीरों पर क्रिया करते हैं तथा जटिल पदार्थों को विघटित कर सरल पदार्थों में बदलते हैं। वास्तव में किसी पारितन्त्र के संचालन में विघटकों की भूमिका उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी उत्पादकों व उपभोक्ताओं की होती है। सरल पदार्थ मुक्त होकर मूल पदार्थों के रूप में अजैविक वातावरण में घुलमिल जाते हैं और उत्पादक पुनः इनका उपभोग कर सकते हैं। ऐसे अपघटकों को सूक्ष्म उपभोक्ता या मृतपोषी या परासरणपोषी भी कहा जाता है। विघटन की प्रक्रिया में उत्पादों का कुछ अंश यह सूक्ष्म जीव अपने आहार के रूप में भी ग्रहण कर लेते हैं। इसलिये इन्हें सूक्ष्म-उपभोक्ता कहा गया है। प्रकृति में यदि विघटक तत्त्व मौजूद ना हों तो मृत-जीवों के अम्बार लग जायेंगे और पर्यावरण में आवश्यक खनिजों का पुनः लौटना दुष्कर या असंभव होगा तथा जीवन-चक्र की गति अवरुद्ध हो जायगी। वातावरण में मुक्त कार्बनिक पदार्थ, ऊर्जा के नये साधन हो सकते हैं या अन्य जैविक घटकों के लिये उत्तेजक या संदमनकारी भी हो सकते हैं।

(घ) रूपान्तरणकारी (transformers)—प्रसिद्ध पारिस्थितिकवेत्ता क्लॉर्क के मतानुसार आहार शृंखला में भाग लेने वाले अन्तिम जीवधारी रूपान्तरणकारी भी हो सकते हैं। यह विघटन के उत्पादों पर क्रिया कर, उन्हें ऐसे कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थों में परिवर्तित करते रहते हैं जो उत्पादकों द्वारा पुनः प्रयोग में लाये जा सकते हैं। यह भी जीवाणु समूहों से सदर्भित होते हैं।

उपरोक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि पर्यावरण में जैविक सगठन में पादप समुदाय उत्पादक या सजक होत है, जन्तु समुदाय उपभोक्ता, सूक्ष्म जीव समूह विघटक अथवा रूपान्तरणकारी होते हैं। जीव विज्ञान के दृष्टिकाण से पर्यावरण मे जीव व जीव सख्याओ का स्थायित्व अत्यन्त आवश्यक व महत्वपूर्ण विषय है अत यह अध्ययन आगे के पृष्ठो मे किया जायगा।

3 विभिन्न पारितन्त्रों के नामकरण

वतमान मे विभिन्न पारितन्त्रा के नामकरण भी जीवो के प्रकार तथा आवासीय स्थलो के आधार पर किये गये हैं। स्थलीय पारितन्त्रो मे कृषि भूमि, घास स्थली वन एव मरुस्थली पारितन्त्र प्रमुख है। इसी प्रकार स्वच्छ जलीय तन्त्रो के अन्तर्गत पोखर, तालाब, झील, व नदी पारितन्त्र सम्मिलित है। परन्तु इन सभी तन्त्रो मे सबसे 'विशाल' यकृक्षा व खारे जल से युक्त पारितन्त्र—सागर है। विश्व के विभिन्न पारिस्थितिक तन्त्रों को निम्न प्रकार दर्शाया गया है –

(i) स्वच्छ जलीय आवास —

(अ) लोटिक जल अथवा प्रवाही जल—झरने व नदियाँ

(ब) लेन्टिक जल अथवा स्थिर जल—झील, तलैया व पोखरे।

झीलो व तालाबो के किनारे निचले स्थानो पर जल एकत्रित होकर मिट्टी के साथ मिल कर दलदली भूमि-कच्छ तथा अनूपा का निर्माण करते हैं।

(ii) समुद्री आवास —

(अ) वलावर्ती प्रदेश —

(क) नेरीटचली क्षेत्र (ख) महासागरीय क्षेत्र

(ब) नितलस्थ प्रदेश —

(क) वेलाअचली क्षेत्र—सुवेलाअचली व उपवेलाचली

(ख) गहरा सागरीय क्षेत्र—वेथाइल, वितलीय व हाडल क्षेत्र।

परन्तु सागरी आवास अपने आप म एक ही जीवोम का निर्माण करता है।

(iii) स्थलीय आवास —

मिट्टी से ढके थलीय आवास को अनेक आवास क्षेत्रों म विभाजित किया गया है क्योकि जलवायु कारको के कारण यहा अनेक विशेषताएँ तथा

विभि नताएँ उत्पन्न हो जाती है। यह आवास निम्न प्रकार वर्गीकृत हैं —

(अ) मरुस्थल, (ब) घास के मैदान (स) टुन्ड्रा (द) टैगा (ए) पवत (फ) वन

(4) पर्यावरण स्थायित्व

प्रत्येक पारितन्त्र मे जैविक तथा अजैविक घटको म कायिक सन्तुलन का आवश्यकता होती है। इन सभी घटको का उतार चढाव एक निश्चित सीमा के भीतर रखने के लिये किसी भी परिवतन से उत्पन्न स्थिति का स्वत ही आवश्यक प्रतिक्रियाओं द्वारा पुन सामान्य बना दिया जाता है। प्राकृतिक रूप म त त्र सन्तुलन की इस प्रवृति को समस्थायित्व अथवा समस्थिरता (Homeostasis) कहते है। किसी पारितन्त्र म ऑक्सीजन और कावन-डाइआक्साइड की मात्रा एक निश्चित स्तर पर सीमित रहती है। यह मात्रा परीसोमन तन्त्र की स्वत सचालित प्रक्रियाओ के कारण होती हैं। जब कभी जीव सख्या घनत्व म कोई बडा उतार-चढाव उत्पन्न होता है तो तन्त्र का प्राकृतिक सन्तुलन बिगडने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। इस परिस्थिति को सतुलित बनाने का प्रयास स्वत ही आरम्भ हो जाता है अन्यथा सम्बन्धित जैविक घटक नष्ट होकर अन्य जीवो के लिये स्थान खाली कर देते हैं जिसके परिणामस्वरूप पारिस्थितिकीय अनुक्रमण (ecological succession) प्रभावी हो जाता है तथा पारिस्थितिकीय विकास (ecological development or evolution) की सम्भावनाएँ बलवती हो जाती हैं।

(5) पारिस्थितिक-तन्त्र की क्रियात्मक शैली —

बाहर से जैविक तथा अजैविक घटक अलग-अलग दिखायी पडते हैं, परन्तु इन दोनो घटको मे जटिल एव सन्तुलित क्रियात्मक सम्बन्ध अवश्य होता है तथा तन्त्र का चक्रण स्थायी रूप मे बना रहता है। विभिन्न घटक अपनी व्यक्तिगत पहचान के साथ स्वतन्त्र अस्तित्व को बनाये रखते है और एक दूसरे से परस्पर कार्यात्मक सम्बन्धो से भी बधे रहते हैं। इन्हे निम्न बिन्दुओ के अध्ययन द्वारा सुस्पष्ट किया जा सकता है।

(क) ऊर्जा-प्रवाह चक्र,

(ख) भोजन-चक्र व पोषण स्तर

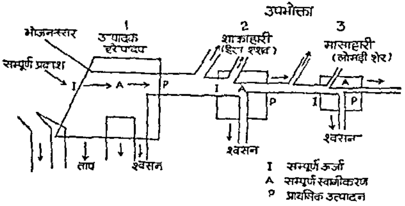
(ग) खनिज पोषक तथा जव भू-रासायनिक चक्र,

(घ) नियन्त्रण

(ङ) अन्य कारक।

(क) ऊर्जा प्रवाह चक्र —

किसी भी पारितन्त्र मे जैविक क्रियाओ को क्रियान्वित (operate) करने के लिये प्रत्येक जीव को ऊर्जा की आवश्यकता रहती है। अन्ततोगत्त्वा यह ऊर्जा सौर विकिरण से ही प्राप्त होती है। सौर ऊर्जा स्वपोषी जीवधारियो के द्वारा ही ग्रहण की जा सकती है और परपोषियो को आहार के रूप मे स्थानान्तरित की जाती है। इस भाति किसी भी पारिस्थितिक तन्त्र मे 'ऊर्जा का प्रवाह' आहार शृ खलाओ के द्वारा सम्पन्न होता है। ऊर्जा का प्रवाह अचक्रीय तथा एक ही दिशा म प्रशस्त होने वाला क्रम है, जिसे विस्तार से समझने की आवश्यकता है।



चित्र—ऊर्जा प्रवाह चक्र

सौर-विकिरण ऊर्जा का एक निश्चित परिमाण पृथ्वी के बाह्य वायु-मण्डलीय पटल पर पहुचता है जिसे सौर-अभिवाह (solar flux) कहते है। सौर अभिवाह का मान मौसम विज्ञान के आकडो के आधार पर 1 94 ग्राम कैलोरी/से मी²/ मिनट होता है। पृथ्वी ग्रह के घूमने के कारण, एक निश्चित स्थान पर इस सौर-अभिवाह मे परिवतन आते रहते हैं, यथा ऋतु परिवतन होते हैं। जब सौर विकिरण वायुमण्डल से प्रवाहित होते हैं तो इनके लगभग 40 प्रतिशत भाग को धूल व बादलो के कारण परिवर्तित कर दिया जाता है, *10 प्रतिशत को ओजोन, आक्सीजन तथा जल वाष्प* अवशोषित कर लेते हैं और शेष 50 प्रतिशत अश ही भूतल पर पहुच पाता है *(गीगर 1950)। इस प्रतिशत का भी कुछ अश भूतल की चमकती सतह* परिवर्तित कर देती है। कहने का तात्पय यह है कि लगभग 33 प्रतिशत भाग पृथ्वी पर पहुच कर, पादपो द्वारा प्रकाश-सश्लेषण क्रिया के लिय प्रयुक्त होता है। विभिन्न वैज्ञानिको द्वारा प्रदत्त कुछ सदर्भित आकडे नीचे दिय जा रहे है —

(i) बाह्य-स्थलीय सूर्य का प्रकाश जो जीवमण्डल तक पहुचता है— —मान 2 ग्राम कैलोरी/से मी ^{2}/मिनट

(ii) दोपहर के समय जब सूर्य अपने पूर्ण प्रकाश के साथ चमकता है व 67 प्रतिशत भाग ही ग्रीष्म ऋतु के स्वच्छ दिन पृथ्वी तक पहुचता है— —1 34 ग्राम कैलोरी/से मी ^{2}/मिनट

(iii) रेफिन्टर तथा लल (1965) के अनुसार पारिस्थितिक तन्त्र में स्वपोषी पटल पर प्रकाश का निर्गमन निम्न प्रकार होगा —

300-400 ग्राम कैलोरी/से मी ^{2}/मिनट
अथवा 300-400 किलो कैलोरी/मी^{2}/दिन
अथवा 1 1-1 5 मिलियन कि क /मी^{2}/प्रतिवर्ष

उपरोक्त बिन्दुओ तथा परिमाणो के आधार पर अमरीकी विद्वान गेटस (1969) ने भूमण्डल की सतह पर उत्पन्न जीव भार (biomass) के सम्बन्ध म निम्न आकडे प्रस्तुत किये ह —

(iv) भूमध्य रेखा से 40° उत्तर व 40° दक्षिण अक्षासो तक वार्षिक विकिरण की गति—सागरो व महासागरा की ऊपरी सतह पर 1 मिलियन कि कै/मी^{2}/प्रतिवर्ष

—महाद्वीपो के पटल पर 0 6 मिलियन कि कै/मी^{2}/प्रतिवर्ष

इस आधार पर विश्व का सम्पूर्ण उत्पादन लगभग 10^8 कि कै /प्रति वर्ष होगा।

अर्थात् प्रकाश सश्लेषण प्रक्रिया द्वारा निर्मित शर्करा का परिमाण पारितन्त्र के प्राथमिक उत्पादन का द्योतक होता है। अपने स्वय के जीवनयापन हेतु पादपो को भी ऊर्जा की आवश्यकता पडती है—यह ऊर्जा शर्कराओ के आक्सीकरण से प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार प्रकाश-सश्लेषण क्रिया मे निर्मित शर्करा का कुछ अश पादपो द्वारा अपनी जीवन-क्रियाओ को सुचारू-रूप म सम्पन्न करने के काय म ले लिया जाता है, शेष भाग मॉड, वसा तथा प्रोटीन निर्माण म परिवर्तित हो जाता है। निर्मित की हुई शर्करा का कुल परिमाण—सकल प्राथमिक उत्पादन का द्योतक है। ऑक्सीकरण के पश्चात शर्करा का शेष परिमाण नेट प्राथमिक उत्पादन का द्योतक होगा।

जब उपभोक्ता द्वारा पादपो का उपभोग होता है तो उत्पादक दर की ऊर्जा प्राथमिक उपभोक्ताओं मे स्थानान्तरित हो जाती है। प्रत्येक पोषण स्तर पर ऊर्जा का स्थानान्तरण तथा उपभोग को जानने के लिये प्रत्येक स्तर पर जीव भार अथवा स्टैडिंग क्रॉप (Standing crop) के आकार को भी

जानना आवश्यक होता है। भोजन उपभोग के साथ ही जन्तु भी ऊर्जा प्राप्त करते हैं तथा ऊर्जा को सकल अन्तरग्रहित ऊर्जा कह कर पुकारते हैं। इस ऊर्जा का बड़ा अंश जन्तुओं द्वारा स्वयं के अस्तित्व को बनाये रखने तथा कायिकी में प्रयुक्त हो जाता है। कार्य करने के लिये ऊर्जा का एक स्वरूप दूसरे स्वरूप में स्थानान्तरण होता है। ऐसी परिस्थियों में उष्मागतिकी के द्वितीय नियम के अनुसार इस स्थानान्तरण में स्वतन्त्र ऊर्जा का ह्रास होता है। कार्य करने में लगी कुल ऊर्जा को श्वसनीय ऊर्जा कहा जाता है।

स्पष्ट है कि सकल अन्तरग्रहित ऊर्जा एवं श्वसनीय ऊर्जा का अन्तर उपभोक्ता स्तर का नैट उत्पादन होता है। जिस दर से नैट उत्पादन एकत्रित होता है उसे नैट उत्पादन या केवल उत्पादकता कहते हैं। किसी भी पोषण स्तर का नैट-उत्पादन, उत्सर्जन तथा मृत प्राणियों के विघटन में सयोग कर सकता है यही समष्टि की वृद्धि के रूप में दिखाई दे सकता है अथवा किसी उच्च-पोषण-स्तर में भी स्थानान्तरित हो सकता है। प्रत्येक पोषण स्तर पर अन्तर्ग्रहित भोजन की ऊर्जा का कुछ अंश प्राणियों द्वारा विष्ठा, मलमूत्र अथवा उत्सर्जन के साथ निकाल दिया जाता है यह उत्सर्जन ऊर्जा कहलाती है।

अनेक प्राणी, परपोषण के अतिरिक्त भी बीमारियों, दुर्घटना बुढ़ापा, भुखमरी आदि के कारण मर जाते हैं। इन प्राणियों में सग्रहित ऊर्जा उच्च पोषण स्तरों में प्रवाहित नहीं होती। केवल वही प्राणी जो परभक्षियों द्वारा मारे या खाये जाते हैं, उस ऊर्जा के द्योतक हैं जो उच्च पोषण स्तरों में स्थानान्तरित होती है। यह भी सम्भव होता है कि शिकार परभक्षी द्वारा [illegible] पूरा नहीं खाया जाय। ऐसी परिस्थिति में केवल परभक्षी द्वारा [illegible] शिकार का अंश ही उच्च पोषण स्तर द्वारा उपभोगी ऊर्जा का [illegible] शिकार का उपभोग में नहीं लाया गया भाग, अपशिष्ट [illegible] करता है। इस प्रकार लगभग हर पोषण स्तर पर [illegible] परभक्षी के अतिरिक्त अन्य कारणों से हुई मृत्यु [illegible] द्वारा किये गये अथवा छोड़े गये शिकार के अपशिष्ट [illegible] रहती है। यह ऊर्जा मृतक-शरीर भक्षियों (S[illegible] कारियों द्वारा उपभोग में ले ली जाती है। [illegible] किया जाता है तो यही ऊर्जा रूपान्तर[illegible] परिसचारित हो जाती है। हर एक [illegible] भक्षण के अतिरिक्त अन्य कारणों [illegible] किये गये शिकार के अपशिष्ट [illegible] ऊर्जा का नैट उत्पादन में से [illegible] स्तरों के परभक्षियों द्वारा [illegible] किया गया उपभो[illegible]

समष्टि बढ़ जाती है। परन्तु परभक्षियों द्वारा किया गया, उपलब्ध उपभोग, नेट उत्पादन से अधिक हो तो समष्टि घट जाती है। समष्टि में यह परिवर्तन जीवभार के परिवर्तन कहलाते हैं—यह घट तथा बढ़ भी सकते हैं।

इस अध्ययन द्वारा सिद्ध होता है कि प्राणियों की वृद्धि से जीवभार बनता है और वृद्धि का तात्पर्य है कि जैव पदार्थ के बढ़ने से प्राणी आकार या मात्राभार का बढ़ना। प्रजनन की क्रिया में प्राणियों की संख्या में वृद्धि होती है परन्तु जीवभार का बढ़ना आवश्यक नहीं है। जीवभार तभी बढ़ता है जब सतान का आकार भी बढ़ता है। परन्तु अधिकांश जातियों में वृद्धि की कुछ सीमाएं निश्चित हैं—ऐसी स्थिति में ही प्रजनन के कारण समुदाय की उत्पादकता—शक्य उत्पादकता बढ़ सकती है। शक्य उत्पादकता द्वारा प्राणियों की संख्या वृद्धि के साथ आकार वृद्धि भी मापक है।

उपरोक्त सम्पूर्ण कार्य प्रणाली को दर्शाने के लिये हचीसन (1934) ने प्रत्येक पोषण स्तर पर सकल अन्तर्ग्रहित ऊर्जा का क्या निष्कर्ष निकलता है निम्न समीकरण प्रस्तुत किया है।

$$I_A = E + R + D + W + (I_A + 1) + b$$

यहाँ I_A सकल अन्तर्ग्रहित ऊर्जा है E उत्सर्जी ऊर्जा है R श्वसन ऊर्जा है D वह ऊर्जा है जो परभक्षण के अतिरिक्त अन्य कारणों से हुई मृत्यु के रूप में व्यय जाती है W वह ऊर्जा है जो परभक्षियों द्वारा अप्रयुक्त है—शिकार के रूप में छोड़ दी जाती है $I_A + 1$ उच्चपोषण स्तर द्वारा उपभोग की गई ऊर्जा है तथा b जीवभार में हुए परिवर्तन का द्योतक है।

अब यह जानना भी आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक पोषण-स्तर की उस ऊर्जा का परिमाण क्या होगा यह निम्न समीकरण द्वारा स्वयं दर्शित हो जाता है।

$$I_A + 1 = I_A - E - R - D - W - b$$

$$\text{या } I_A + 1 = IA - [E + R + D + W + b]$$

(ख) आहार-शृंखलाएँ तथा पोषण स्तर

सौर ऊर्जा का केवल हरे पादप ही उपयोग में ला सकते हैं। यह ऊर्जा कार्बन का अपचयन करने के लिये काम में आती है जिससे जीवन रूपी ईंधन का निर्माण होता है यथा कार्बोहाइड्रेटस वसायें तथा प्रोटीन। वस्तुतः सभी जीवित प्राणी ऊर्जा के लिये हरे पादपों पर ही आश्रित रहते हैं। आहार-शृंखलाएं सम्भरकों (feeders) व खाद्य पदार्थों की रैखीय श्रेणी है अर्थात पादपों द्वारा संचित ऊर्जा समुदाय द्वारा एक क्रम में खाने वाले तथा खाये जाने की शृंखला से गुजरती है—आहार शृंखला (food chain) कहलाती

है। अन्य रूप में इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि आहार-शृंखला जीवधारियों का एक श्रेणीबद्ध क्रम है जिसमें भोजन करने वाले तथा भोज्य-पदार्थों की पुनरावृत्ति होती है। इसके माध्यम से पादपों के स्रोत से अन्य प्राणियों तक खाद्य-ऊर्जा का स्थानान्तरण होता है। आहार शृंखला की एक वर्गीकीय सत्ता को आहार कडी (food link) कहा जाता है। ज्यों-ज्यों एक कडी से दूसरी कडी तक ऊर्जा का स्थानान्तरण होता है, स्थितिज ऊर्जा के अधिकांश भाग की ताप के रूप में हानि होती है, इस कारण एक आहार शृंखला में कम से कम तीन कडियों का होना नितान्त आवश्यक है जैसे —

पादप→ शाकाहारी→ मांसाहारी

देखा जाता है कि बडे मांसाहारी छोटे मांसाहारियों का शिकार कर खा लेते हैं तथा यही क्रम चलता रहता है जब तक कि चार या पांच कडियां सम्मिलित नहीं हो जाती। प्रायः आहार-शृंखला में पांच से अधिक कडियां नहीं पायी जाती हैं। सन् 1926 में सर्वप्रथम थिनेमान ने आहार कडियों के समूह को-उत्पादक, उपभोक्ता, विघटक तथा स्थानान्तरणकारी नाम दिया था। ऐसी शृंखला का उदाहरण है —

हरे पादप→ शाकाहारी→ मांसाहारी→ बडे मांसाहारी (हिंस्र जन्तु)
→ उच्च अपमार्जक।

जलीय वातावरण में अधिकांशतः देखा गया है कि शाकाहारी संख्या में बहुत कम होते हैं। यहां पादप पदार्थों को जन्तु पदार्थों में बदलने के लिये अक्सर पांच या अधिक कडियां हो जाती हैं। एक पोखरे अथवा ताल में यह क्रम निम्न प्रकार कायम रहता है —

शैवाल→ प्राजीव→ छोटे जलीय कीट→ बडे जलीय कीट→ मेंढक व मछली

विशाल जल समूह अर्थात् सागरों में पांच या अधिक कडियों का अवलोकन किया जा सकता है। सबसे कम कडियों वाली भोजन शृंखला ऊर्जा संबंधों के दृष्टिकोण से बहुत महत्त्व की होती है। मनुष्य अपनी भोजन शृंखलाओं के पदों को कम करके अपने लिए उपयोगी भोजन ऊर्जा को बढ़ा सकता है। घनी आबादी वाले देशों-चीन, भारत, व बंगला देश आदि में मनुष्य अधिकतर प्राथमिक उत्पादकों-पादपों पर आश्रित रहता है तथा इन देशों में भोजन शृंखला बहुत ही छोटी होती हैं। इसी के परिणाम स्वरूप इस क्षेत्र की पैदावार अधिक आबादी के भोजन की आपूर्ति कर सकती हैं।

लिंडामैन (1942) ने आहार सम्बन्धों को विविक्त पोषणी स्तरों Λ_1, Λ_2 Λ_3 Λ_4 इत्यादि, की श्रेणी में रूप में दिग्दर्शित किया है। इनके द्वारा प्रस्तुत पोषणी स्तर क्रमश उत्पादक, प्राथमिक उपभोक्ता, द्वितीयक उपभोक्ता आदि से सगत थे। प्रत्येक पोषणी स्तर उत्तरोत्तर क्रम से ऊर्जा के साधन के रूप में पहले वाले स्तर पर निर्भर रहता है।

उत्पादक (A_1) ऊर्जा के साधन के रूप में सीधे अपनित सौर विकिरण पर निर्भर करते हैं। हरे पादपों का पोषणी स्तर प्रथम होता है, शाकाहारियों का द्वितीय, मांसाहारियों का तृतीय तथा द्वितीयक मांसाहारियों का चतुर्थ पोषणी स्तर होता है। इस कारण यह मानना उचित ही होगा कि समुदाय में चार या पांच तक पोषणी स्तर हो सकते हैं। हर स्तर पर विभिन्न जातियों-प्रजातियां होती हैं तथा प्रत्येक जाति में प्राणियों की संख्या भी भिन्न-भिन्न होती है। वास्तव में स्वांगीकृत ऊर्जा के साधनों के अनुसार एक जाति-समष्टि एक या एक से अधिक पोषणी स्तरों पर स्थित हो सकती है। वे प्राणी जो पादपों से आहार कड़ियों की समान संख्या के पश्चात भोजन लेते हैं—एक ही पोषणी स्तर के होते हैं।

पोषणी स्तरों की संकल्पना में लिण्डेमैन ने कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष भी निकाले हैं, यथा —

(i) पोषणी स्तर की श्रेणी में एक प्राणी ऊर्जा के प्रारम्भिक स्रोत से जितना अधिक दूर होगा, ऊर्जा स्रोत के रूप में पहले वाले स्तर पर पूर्णरूप से उस पर निर्भर रहने की सम्भावनाएँ भी कम हो जावेंगी।

(ii) निम्न पोषणी से उच्चतर पोषणी स्तर तक श्वसन के कारण ऊर्जा की प्रतिशत हानि में आशातीत वृद्धि होती रहती है।

(iii) जब भी उच्चतर पोषणी स्तर का परीक्षण किया जाता है तो मालूम पड़ता है कि उपभोक्ता अपने-अपने खाद्य सम्भरण के उपयोग में अधिक दक्ष होते जाते हैं। परभक्षियों की बढ़ी हुई क्रिया के कारण वे अपने शिकार को ढूंढने में अवसरों की वृद्धि कर लेते हैं।

पोषण स्तरों व आहार श्रृंखलाओं का वर्गीकरण —

विदित हो चुका है कि (i) उत्पादक प्रथम पोषण स्तर बनाते हैं—हरे पादपों का समूह है जो सूर्य की प्रकाश ऊर्जा को संचित कर लेते हैं तथा साधारण अकार्बनिक पदार्थों से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। (ii) उपभोक्ता-दूसरा तीसरा व चौथा पोषण स्तर बनाते हैं—शाकाहारी, मांसाहारी व

हिंसक जन्तु हैं (iii) सवभक्षी—किसी स्तर पर अपना भोजन कर सकते हैं तथा (iv) विघटक जीव-अंतिम पोषण स्तर बनाते हैं जो मृत जीवो के अवशेषो को सरल पदार्थों मे बदल देने की क्षमता रखते हैं तथा जीवाणु यीस्ट व फफूंद (कवक) होते है। एक सामान्य आहार-शृंखला को पोषण स्तर पर निम्न रूप मे दर्शाया जाता है —

प्रकाश —— कार्बन-डाई-आक्साईड —— पोषकलवण

↓ ↓ ↓ ↑

उत्पादक (पादप) $\wedge_1$

↓

प्रारंभिक उपभोक्ता $\wedge_2$ (शाकाहारी प्राणी) → विघटक जीव $\wedge_5$ (जीवाणु आदि)

↓ ↑ मृत्यु व सड़ना

द्वितीयक उपभोक्ता $\wedge_3$ (प्राथमिक मासाहारी) ——→ तृतीयक उपभोक्ता $\wedge_4$ (द्वितीयक मासाहारी)

चित्र—सामान्य आहार-शृंखला का पोषणी स्तर

ई० पी० ओडम (1971) ने आहार-शृंखलाओ को दो मूल भागो मे वर्गीकृत किया है —

(i) चारण आहार शृंखला।

(ii) अपरद आहार शृंखला।

(i) चारण आहार शृंखला—हरे पादपो से आरम्भ होकर शाकाहारियो तक जाती है तथा मासाहारियो मे जाकर समाप्त हो जाती हैं। इस प्रकार की आहार शृंखलाओ से हम भलिभांति परिचित हैं। इनमे सौर ऊर्जा का उपयोग पादप प्लवको द्वारा किया जाता है जिन्हें जन्तु प्लवक ग्रहण करते है, तदोपरान्त जिन्हे मछलिया ग्रहण करती है, जिन्हे बडी मछलियाँ खा जाती हैं और तब बडी मछलियो को मनुष्य अपने आहार मे सम्मिलित करता है।

सौर ऊर्जा → वनस्पति प्लवक (उत्पादक) → जन्तु प्लवक प्रथम उपभोक्ता) (शाकाहारी) → जन्तुप्लवक भक्षी कीट तथा क्रस्टेसिया (द्वितीय उपभोक्ता) (प्रथम मासाहारी)

↓

विघटक ← छोटी मछलियाँ भक्षी ← कीट व क्रस्टाशिया भक्षी

(जीवाणु एव कवक)	←	बड़ी मछलियाँ (शिखर उपभोक्ता) (तृतीय मासाहारी)	←	छोटी मछलियाँ (ततीय उपभोक्ता) (द्वितीय मासाहारी)

पारिस्थितिक तन्त्र म पायी जाने वाली ऐसी अन्तर्निभरताएँ सम्बन्धित प्राणियों के आकार को प्रभावित करती हैं। पादप उत्पादकों के आकार भिन्न-भिन्न होते है—बडे से बडे वृक्षो से लेकर छोटे से छोटे पादप-प्लवकों तक विभिन्न आकार के पादप उत्पादक या सजक होते हैं। जिन पादप-समूहों पर शाकाहारी प्राणी जीवन निर्वाह करते हैं उनके सम्मुख वे छोटे अथवा बडे हो सकत है परन्तु शाकाहारियो की तुलना मे मासाहारी अधिक शक्तिवान तथा बडे आकार के होते है। इस कारण यह कहा जा सकता है कि परभक्षी आहार श्रृंखला मे उत्तरोत्तर पोषणी स्तरो पर प्राणी प्राय आकारिक रूप म बडे से और बडे तथा शक्तिशाली भी होने रहत है।

पादपो तथा जन्तुओ पर निर्वाह करने वाले परजीवियो को भी उपभोक्ता श्रेणी मे ही रखा जाना चाहिये क्योकि यह अपना पोषण पादप एव जन्तु उत्तकों से प्राप्त करते है। इन परजीवी श्रृंखलाओ म उत्तरोत्तर स्तरो पर प्राणी आकार मे छोटे से और छोटे होत जाते हैं। उदाहरणार्थ पादप जडो पर गोल कृमि (Nematodes) परजीवी होत हैं जिन पर जीवाणु परजीवियो के रूप मे छोटे से छोटे (सूक्ष्म) होत जाते है। सामान्यत स्तनधारियो व पक्षियो पर सूक्ष्म आकार के ही पिस्सू, जूएं आदि परजीवियो के रूप म पलती हैं।

(ii) अपरद आहार श्रृंखला—हर आहार श्रृंखला पादप उत्पादकों से ही आरम्भ हो एसी बात नही है कुछ आहार श्रृंखलायें मृत कार्बनिक पदार्थों से भी आरम्भ होती है। उस पदार्थ का उपभोग सूक्ष्म जीवो द्वारा किया जाता है जो तदुपरान्त अपरद भोजियो एव उनके परभक्षियो द्वारा खाये जाते हैं। एसी आहार श्रृंखलाएँ जो मृत कार्बनिक यौगिको से आरम्भ होती है, अपरद आहार श्रृंखलाएँ कहलाती हैं। जैसे—

अपरद	→	घोघा	→	श्रू	→	उल्लू या
अपरद	→	नीमेटोडस	→	चिचडी	→	बिच्छू।

इन श्रृंखलाओ मे भी परभक्षण होता है। अतएव उत्तरोत्तर पोषण स्तर पर आकार बडे से बडा हो जाता है। आहार श्रृंखलाओ के सम्बन्ध मे एक और तथ्य भी सामने आया है, आहार श्रृंखला की हर कडी के साथ क पदार्थों की सान्द्रता भी बढती रहती है। इस घटना को आहार-श्रृंखल सान्द्रता या जैव आवर्धन कहा जाता है।

समुदाय विशेष मे पायी जाने वाली अन्यान्य जातिया-प्रजातियो की आहार सहक्रियाएँ सरल नही होती जैसा कि ऊपर दिय गये विवरण से झलकता है। प्राय एक प्राणी एक ही प्रकार के आहार पर निभर नही रहता है वरन् एक से अधिक प्रकार के भोजन (प्राणिया) पर निर्वाह करता है और स्वय भी एक ही परभक्षी नही वरन विभिन्न परभक्षिया का आहार सामग्री बनता है। वना म श्रृ केवल घासे ही नही खाता, वह विभिन्न प्रकार के कीटो का भी भक्षण करता है, तथा वह स्वय भी केवल उल्लू द्वारा ही नही वरन् बाजो, लोमडियो, वीजल व अन्य प्राणियो द्वारा खा लिया जाता है। समुदाय की सभी जातियो के ऐसे आहार सम्बन्धो को यदि आरेखित किया जाय तो भोजन श्रृखलाओ का एक जटिल जाल बुन जायगा। आहार सम्बन्धा के इस जाल को 'आहार जाल' कहते हैं।

पारिस्थितिक स्तूप (Ecological pyramids)—

इसी अध्याय मे पूव मे भी कहा जा चुका है कि ऊर्जा स्थानान्तरण के समय आहार श्रृखलाओ के हर पोषण स्तर पर उपयोगी ऊर्जा की हानि होती है, इसके परिणाम स्वरूप उच्चतर पोषणी स्तरा को बहुत कम ऊर्जा प्राप्त हो पाती है। यह परिस्थितियाँ इस बात का अपवाद है कि जिनमे कार्बनिक पदार्थों का आयात होना है। मृदा के कई क्विटल भार म से घास के कई क्विटल लेकिन कम भार को प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार घास भी शाकाहारियो का भरण करती हैं तथा इन शाकाहारियों का भार घास के भार से कम होता है। ऐसे समुदाय मे भोजन पर आश्रित मासाहारियो का भार अपक्षाकृत कम होना जायगा। पारिस्थितिकवेत्ताओ ने सख्या, जीवभार व ऊजा-प्रवाह के आधार पर इसको क्रमश तीन रूपो मे—स्तूपो के आकार मे चित्रो सहित अभिव्यक्त किया है—

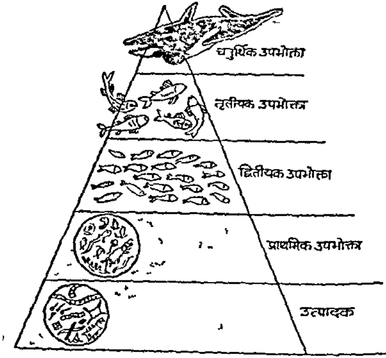
(i) सख्या स्तूप,

(ii) जीवभार स्तूप व

(iii) ऊर्जा स्तूप।

(i) भोजन श्रृखला मे प्रत्येक पोषणी-स्तर पर जीवधारिया की सख्या निरतर कम हाती जाती है तथा इस कम होती हुई सख्या का स्तूप

(pyramid) की सहायता से प्रदर्शित किया जा सकता है। पारिस्थितिकीय स्तूपों का प्रयोग सर्वप्रथम अंग्रेज पारिस्थितिकीवेत्ता सी० ई० एल्टन (1927) ने किया था। भोजन शृंखला के निम्नतम स्तर पर जीवों की संख्या सर्वाधिक होती है, आगे की कड़ियों में मांसाहारियों की संख्या कम हो जाती है और ऊपर अंत तक चरम-मांसाहारी की संख्या न्यूनतम हो जाती है। इस अवधारणा को संख्याओं का स्तूप कहते हैं। (चित्र)



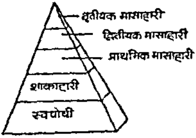
संख्या स्तूप

(ii) जीवभार, किसी एक समय पर उपस्थित इकाई ऊर्जा के पूर्ण शुष्क भार पर आधारित होता है, क्योंकि जब आहार शृंखला के हर संयोजक स्तर पर कुछ ऊर्जा व पदार्थ नष्ट होता है तो जैविक भार की पूर्ण मात्रा में,

प्रारम्भिक स्तरो से अंतिम स्तर तक कमी होती रहती हैं। यह समुदाय मे 'जीवभार' स्तूप की सहायता से दिग्दर्शित होती है। (चित्र)

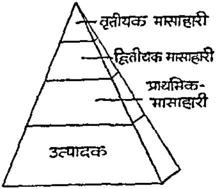


सागरीय समुदाय जीवभार स्तूप



भूमि समुदाय जीवभार स्तूप

(iii) ऊर्जा का स्तूप आहार शृंखला के प्रत्येक स्तर पर प्रवाहित होने वाली ऊर्जा के अतिरिक्त विभिन्न जीवो द्वारा ऊर्जा स्थानान्तरणो मे की गयी सही कार्य क्षमता को दर्शाती है। ऊर्जा के स्तूप भी प्रारम्भिक स्तरो से उच्च स्तरो तक प्राप्य ऊर्जा की कमी का स्पष्ट दिग्दर्शन है। यह उष्मागतिकी के दूसरे नियम के अनुरूप होता हैं। (चित्र)



ऊर्जा स्तूप

एक पारिस्थितिक तन्त्र मे एक से ज्यादा खाद्य स्तूप सक्रिय रहते है। प्रत्येक स्तूप एक भिन्न आहार-शृंखला को व्यक्त करता है जो भिन्न मासाहारियो मे समाप्त होती है। खाद्य स्तूप ही समुदाय की स्थायी अवस्था को

बनाये रखने मे सहायक होते हैं । जब एक स्तूप के किसी स्तर पर यदि सख्या म सार्थक परिवतन कर दिया जाय, तो दूसरे प्रत्यक स्तर मे स्वत समायोजन हो जात हैं । मासाहारियो की बढती आबादी से शाकाहारियो की सख्या घटती है और जब मासाहारियो को पूण आहार नही मिलता, उनकी अकाल मत्यु से सख्या कम होने लगती है । तत्पश्चात शाकाहारियो की सख्या बढने लगगी ।

खनिज पोषक एव भू जैव-रासायनिक चक्र —

जीवधारियो को अपनी जैविक क्रियाओ के लिए लगभग 20 तत्वो की आवश्यकता होती है । इन तत्वो को जीव अपन लिये वातावरण द्वारा ही विशिष्ट चक्रो के रूप मे अधिग्रहण करत हैं और पुन वातावरण मे ही मुक्त कर देत ह । इस प्रकार पारिस्थितिक तन्त्र म खनिज तत्वो या पोषको का चक्रीय प्रवाह होता है । इन्ही चक्रो को जैव भू-रासायनिक चक्र कहते हैं । जीवन के लिये आवश्यक तत्वो व अकाबनिक यौगिको के प्रवाह को खनिजो का चक्रीय प्रवाह कहा जाता है । प्रत्येक चक्र को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है —

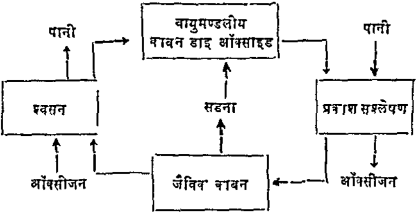
1 निचय कुण्ड—यह साधारणतया जैविक घटक नही होता, तथा यह मन्द गतिशील होता है ।

2 विनिमय कुण्ड—यह छोटा एव सक्रिय घटक होता है । चक्रीय प्रवाह म यही घटक वातावरण व जीव के मध्य विनिमयशील (exchangeable) होता है ।

यदि किसी जीव का निचय कुण्ड वायु मण्डल या जल मण्डल हो और जिसम यह तत्त्व गैसीय अवस्था मे पाया जाता हो तो चक्रीय प्रवाह को गसीय चक्र कहते हैं । इसके उदाहरण ह—कावन चक्र, नाइट्रोजन चक्र, ऑक्सीजन चक्र व जल चक्र ।

और यदि किसी जीव का निचय कुण्ड स्थल-मण्डल हो तो जिसमे तत्त्व अपक्षय द्वारा मुक्त होता हो तो चक्रीय प्रवाह को अवसादी चक्र कहते हैं । गन्धक व फास्फोरस चक्र अवसादी चक्रो की श्रेणी मे आते हैं । इन चक्रो म मम्मरण के अन्त की हानि हो सकती है और इस प्रकार यह अश प्राणियो की पहुँच से बहुत दूर चला जाता है तथा निरतर होने वाले चक्रीय प्रवाह की सीमा म बाहर हो जाता है । उपरोक्त सभी चक्रो का निम्न बिन्दुओ म सविस्तार वर्णन किया जा रहा है —

1 कार्बन चक्र



चित्र—कार्बन-चक्र

सभी कार्बनिक यौगिकों का एक मात्र आधारभूत घटक कार्बन है। कार्बोहाइड्रेट्स तथा वसाओं के उपयोग से एकत्रिकरण के परिणामस्वरूप होने वाले ऊर्जा प्रवाहों में ऊर्जा के प्रवाह के साथ ही पारितन्त्र में कार्बन भी अग्र-सित होता रहता है। वायुमण्डल व जल में घुली हुई कार्बन डाई ऑक्साइड ही किसी न किसी रूप में इन यौगिकों के लिये आवश्यक कार्बन का स्रोत हैं।

(i) जीवित जीवधारियों में कार्बन डाइ-ऑक्साइड के उपयोग सर्व-प्रथम हरे पादपो द्वारा प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया है।

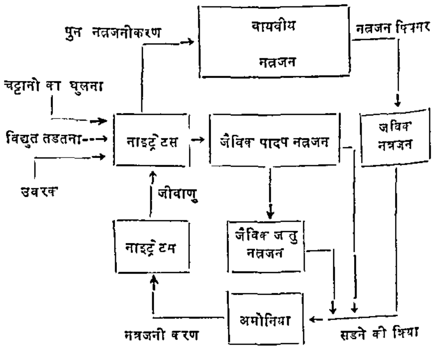
(ii) कार्बन, हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन, सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में सरलतम कार्बोहाइड्रेट्स यथा ग्लूकोज में बदल जाते हैं। यह तत्पश्चात् पादपो द्वारा जटिल वसाओं पालीसैक्राइड्स में संश्लेपित किये जाते हैं। वसा एवं पालीसैक्राइड्स जो पादपों के उत्तकों में संग्रहित हो जाते हैं, जन्तुओं द्वारा उनका उपभोग होता है, तब इन कार्बनिक यौगिकों का दोबारा अन्य यौगिकों में संश्लेषण हो जाता है। शाकाहारी प्राणी पादपों को खाकर अनेक कार्बन यौगिकों का स्वांगीकरण करते हैं और दोबारा इन यौगिकों का दूसरे यौगिकों में संश्लेषण करते हैं।

(iii) कार्बन की कुछ मात्रा दोबारा वायुमण्डल में चली जाती है, क्योंकि कार्बन-डाइ ऑक्साइड पादपो व जन्तुओं, दोनों के लिये श्वसन का सहउत्पाद होती है।

जन्तुओं द्वारा उत्सर्जित पदार्थ तथा पादपो व प्राणी वर्ग के जीवद्रव्य में बधा हुआ कार्बन, शरीर के विघटन के पश्चात् निर्मुक्त होता है। जीवाणु तथा

कवक इन पादपों व प्राणीवर्ग के विघटन के बाद उनके शेष भागों को खाते हैं तथा जटिल जैविक यौगिकों को सरल पदार्थों मे परिवर्तित करते हैं जो बाद मे पुन चक्रण (recycling) के लिये उपलब्ध होते हैं। वायुमण्डलीय कार्बन डाइ ऑक्साइड का कुछ अंश निर्जीव दहन द्वारा भी पुन पूरित किया जाता है जैसे दावानल से या इंधन जलाने से कार्बन-डाइ ऑक्साइड मुक्त होती है। सभी इन इंधनों मे कार्बनिक पदार्थ विद्यमान होते है जो अतीत मे कभी प्रकाश संश्लेषण के ही कारण निर्मित हुए थे एवं जिनके निर्माण मे कार्बन डाइ ऑक्साइड प्रयुक्त की गई थी। इनके ज्वलन के साथ ही वातावरण में कार्बन-डाइ ऑक्साइड की मुक्ति से एक विलम्बित कार्बन-चक्र पूर्ण हो जाता है।

(2) नत्रजन-चक्र



चित्र—नाइट्रोजन चक्र

सभी जीवधारियो को प्रोटीन, न्यूक्लिक अम्ल तथा अन्य नाइट्रोजन युक्त पदार्थों के संश्लेषण की आवश्यकता होती है। रासायनिक रूप मे अक्रिय होने के कारण वायवीय नाइट्रोजन अधिकांश प्राणियो द्वारा उपयोग में नही ली जा सकती है, फिर भी इन पदार्थों के लिये वायवीय नाइट्रोजन ही नाइट्रोजन का आखिरी साधन है। उपयोग मे आने वाली नाइट्रोजन का स्रोत अधिकतर नाइट्रेट आयन होता है।

वातावरण में नाइट्रोजन के साधन (i) संचित खनिज होते हैं जो जल द्वारा चट्टानो के विलयन से बनते ह, (ii) मानव द्वारा उवरकों को भूमि मे डालन से बनते हैं तथा (iii) तडित ऊर्जा के प्रयोग से वायवीय नाइट्रोजन एव आक्सीजन के सयोग स वायु मे कुछ नाइट्रेट्स बन जात हैं और यही नाइट्रेट्स वर्षा के माध्यम से पुन भूमि मे प्रवेश कर जाने हैं।

नाइट्रेट्स का दूसरा मुख्य साधन सार्वत्रिक नाइट्रोजन-चक्र है। वातावरण मे पादपो द्वारा नाइट्रेट आयन का खनिज मेटाबोलाट्स के रूप मे अवशोपण हो सकता है फिर पादप नाइट्रेटस को अमीनो अम्ल समूह एव जीवित द्रव्य के अन्य नाइट्रोजन युक्त घटको म परिवर्तित कर देते ह। जन्तु न तो नाइट्रेट्स ग्रहण करत हैं और न ही इन्हें अमीनो समूह मे परिवर्तित करते हैं। वे उपयोग म लेने लायक नाइट्रोजन को पादप-भक्षण कर ही प्राप्त कर सकते है।

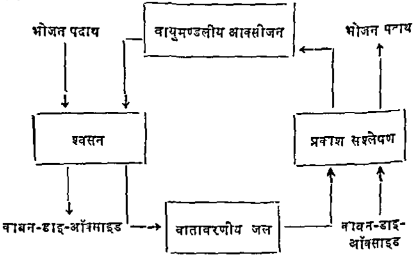
नाइट्रोजन चक्र का महत्वपूर्ण पहलू है कि यह एक गैसीय चक्र है जहाँ जैव, द्रव्य की नाइट्रोजन, कार्बनिक से अकार्बनिक नाइट्रोजन के रूप मे कुछ विशिष्ट जीवाणुओ के माध्यम से अपघटित होती है। नाइट्रोजन का एक अश नाइट्रेट आयनस बनाता है जो शीघ्र ही हरे पादपो द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है और इस प्रकार नाइट्रोजन चक्र निरन्तर चलित रहता है। वायु म 80 प्रतिशत नाइट्रोजन मिश्रित होती है तथा यह नाइट्रोजन का एक विशाल भण्डार है जो पारित न्त्र का सुरक्षा-कपाट (Safety valve) बन जाता है। नाइट्राजन निरन्तर **विनाइट्रीकारी** जीवाणुओं की क्रियाओं के कारण वायु म प्रवेश करती रहती हैं तथा इसी प्रकार निरन्तर **नाइट्रोजन स्थिरिकृत** जीवाणुओ की क्रियाओ के फलस्वरूप चक्र मे लौट आती हैं कुछ अश विद्युत तडित के कारण भी चक्र मे प्रवेश कर दी जाती है। कुछ जीवाणु तथा नीलरहित शवाल जल व मृदा मे रहते हैं जो वायवीय नाइट्रोजन का अवशोपण करते हैं और अपने प्रोटीनो मे समविष्ट कर देते हैं। कुछ जीवाणु मुक्तिजीवी होते है और जब वे मरते हैं तो उनके शरीर के क्षय से मृदा मे अमोनिया गैस आ जाती है जो नाइट्रीकारियो द्वारा नाइट्रेट्स मे परिवर्तित कर दी जाती हैं। अन्य नाइट्रोजन स्थायीकारी जीवाणु फलीदार पादपो की जडो म सहजीवियो के रूप मे बसत है। यह जीवाणु अभिलक्षनिक-जडिय ग्रन्थिकाओ का निर्माण कर लेत है तथा इनके द्वारा स्थिरीकृत की गई नाइट्रोजन उपयोगी नाइट्रोजन के रूप मे फलीदार पादपो को उपलब्ध होती ह। इस प्रकार नाइट्रोजन स्थिरीकृत जीवाणु वायवीय नाइट्रोजन को उपयोगी नाइट्रोजन मे परिवर्तित कर सार्वत्रिक नाइट्रोजन चक्र को पूरा कर देत हैं।

कहना न होगा कि नाइट्रोजन चक्र की आधारशिला प्रकृति म विद्यमान जीवाणुओ के चार समुच्चय हैं — क्षयकारी नाइट्रीकारी, विनाइट्रीकारी

एव नाइट्रोजन स्थिरीकृत जीवाणु जो अपनी विशिष्ट क्रियाओं द्वारा शीघ्र उपापचयिक लाभ प्राप्त करने के लिये विभिन्न काय करते हैं। उदाहरणत रसायन सश्लेषी जीवाणु नाइट्रोसोमानास अमोनिया आयन को नाइट्राइट आयन मे तथा नाइट्रोबैक्टर नाइट्राइट् आयन को नाइट्रेट आयन मे बदल देते हैं। विनाइट्रीकृत व नाइट्रोजन स्थिरीकृत जीवाणुओं के लिये ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो इन परिवतनो के कारण प्राप्त कर ली जाती है।

हचीसन (1944) का अनुमान है कि वायु मे नाइट्रोजन का स्थिरीकरण 140 स 700 मि ग्रा /मी ^{2}/प्रति वष यानि 1-6 पौंड/एकड होता है। डोल्विच (1969) के अनुसार नाइट्रोज न स्थिरीकरण की दर 1 ग्राम/मी^{2}/प्रति वष अर्थात् 10 पौंड/एकड है और उपजाऊ क्षेत्रो म तो जैविक स्थिरीकरण की गति 20 ग्राम मी^{2}/प्रति वष तक हो सकती है।

(3) ऑक्सीजन-चक्र



चित्र आक्सीजन-चक्र

आक्सीजन का वायुमण्डल मे एक निश्चित अनुपात बनाये रखने के लिये प्रकृति मे निरन्तर आक्सीजन प्रवाह की महती आवश्यकता है। इसका चक्रण कार्बन-डाइ-ऑक्साइड व जल के साथ-साथ चलता रहता है।

(i) ऑक्सीजन गैस के रूप में श्वसन क्रिया से जीवधारियों के शरीर में प्रवेश करती है और इस क्रिया म कार्बन-डाइ-ऑक्साइड व जल उत्पन्न होते हैं। इस विधि म निर्मित उपापचयी जल शरीर में पूव विद्यमान जल के साथ शामिल कर जाता है।

(ii) उपापचयी जल के कुछ भाग का उपयोग अन्त म जब पदार्थों के उत्सर्जन मे हो जाता है और कुछ भाग उत्सर्जन द्वारा पुन वातावरण म चला

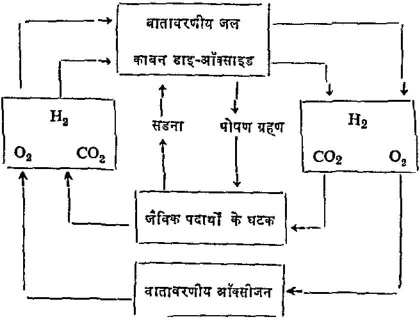
जाना है तथा शेष भाग पादपो मे प्रकाश-सश्लेपण क्रिया मे काम मे आ जाता है।

(iii) प्रकाश-सश्लेपण मे उत्पन्न ऑक्सीजन पुन वायुमण्डल मे मिलकर चक्र पूरा करती है। प्रकाश सश्लेपण मे आक्सीजन निम्न प्रकार समीकरण द्वारा प्रदर्शित होती है

$$6CO_2 + 12H_2O \rightarrow C_6H_{12}O_6 + 6O_2 + 6H_2O$$

वायुमण्डल मे व्याप्त एव जल मे घुली आक्सीजन, प्रकाश-सश्लेषण की सह-उत्पादक है। पादप व जन्तु ऑक्सीजन को श्वसन क्रिया मे उपयोग करते हैं तथा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड के रूप मे वायुमण्डल एव जल म छोडते है। कार्बन-डाइ-आक्साइड पादपो द्वारा कार्बोहाइड्रेटस सश्लेपण मे कच्चे माल के रूप मे उपयोग की जाती है। इस प्रकार एक पारितन्त्र मे इस सरल जैव-चक्र के माध्यम से ऑक्सीजन का सन्तुलन बना रहता है।

(4) जल चक्र



चित्र—ऑक्सीजन, जल व कार्बनचक्रो का पारस्परिक सम्बन्ध

जल का वायु, थल व सागर के मध्य तथा जैविक जीव एव उनके वातावरण के जीवो का रूपान्तरण जल चक्र के माध्यम से ही परिपूर्ण होता है। जल चक्र वाष्पोत्सर्जन, बादलो का बनना व अवक्षेपण आदि क्रियाओ को

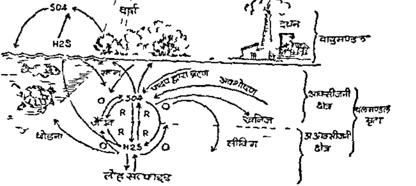
प्रभावित करता है। इनमें मुख्य अभिक्रिया वाष्पन की ही है क्योंकि वाष्पन के कारण ही वायुमण्डल में आर्द्रता बनी रहती है तथा बादल बनाने व अवक्षेपण के लिए आवश्यक नमी प्राप्त होती है। हम देखते हैं कि वायुमण्डलीय आक्सीजन इसी रूप में उपापचयी क्रिया में केवल श्वसन द्वारा ही प्रविष्ट होती है तथा उपापचय से प्रकाश संश्लेषण द्वारा बाहर निकलती है। तब यह जल से संगत करती है और इस रूप में यह जल चक्र से या अप्रत्यक्ष रूप में कार्बन चक्र से सम्बंधित हो सकती है। अतः तीनों चक्र ऑक्सीजन, कार्बन व जल चक्र परस्पर सम्बंधित रहते हुए पारितंत्र में संचारित रहते हैं।

(5) गंधक चक्र

(i) जल में घुला हुआ सल्फेट ही गंधक का मुख्य स्रोत है। वायुमण्डलीय क्षेत्र के स्वपोषी पादप इसका अपचयन करते हैं जिससे यह प्रोटीन के रूप में उप संचित हो जाती है। गंधक तत्व अनेक अमीनो अम्ल का अवयव माना गया है।

(ii) जब पादप व जन्तु शरीरों का अपघटन होता है तो जैविक रूप में संयुक्त गंधक का अधिकांश भाग का खनीजीकरण हो जाता है। यह प्रक्रिया एस्परजिलस तथा न्यूरोस्पोरा जैसे जीवाणुओं व कवकों द्वारा सम्पन्न होती है और अकार्बनिक सल्फेटस का निर्माण हो जाता है।

(iii) अवायवीय परिस्थितियों में अपचय के परिणाम स्वरूप जैविक रूप में संयुक्त गंधक की कुछ मात्रा सल्फाइडस में बदल जाती है और साथ ही हाइड्रोजन सल्फाईड भी तैयार की जाती है। सल्फाइडस के बनने में एश्चेरिया तथा प्रोटियस जैसे जीवाणुओं की आवश्यकता होती है।



चित्र—गंधक चक्र

(iv) फैक्टरिया आदि के इधन के अपूण दहन के कारण कुछ कार्बनिक गधक सल्फर डाइ आक्साइड बनकर वायुमण्डल मे विमुक्त हो जाती है।

(v) सल्फा विब्रियो नामक जीवाणु वातावरण मे व्याप्त इस सल्फर डाइ-ऑक्साइड गैस को मूलतत्त्व गधक व सल्फाईड आयन मे बदल देते हैं जहा हाइड्रोजन सल्फाइड भी बनती है। यह सम्पूण क्रिया अवायवीय स्थिति मे होती है। कुछ विशिष्ट सल्फर जीवाणु हाइड्रोजन सल्फाइड को पुन सल्फेटस मे परिवर्तित कर दते है। सल्फेट निर्माण हेतु हाइड्रोजन सल्फाइड का परिवतन बेगियटोवो व थायोवेसीलस नामक रगहीन सल्फर जीवाणुओ की उपस्थिति म ही सभव है।

(vi) वायुवीय अवस्थाओ मे थायोवेसीलस जीवाणुओ की अन्य प्रजातियाँ सल्फाइड को गधक मे तथा गधक को सल्फेट मे बदलती रहती है। इनमे कुछ जीवाणु रसायन सश्लेषी भी होते है। (कार्बन की प्राप्ति के लिय कार्बन-डाइ-आक्साइड के अपचयन म जिस ऊर्जा की आवश्यकता होता है, यह जीवाणु उस ऊर्जा को अकार्बनिक रसायनात्मक आक्सीकरण से प्राप्त करते है।

(vii) अपघटन अवसाद के रूप मे होने के कारण अवायवीय स्थिति उत्पन्न होती है जिसके कारण हाइड्रोजन सल्फाइड का ऑक्सीकरण नहीं हो पाता तथा यह स्थल मण्डल मे प्रवेश कर जाती है जहा गधक तत्त्व का लोह खनिज से ससग हो जाता है और फैरिक सल्फाइड बनता है। इस प्रकार गधक विलेय के रूप मे जीवो को प्राप्त होता रहता है।

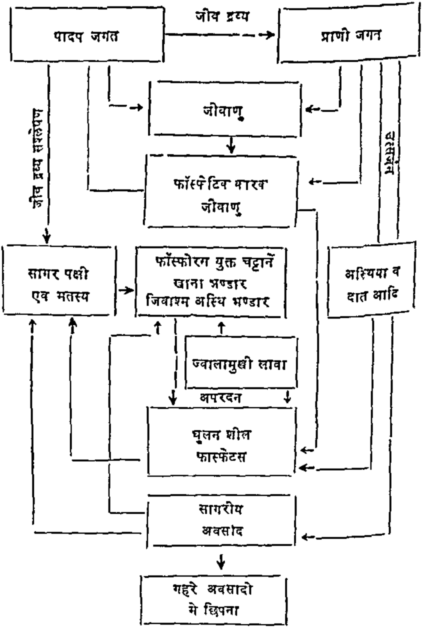
(6) फॉस्फोरस चक्र

जैविक तत्वो मे फास्फोरस भी एक महत्त्वपूण पोषक तत्त्व है जो न्यूक्लिक अम्लो, फास्फोलिपिडस तथा अन्य कई फॉस्फोरीकरण से सबधित यौगिको का एक अश होता है। सभी मौलिक रूपान्तरणो मे इस तत्त्व की आवश्यकता पडती है परन्तु जैविक माग को देखते हुए यह तत्त्व भूतल पर अपेक्षाकृत विरलता मे पाया जाता है। प्राणिजगत मे फास्फोरस तथा अन्य तत्त्वो के अनुपात प्राप्य एव प्राथमिक सपदा की अपेक्षा काफी ज्यादा है। अत यह तत्त्व पारिस्थितिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूण है। यह उत्पादकता मे अत्यन्त सीमाकारी अथवा नियन्त्रणकारी बन जाता है।

(i) पादपो के पोषण क लिय आवश्यक अकार्बन फास्फेट अर्थोफास्फेट के रूप मे उपभोक्ता एव अपघटक के शरीरो मे स्थानान्तरित किया जाता है जो अपघटन तथा खनीजीभवन द्वारा पुन चक्रण मे प्राप्त हो जाता है।

(ii) केन्द्रीय चक्र से भौतिक तथा जविक दोनो विधियां द्वारा अधिकाश फॉस्फेट की हानि होती है। जीवो की पटुच तथा प्रमुख जल सचरण से

फॉस्फेट को दूर हटाने वाली भौतिक विधियों में अवसादन भी एक प्रक्रिया है।



चित्र—फॉस्फोरस चक्र

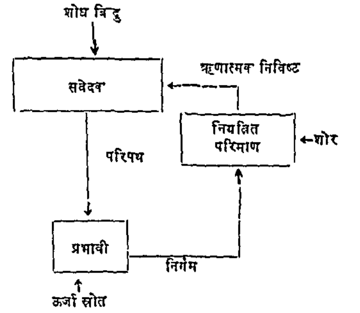
(iii) फॉस्फोरस चक्र के मुख्य भाग से फॉस्फोरस की हुई कमी एवं ह्रास के लिये दाँतो व हड्डियो का निर्माण तथा उत्सर्जन जैसी जैविक क्रियाएँ भी उत्तरदायी मानी गयी हैं। अनेक विधियो द्वारा तत्त्व को कम मात्रा मे पुन चक्रीय पथ मे डाल देती है।

(iv) वहाँ चट्टानो का अपक्षय, वायु मे उपस्थित धूल, ज्वालामुखी गैसें तथा वायु द्वारा ग्रहण की गई लवण-फुहारो (Salf Spray) के अश के माध्यम से यह स्थानान्तरण होता है जो कुछ जैविक विधियो से भी सहयोग प्राप्त करते हैं।

(v) इस चक्र से हुई हानि की तुलना म पुन प्रवेश कराने वाली विधियाँ अपर्याप्त रहती हैं। वास्तव मे फॉस्फोरस की उपलब्ध मात्रा अकाबनिक रूप मे पारित त्र मे कम हाती है परन्तु चक्रीय पथ की गति तीव्र होती है जिससे पारितन्त्र की क्रियाओं को उचित ढग से चलाने के लिये इस तत्त्व का सम्भरण पर्याप्त मात्रा मे चलता रहता है।

(vi) डॉ अल्फ्रेड रेडफील्ड (1969) के मतानुसार सागरो में नाइट्रोजन तथा वायुमण्डीय ऑक्सीजन के परिमाण जीव रसायनिक चक्रो द्वारा नियन्त्रित रखे जाते हैं एव यह चक्र अन्तिम रूप से फॉस्फोरस द्वारा नियन्त्रित होते हैं। फिर भी हमें फॉस्फोरस चक्र का अभी तक पूर्ण ज्ञान नही है।

(4) नियन्त्रण सहृति



चित्र—सामान्य नियन्त्रण सहृति

वारनर(1898) ने सर्वप्रथम सायबर्नेटिक्स (Cybernatics) शब्द का प्रयोग किया था। मानव शरीर में अनेक तन्तु, अंग व संहतियाँ हैं जिनकी कार्यिकी भी भिन्न भिन्न है फिर भी सभी स्वनियंत्रित व स्वसंतुलित हैं और इसी संदर्भ में सायबर्नेटिक्स शब्द का उपयोग भी किया गया था। एकल प्राणियों तथा समष्टियों की भांति पारितन्त्र भी अपना निर्वाह व नियंत्रण स्वयं ही करने में समर्थ है। नियंत्रणों के इस विज्ञान को ही 'सायबर्नेटिक्स' कहा जाता है। जैविक तन्त्रों की यह प्रवृत्ति जिसमें परिवर्तनों का मुकाबला कर लिया जाता है तथा साम्यवस्था में बने रह सकते हैं 'समस्थिरता' (homeostasis) कहते हैं। उदाहरण के रूप में किसी भी पारितन्त्र में आक्सीजन व कार्बन डाइ ऑक्साइड की एक मात्रा एक निश्चित स्तर पर सीमित होती है। यह मात्रा परिसीमन तन्त्र की स्वतः संचालित प्रक्रियाओं से होता रहता है परन्तु कभी कभी जीवसंख्या घनत्व में गम्भीर उतार-चढ़ाव होने से तन्त्र का प्राकृतिक संतुलन बिगड़ने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। ऐसी अवस्था में सन्तुलन को बनाये रखने का प्रयास किया जाता है अन्यथा सम्बन्धित जैविक घटक नष्ट होकर अन्य जीवों के लिये स्थान खाली कर देता है। विशाल पारितन्त्रों में पदार्थ चक्रों एवं ऊर्जा प्रवाहों की परस्पर क्रिया से स्वतः सुधारक समस्थायित्व (Self correcting homoestais) का विकास हो जाता है जिसको किसी बाहरी नियन्त्रण या निश्चित कारक की आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः निवेश के बढ़ने से नवीन सन्तुलन स्तर कुछ उच्च स्थिति में होते हैं और वहां अल्प परिवर्तनों का प्रभाव नगण्य होता है। वास्तव में उद्विकासीय समायोजन की एक अवधि के पश्चात्, एक यथार्थ अच्छा समस्थायित्व नियंत्रण प्रभाव में आता है।

सरलतम आधार पर, नियन्त्रण तन्त्रों में दो वैभव पेटियाँ—एक वैभव पेटी संवेदक व दूसरी प्रभावक के रूप में रहती है तथा एक नियंत्रित परिमाण होता है जो निगम एवं निविष्ट परिपथों के रूप में रहता है, यह संकेतों द्वारा अन्तः संयोजित होता है। नियन्त्रण पुनः निविष्ट पद्धति पर निर्भर करता है। यह पुनः निविष्ट तब होता है जब निगम अथवा उसका एक भाग निविष्ट की भांति कार्य करता है। जब भी पुनः निविष्ट धनात्मक होता है तो परिमाण बढ़ता है। धनात्मक पुनः निविष्ट प्राणी की वृद्धि तथा उत्तरजीविता के लिये आवश्यक होती है। ऐसी स्थिति में नियन्त्रण तो ऋणात्मक पुनः निविष्ट द्वारा ही होगा।

किसी भी पारितन्त्र के स्तर पर कार्य करने वाली नियन्त्रक विधियों में वे विधियाँ ही शामिल हो सकती हैं जो पोषक तत्वों के संग्रहण तथा मुक्ति पर तथा कार्बनिक पदार्थों के उत्पादन तथा अपघटन पर नियन्त्रण रखती है।

बडे परितन्त्रो मे तो खनिज-चक्रो तथा ऊर्जा प्रवाह की अन्त क्रियाएं स्वशोधित समस्थिरता उत्पन्न करती है जिसके फलस्वरूप बाहरी नियन्त्रण या शोध बिन्दु की आश्यक्ता ही नही पडती।

यद्यपि पारितन्त्र नियन्त्रित होता है, फिर भी जब प्रतिबल बढता है तो हो सकता है कि यह ठीक पहले वाले स्तर पर लौटने मे समर्थ न हो। यह भी ध्यान देने योग्य है कि वास्तव मे अच्छे समस्थिरताकारी-नियन्त्रण, विकासीय समायोजन की एक अवधि के बाद ही प्राप्त होते हैं। पुराने पारितन्त्र की अपेक्षा नये पारितन्त्र अधिक प्रचण्ड दौलन करते हैं तथा बाहरी विक्षोपो का प्रतिरोध करने मे कम समर्थ होते हैं। पुराने पारितन्त्रो के घटकों को एक दूसरे के प्रति पारस्परिक समायोजन के लिए अवसर मिल चुके होते हैं, इसलिये वे बाहरी विक्षेपो का प्रतिरोध अधिक अच्छी तरह से कर सकते है।

□ □

पर्यावरण-संसाधन एवं संरक्षण

जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं की आपूर्ति जिन साधनों से होती है, मानव सम्पदा है और इन्हीं को संसाधन (resources) कहते हैं। आधुनिक सभ्यताओं के विकास के साथ वातावरण में उत्पन्न खतरों तथा जनसंख्या विस्फोट, अत्याधिक जनन तथा प्राप्य प्राकृतिक सम्पदाओं अथवा संसाधनों का दुरुपयोग अधिक से अधिक हुआ है। इन सभी संसाधनों को जो जीव संख्या व पारितन्त्र के मध्य सामंजस्य स्थापित करते हैं, दो प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किये गये हैं —

(i) अकार्बनिक संसाधन —वायु, जल, खनिज, जीवाश्म ईंधन, खनिज अयस्क तथा पथरीली चट्टानें आदि सम्मिलित है।

(ii) कार्बनिक संसाधन —इस श्रेणी में पादप, जन्तु व सूक्ष्मजीव (microbes) तथा इनसे उत्पन्न भोज्य पदार्थ, कोयला, तेल, प्राकृतिक गैसें, वन तथा लकड़ियाँ सम्मिलित है।

प्राकृतिक संसाधनों की बहुलता व प्राप्ति की सम्भावनाओं के आधार पर इन्हें पुनः तीन वर्गों में विभाजित किया गया है —

(क) सचित संसाधन —(Fund resources)—ऐसे पदार्थ जिनका उपयोग केवल एक ही बार किया जाता है तथा इन्हें पुनः कार्य योग्य नहीं बनाया जा सकता। जैसे—कोयला जीवाश्म ईंधन, तेल, प्राकृतिक गैसें, लौह खनिज, एल्यूमिनियम आदि। इनके आगारों अथवा भण्डारों का विस्तार मानव के बूते में नहीं है। लाखों करोड़ों वर्षों में पृथ्वी के गर्भ में बनने वाले यह संसाधन निरन्तर उपयोग में आते रहने के कारण समाप्ति की ओर अग्रसर हो रहे हैं। यह हमारे सचित संसाधन हैं और इन संसाधनों के संरक्षण की समस्या भी अत्यन्त गंभीर है।

(ख) पुनर्व्ययी संसाधन (Flow resources)—वर्षा, जल, मृदा आदि ऐसे साधन हैं जिनका निरन्तर उपयोग होता रहता है और उन्हें अन्य उपयोगी स्थिति में पुनः परिवर्तित किया जा सकता है। यह पुनर्व्ययी संसाधन कहलाते हैं।

(ग) कभी समाप्त नहीं होने वाले संसाधन (inexhaustible resources) मानव उपयोग में कभी समाप्त नहीं होने वाले संसाधनों में सूर्य सबसे

महत्वपूण है। अमेरिका के एव पारिस्थितिकविज्ञ रेफिन्डर (1968) का का अभिमत है कि $30\ 5 \times 10^{15}$ किलो कैलोरी क्षमता की ऊर्जा पृथ्वी के भीतर जीवावशेषीय ईंधन के रूप मे सचित है। यह विशाल सम्पदा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष मानव के लिए उपयोग की वस्तु रही है। मनुष्य जीवमण्डल का एक महत्वपूण सदस्य होने के नाते मूल उपभोक्ता के रूप मे प्रतिस्थापित है तथा $6\ 1 \times 10^{15}$ किलो कैलोरी क्षमता वाली ऊर्जा का अपने पोषण के अन्तगत उपयोग मे लाता है।

खनिज भण्डारों में क्षति—अन्य स्थानो पर भी कुछ उपरोक्त प्रकार के आकडे दिये गये हैं जिससे विदित होता है कि सचित ससाधन शीघ्र ही समाप्त हो सकते हैं। यदि इस तथ्य को सही मान भी लिया जाय कि विश्व की जन-सख्या आज के समान स्थिरांक पर रुकी रहेगी तथा विभिन्न खनिजो के खपत की दर भी स्थिर रहेगी, मानव उपयोग मे 'खनिजा की उपादयता' के समय के पैमाने को 'जीवन काल' कहते हैं यहा विश्व के कुछ प्रमुख खनिज भण्डारो का जीवन काल निम्न प्रकार मान्य है —

(i) हिलीयम, मशीनी तेल, प्राकृतिक गैस, युरेनियम, टगस्टन, ताबा, सीसा, जस्ता, टिन, सोना, चादी व प्लेटीनम— 2000 AD तक

(ii) एल्यूमिनियम, कोबाल्ट, मेगनीज व मोल्वेडेनम— 2100 से 2200 AD तक

(iii) कोयला, लोहा व क्रोमियम — 2530 से 2800 AD तक

खनिजो के विषय मे उपरोक्त जीवन काल अनुमान से अधिक ही प्रतीत होते हैं क्योंकि विकसित एव विकासशील देशो मे विशेषतया इनकी खपत दिनो दिन तीव्रगति से बढ रही है तथा बढती हुई जनसख्या के साथ ही शहरीकरण औद्योगीकरण की दृष्टि मे यह खपत और अधिक होने की सम्भावनाऐ ही हैं।

पुन चक्रण—अनेको खनिज अयस्का का आधुनिक तकनीकी विकास के परिणामस्वरूप तेजी से अभाव हो रहा है और भविष्य म भीषण समस्याओं का जन्म हो सकता है हम खनिजो की कमी मे कुछ देरी अवश्य ला सकते हैं क्योंकि पुन चक्रण द्वारा इन खनिज अयस्को की जीवन अवधि को बढाया जा सकता है। आज खनिजो से बने बरतनो के स्थान पर प्लास्टिक के बरतनो का बरता जान लगा है। चादी से बने सिक्को के स्थान पर ताबा, निकल गिलट व जस्ते का उपयोग होने लगा है। पादप पोषको मे नाइट्रोजन व फास्फोरस के स्थान पर जैविक पुन चक्रण की सभावनाओ की खाज की जा रही है।

हम खनिजो की कमी को लेकर भी जीवनयापन करने की विधि ज्ञात कर है। यदि हम अपने आवागमन के साधनो, ऊर्जा, उद्योगो व सचार तरीकों मे व्यापक परिवर्तनो का समावेश करने का विचार करलें तो अपनी जनसख्या पर भी कोई घातक प्रभाव नही पडेगा।

जीवावशेष ईंधन

इनके अन्तर्गत ऊर्जा के ऐसे साधनो, का समावेश होता है जिन्हें पुन उपयोग मे नही लाया जा सकता—यथा कोयला, खनिज तेल एव गैसें। विश्व मे कोयले व खनिज तेला के भण्डार क्षेत्र व मात्रा मे सीमित हैं तथा नित्य प्रति शहरीकरण व औद्योगिकीकरण के कारण उनकी आवश्यकता बढती जा रही है। खपत की वर्तमान दर से समस्त सचित राशि मे भारी कमी हो रही है और हम ऊर्जा समस्या की ओर बढते जा रहे हैं। कोयले की भी यही स्थिति है यद्यपि कोयले के सचित भण्डार पेट्रोल भण्डारो से अधिक हैं। कोयले के उत्पादन की दृष्टि मे चीन रूस, सयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, भारत, जापान, पोलैंड, चेकोस्लावेकिया, कुवैत, सउदी अरब, ईरान, ईराक, नाईजीरिया, लीबीया तथा इन्डोनेशिया की स्थिति काफी अच्छी है। भारत म कोयले के भण्डार बिहार, बंगाल, उडीसा, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, जम्मू-कश्मीर मेघालय व आध्र प्रदेश म पाये गये हैं। बंम्बई के समीप 'बाम्बे हाई' मे समुद्र तल मे तेल के नये भण्डारो का पता चला है, जहाँ 'सागर सम्राट' की सहायता से तेल का खनन किया जाता है। भारत मे कोयले के 131 000 लाख टन के भण्डार हैं जिनके विषय मे अनुमान है कि यह अगले 1000 वर्षों के लिये पर्याप्त होगे यदि इनकी खपत दर आज के समान ही रहती है। भारत आज 170 लाख टन खनिज तेल का भी उत्पादन कर रहा है जबकि उसे प्रतिवर्ष 300 लाख टन तेल की आवश्यकता है।

विश्व उर्जा की महत्वाकाक्षाएँ

औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ से लेकर सन् 1970 तक एसा अनुमान लगाया गया है कि सम्पूर्ण विश्व मे जीवावशेष ईंधन के द्वारा 16 000 लाख किलो वाट/घन्टा ऊर्जा का उपयोग किया जाता रहा है। जीवावशेष इधन (कोयले) के 95 प्रतिशत भण्डार अभी भी शेष हैं जिन्हें उपयोग म नही लाया गया है तथा 4 प्रतिशत तेल व 1 प्रतिशत खनिज गैसो के भण्डार शेष रह गये हैं। पट्रोल पदार्थों की खपत दर अपेक्षाकृत अधिक है। इलिनोनिस के ऊर्जा विभाग के निदेशक प्रा डेनिस हज् ने अपनी पुस्तक "आशा की किरणें" (Rays of Hope) म अभिव्यक्त किया है कि विशाल विद्युत सयत्रों, फक्ट्रियों तथा तीव्रगति से चलने वाले आवागमन के साधनो के निर्माण में पट्रोल एव महत्त्वपूर्ण कारक है परन्तु यह शीघ्र ही समाप्त होने वाला है।

ऐसी स्थिति मे तेल भण्डारो को लूब्रीकेशन, वायुयान तथा पेट्रोरसायन सस्थानो के लिये सुरक्षित रखना अनिवाय है। अन्तरिक्ष उष्मा तथा शीतिकरण के अनावश्यक उपयोगों के लिये पेट्रोल उपयोग का निषेध कर देना चाहिये। कवल अमेरिका ही इस क्षेत्र मे पहल कर बडी मितव्ययता कर सकता है अ यथा पेट्रोल के भण्डार इस सदी के अन्त तक जवाब दे देंगे। कोयले के भण्डार भी अधिक लम्बे समय तक साथ नही दे सकेंगे। ऐसी अवस्था मे जीवावशेषी ईंधन के विकल्प रूप मे दूसरे ऊर्जा ससाधनो की खोज करली गई है जो— जल विद्युत शक्ति, पवन शक्ति, अणु शक्ति सौर ऊर्जा तथा जैव गैस क रूप मे प्राप्त की जा सकती है।

(1) जल विद्युत शक्ति—अथ्यति जल विद्युत ऊँचाई से जल को गिराकर गतिज ऊर्जा उत्पन्न की जाती है। भारत मे कई नदियो को बाधकर अनेक ऊर्जा घरो का निर्माण किया गया है जो जल विद्युत उत्पन्न करते हैं। जल से विद्युत उत्पन्न करने हेतु—समुद्री ज्वार का भी उपयोग किया जा सकता है। फ्रास ने इग्लिश चेनल पर विद्युत उत्पादन क लिये ज्वार विद्युत सयन्त्र का निर्माण कर लिया है। भू उष्मा ऊर्जा के रूप म गम पानी के स्रोतो (geysers) से भी ऊर्जा उत्पन्न की जा सकती है।

(2) पवन ऊर्जा—विश्व के कुछ भागो मे पवन चक्कियो का उपयोग काफी लम्बी अवधि से किया जाता रहा है। राजस्थान (भारत) मे गहरे कुओ से पानी खींचने के लिये पवन चक्कियों का उपयोग आरम्भ हो गया है। योरोप व अमेरिका मे मिलो को चलाने मे यह आशातीत योगदान कर रही हैं। सम्पूण शक्ति की 0 1 प्रतिशत ऊर्जा केवल पवन शक्ति के रूप मे ही प्राप्त की जाती है।

(3) अणु शक्ति—यह ऊर्जा कुछ तत्त्वा के विखण्डन या सयोजन से प्राप्त की जाती है। अत्र युरेनियम-235 की चार ग्राम मात्रा को विखण्डित किया जाता है तो उतनी ही ऊर्जा प्राप्त होगी जो 15 मीटरीक टन कोयले के जलाने या 14 बेरेल क्रूड तेल के जलाने पर मिलती है। युरेनियम-238 व थोरियम 233 आण्विक उर्जा प्राप्ति के और भी अच्छे स्रोत हैं। यह अधिक इधन उत्पन्न करते हैं और विखण्डन के दौरान इनकी खपत भी काफी कम होती है। ऐसा अनुमव है कि 6 20 वर्षो की अवधि एक ब्रीडररिएक्टर म इसकी मात्रा द्विगुणित हो जाती है। भारत इस दिशा मे काफी भाग्यशाली है, उनके पास थोरियम के विशाल भण्डार हैं जो ऊर्जा उत्पादन के उज्ज्वल भविष्य म योगदान कर सकेंगे। भारत मे ऐसे तीन परमाणु बिजली घर कामरत है—तारापुर (बम्बई), राणाप्रताप सागर कोटा (राजस्थान) तथा कल्पाक्कम (तमिलनाडु)।

आण्विक सयोजन ऊर्जा उत्पादन का दूसरा तरीका है। जब हाइड्रोजन समस्थानिको यथा ड्यूटीरीयम व ट्राईटीयम का सयोजन होता है, हिलीयम बनती है। यही विधि सूय मे क्रियाशील है जिसकी वजह से विद्युत चुम्बकीय विकिरण होता है। ड्यूटीरीयम के आण्विक सयोजन के कारण विशाल ऊर्जा का उत्पादन होता है तथा यह समुद्री जल से प्राप्त किया जाता है। अनुमान है कि 27 घन किलोमीटर समुद्री जल उतनी ऊर्जा हेतु ड्यूटीरियम उत्पन्न कर सकता है जितनी विश्व के समस्त जीवावशेषी ईधन भण्डारा मे निहित है।

(4) सौर ऊर्जा—वतमान मे वैज्ञानिको ने ऐसी विधियां खोज निकाली हैं जिनके द्वारा सूय की किरणो से भोजन बनाने, पानी गम करने तथा कुछ मशीनो को चलाने जितनी क्षमता वाली ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है यथा धूप चूल्हे व सौर बैटरिया। सूय वह साधन है जिसमे कभी नही चूकने वाली ऊर्जा विद्यमान है तथा इसमे वायुमण्डल पर भी प्रदूषण का प्रभाव नही बनता।

(5) जव गस सयत्र—बायो गैस सय त्र का निर्माण सामान्य सिद्धात के आधार पर किया जाता है जिसमे गोबर व अन्य कावनिक पदार्थों का उपयोग होता है। इ ह जब वायु की अनुपस्थिति म किण्वित किया जाता है तो ज्वलनशील मीथेन गैस बनती है। यह 55 प्रतिशत मीथेन व 45 प्रतिशत कावनडाइ-आक्साइड का समिश्रण है। यह गाव के लोगो को घरलू काम के लिये मुहय्या की जाती है। जिस गाव मे 40-50 तक पशु होते हैं वहां हर गाँव म इस सयत्र को लगाया जा सकता है।

□ □

पर्यावरण संरक्षण मे वनो का महत्व

"वृक्ष सवेदनशीलता व असीमित उदारता की जीती जागती प्रतिमूर्ति हैं जो स्वय के जीवन के लिये आपसे कुछ नहीं मांगते, वरन अपने जीवन के सभी तत्व आपको उदारता के साथ अर्पित करते रहते हैं। वे सभी जीवो को सुरक्षा प्रदान करते है तथा कुल्हाड़ी लिये उस व्यक्ति को भी छाया देते हैं जो उन्हें निममता से काटते हैं।"
—गौतम बुद्ध

यह सारा का सारा पर्यावरण जिसम मानव भी एक मुख्य अदाकार है एव वह जिनसे जीवन का सीधा सम्ब ध है यथा वायु जल, भूमि पादप तथा जीव ज तु आदि सब कुछ मिलकर ही पर्यावरण बनता ह। पर्यावरण के यह सभी घटक, परस्पर अ त प्रक्रिया कर स तुलन को बनाय रखत हैं। सभी घटक एक दूसर को किसी न किसी रूप मे अवश्य ही प्रभावित करते हैं। यदि इनम स एक भी घटक अपन स विचलित हो जाता है ता उसकी परिणिती पर्यावरण असन्तुलन का कारण बन जाती है और भविष्य एक भयावह त्रासदी बन सकता है। भारत उन कतिपय देशो मे से एक है जि होने अपने सविधान मे पर्यावरण सरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया है। वना, झीला, सरिताओ व य ज तुआ और पादपा तथा वातावरण की शुद्धता एव उन्नति तथा अभिरक्षा मे भारत के हर नागरिक का यह कत्तव्य होगा कि वह उसकी रक्षा करे तथा जीवित प्राणियो पर दया की भावना रखे।

मानव जीवन मे अनादि काल से ही वनो का भारी महत्त्व रहा है। वेद पुराण व उपनिषदा मे भी वक्ष की महिमा को स्थान-स्थान पर स्वीकारा गया है तथा उनकी रक्षा के लिये कुछ निर्देश भी अभिव्यक्त ह। आरम्भ मे धरती का $\frac{2}{3}$ भाग वनो से आच्छादित था—12 अरब 80 करोड हक्टेयर भूमि पर वन थे और पर्यावरण, मानव जाति के लिये पूणतया अनुकूल था। पर तु मानव ने केवल अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये वन सम्पदा का वाछित उपयोग न कर शोषण वृति अपनायी तो प्रकृति उसे सहन नही कर सकी। गत् 25 वर्षों मे भारत वष मे हा 4 लाख हेक्टेयर भूमि वन क्षेत्र नष्ट हो गया है। अब देश के 328 लाख हक्टेयर भूमि मे से केवल 75 लाख हेक्टेयर भूमि पर वन रह गय हैं जो 23 प्रतिशत वन क्षत्र को दर्शाते है। स्वस्थ पर्यावरण के लिय प्रस्तावित न्यूनतम सीमा 33 प्रतिशत वन हैं। इन 23 प्रतिशत वतमान वन क्षेत्र मे भी शिलाखण्ड, हिमानिया, चट्टानें, रेत के

टीले व मरुस्थली भाग तथा नदियां भी सम्मिलित हैं। इन्हे अलग कर देने पर तो केवल 16 प्रतिशत ही वन-क्षेत्र बचा रहता है। इनमे से भी केवल 10 प्रतिशत अच्छे वन उत्पादक श्रेणी के हैं।

वन ससाधन सरक्षण पर विचार करने से पूर्व यह जानना भी आवश्यक है कि ससाधन शब्द का तात्पर्य क्या है ? ससाधन कोई पदार्थ अथवा वस्तु नहीं है, यह वास्तव मे एक क्रिया है जो एक पदार्थ प्राप्त करता है या एक प्रक्रिया है जिसमे पदार्थ भाग लेता है। मानव-ज्ञान ही सबसे बड़ा ससाधन है अत विचारकों के मतानुसार ससाधन पूर्व मे होते नही वरन् बनते है या बनाये जाते हैं। इनके बनने मे मानवीय समरद्धता की आवश्यकता होती है और इनके स्थापित होते ही ससाधन गतिक्रम में आ जाते हैं। यह ससाधन क्रियाशीलता के सिद्धान्त के प्रतिफल हैं।

जिमरमैन ने ससाधन शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए तीन महत्वपूर्ण तथ्य रखे थे —

(i) वे तत्व जिन पर मानव की आश्रयता है।

(ii) जिनमे मानव इच्छाओ की पूर्ति होती है, तथा

(iii) जिनमे कठिनाईया का सामना करने की शारिरिक व मानसिक क्षमता है। यह ससाधनो का मूल्याकन करने वालो पर निर्भर है अत यह वस्तुनिष्ठ अथवा व्यक्तिनिष्ठ होता है। विद्वानो का कथन है कि जन सख्या और उनके जीवन-स्तर तथा प्रकृति के ससाधनो के मध्य सन्तुलित अनुकूलन व सामजस्य की स्थापना ही सरक्षण का मूल उद्देश्य है।

वनों का महत्व —

1 वनो की हमारे आर्थिक जीवन मे बडी भूमिका है।
2 चरागाहो के अभाव मे यह लगभग 5 5 करोड पशुओ को चरने की सुविधा प्रदान करते है।
3 वन लगभग 50 लाख व्यक्तियो को प्रत्यक्ष रूप मे व्यवसाय दिलाते है।
4 वनो से सरकार को बडी आय होती है।
5 वनो से लकडी के अतिरिक्त कई गौण उपजें भी प्राप्त होती हैं तथा गोद, लाख, बीडी, के पत्ते, शहद मोम आदि।

अप्रत्यक्ष लाभ के अन्तर्गत वनो की न्यूनता के कारण जहा एक ओर वनो मे नमी तथा वर्षा का न होना आदि बातें सम्मिलित हैं वहा बाढो पर नियत्रण रखना, जलवायु की विषमताओ को दूर करना, जल स्तरों को

बचाना, मृदा के उपजाऊपन को बढाना, प्राकृतिक सौन्दर्य मे अभिवृद्धि तथा जीव-जन्तुओ के आश्रय स्थलो के रूप मे वनो की एक बडी भूमिका रही है।

श्री चटरबक् ने कहा है कि 'वन राष्ट्रीय सम्पत्ति है।' आधुनिक सभ्यता को इनकी महती आवश्यकता है। यह मात्र जलाने की लकडी ही प्रदान नही करत प्रत्युत् हमारे उद्योगो के लिये कच्चा माल व पशुओ के लिये चारा भी प्रदान करते हैं। उपरोक्त सदर्भ मे कलकत्ता विश्वविद्यालय के वनस्पतिविज् डा तारक मोहन दास के द्वारा भारतीय विज्ञान काग्रेस म पढे गये शोधपत्र से एक उदाहरण प्रस्तुत है। उन्होने एक वृक्ष की कायक्षमता का रुपयो मे वास्तविक मूल्याकन किया था। उनका कथन था कि वृक्ष को काटने पर उसका केवल 0 3 प्रतिशत मूल्य प्राप्त होता है, शेष 99 7 प्रतिशत समाज के लिये किसी उपयोग का नही रह जाता। उनके अनुसार एक 50 वष पुराना वृक्ष जिसका भार 50 टन हो, अगल 50 वर्षों के लिये 15 7 लाख रुपये मूल्य का लाभ निम्न प्रकार देगा।

		मूल्य (10 लाख रुपयो मे)
1	एक वष म उत्पन 1000 किलोग्राम आक्सीजन (5 र प्रति किलोग्राम की दर से)	— 0 25
2	वायु प्रदूषण एव वायुमण्डल की स्वच्छता (वैज्ञानिक यन्त्रों की सहायता से मापा गया)	— 0 50
3	वर्षा के जल का सचय तथा वायुमण्डल मे आद्र ता नियत्रण	— 0 30
4	भूमि कटाव से बचाव तथा नदियो, बाधा आदि में सिल्टिग से सुरक्षा	— 0 25
5	पक्षी एव जीव जन्तुओ का आश्रय	— 0 25
6	पशुओ के लिये पेड की पत्तियो से प्रोटीन	— 0 02
	जोड	रुपये 1 57

यह एक अकाट्य सत्य है कि औद्योगिकीकरण की त्रासदी मे धसती दुनिया को केवल 'वन व वक्ष' ही उबार सकते हैं क्योकि वनो का सबसे बडा योगदान वातावरण को परिशुद्ध एव स्वच्छ रखना है। जीवजन्तु श्वास क्रिया मे कार्बन डाईऑक्साइड गस निष्कासित करते है तथा कोयला, पेट्रोल, डीजल आदि के दहन के परिणामस्वरूप भी वातावरण अशुद्ध हो जाता है। वृक्ष इस अशुद्ध वायु को ग्रहण कर प्रकाश सश्लेपण क्रिया द्वारा ऑक्सीजन व पोषक तत्वो का निर्माण करते हैं। इस प्रकार मानव का स्वस्थ एव दीर्घायु बनाने हेतु वनो का

होना आवश्यक है। मानव का अस्तित्व, उसकी प्रगति एवं समृद्धि काफी हद तक वनों व वृक्षों पर ही निर्भर है। अतः उसे स्वयं वनों के प्रति अपने दायित्व का बोध होना चाहिये। चूंकि अब हमारे वनों का प्रतिशत काफी अधिक मात्रा में गिर गया है और निरंतर गिरता ही जा रहा है इस कारण अनेक वन्य प्राणी भी विलुप्त हो गये हैं। इन जीवधारियों के विलुप्तीकरण का सीधा संबंध पर्यावरण असंतुलन से है। आज प्रश्न यह उठ खड़ा हुआ है कि दुर्लभ वन्य जन्तु व वनस्पति के लिये प्रतिकूल बनते जा रहे पर्यावरण की रक्षा किस प्रकार की जाय?

हिमालय पर्वत माला अनादि काल से ही इतिहास में भारत की जन प्रहरी के नाम से जानी जाती रही है। एशिया महाद्वीप की अनेक जन जातियों ने उत्तर की ओर से अनेक बार भारत पर आक्रमण किये, किन्तु हर बार हिमालय के उस विस्तृत एवं बीहड़ क्षेत्र ने जो 500 मीटर से 8000 मीटर तक की ऊंचाई पर स्थित है तथा सदैव बर्फ से ढका रहता है एक सिपाही की भांति भारत की सुरक्षा प्रदान की है। राष्ट्रीय सुरक्षा तथा विकास के नाम पर 1962 के चीनी आक्रमण के पश्चात वाहनों के लिये यहां सड़कों का जाल बिछा दिया गया है। अब यहां स्थिति पूर्णरूप से बदल गई है। भारत अब उत्तर दिशा की ओर से आक्रमण को लेकर "सुरक्षित नहीं" कहा जा सकता है'। इस क्षेत्र में घने जंगल हैं, पेड़ों व झाड़ियों की अनेक प्रजातियाँ पायी जाती हैं। अलकनन्दा, भागीरथी (गंगा) काली यमुना सिन्धु, ब्रह्मपुत्र आदि बारहमासी नदियां सम्पूर्ण भारतवर्ष की प्राण धाराएं हैं और यहां के मनमोहक जलवायु से आकृष्ट होकर अनेक लोग इस क्षेत्र में आकर बस गये हैं। अब इस पहाड़ी क्षेत्र में अनेक सैलानी क्षेत्रों, यथा—शिमला, मसूरी, नैनीताल दार्जीलिंग आदि का विकास हो गया है।

नये दौर का आरम्भ हुआ। आर्थिक लाभ के लिये मानव ने प्रकृति रूपी कामधेनु का अंधाधुंध दोहना आरम्भ कर दिया घने जंगलों पर कहर बरपने लगा, विनाशलीला का नंगा ताण्डव आरम्भ हुआ जो उग्र से उग्रतर होता गया। वन सिमटने लगे और बस्तियों से दूर होने लगे। जंगलों के विरुद्ध तो जैसे युद्ध ही छिड़ गया। बस्तियों में बिना सोचे विचारे हजारों की संख्या में पेड़ काट डाले और नदियों के माध्यम से उन्हें बहाकर ले जाया गया। आज भी यह क्रम जारी है। भूस्खलन व बाढ़ का सिलसिला अब आम बात हो गयी है। नतीजा यह निकल रहा है कि धरती की जल अवशोषण की क्षमता भी बहुत कम हो गयी है। कहना होगा कि हिमालय क्षेत्र में संकट गहराता गया है। जंगलों के कट जाने से पर्यावरण का असंतुलन तो हुआ ही है, वहां के जन जीवन पर भी सामाजिक तथा आर्थिक कुप्रभाव

पडा है। यह जगन स्थानीय लोगो के लिये, चारे जलाने की लकडी तथा खेती के उपयोगी औजार बनाने के मुख्य साधन थे। जगनो के सिकुडन से वहा का जन-जीवन कठोर, कष्टमय व अस्त-व्यस्त होने लगा है और इसान सोचने को मजबूर हो गया—इस दुश-चक्र स किस प्रकार निजात पायी जाय।

सन् 1965 म देश म लकडी का औद्योगिक उपयोग 127 लाख टन था जो 1990 के वष तक 326 लाख टन हो जाने का अनुमान है। इसी प्रकार इधन के रूप म लकडी का उपभोग 1965 मे 1040 लाख टन था सन 2001 तक 2900 लाख टन होने की सम्भावना है। सन 1980 के आकडो के अनुसार लकडी का वृद्धि दर 5 लाख टन प्रतिवष है। वनो की दृष्टि मे राजस्थान राज्य की स्थिति अत्यत दयनीय है। रेगिस्तान के प्रसार को रोकने के लिय तो राज्य सरकार तथा जनता को व्यक्तिगत आधार पर बहुत कुछ करना होगा।

एक विद्वान न सही कहा है 'वक्ष तो बिना मानव के भी जी सकता है परतु मानव बिना वक्ष के नही जी सकता है।" प्रसिद्ध कवि हरिन्द्रनाथ चट्टोपध्याय न भावुकतावश कहा था कि जब भी कोई वृक्ष गिरता है ईश्वर के शरीर मे दरार पडती है' तथा आह्वान किया 'वृक्ष, तुम्हे बचाना ही होगा और तुम निश्चित रूप से बचाय भी जावोगे'।

टेहरी-गढवाल निवासी श्री सुदरलाल बहुगुणा के रूप म वक्षो को एक सच्चा मित्र मिल गया उन्होने वक्षो की सुरक्षा क लिये अपना सम्पूर्ण जीवन ही समर्पित कर दिया है। वन-सरक्षण की दिशा मे 'चिपको आदोलन' उनका साहसी कदम है। उत्तराखण्ड मे जन्मा और चल रहा चिपको आन्दोलन केवल हिमालय के पवतीय भाग मे पडो की कटायी रोकने का प्रतिकारात्मक आदोलन नही है एक प्रत्यक्ष दशन है, एक जीवान्त विचारधारा है और मौजूदा भोगवादी सभ्यता के खिलाफ एक खुली बगावत हैं'। यह उपरोक्त कथन प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक तथा भारत म 'हरित क्राति' के उत्प्रेरक प्रो० स्वामीनाथन का है। बगावत का यह बिगुल 27 माच सन् 1973 को चमोली जिले के मण्डल गाव मे सवप्रथम बजा जब उत्तर प्रदेश की सरकार द्वारा इलाहाबाद की एक खेल-कूद का सामान बनाने वाली कम्पनी को अगू (Ash) के पडों का काटन से गाव के लोगों ने रोक दिया। उन लोगो ने प्रतिरोध के स्वर मे कहा जिन पेडो को हमने पाला पोसा है, उनका उपयोग हम अपने जीवित रहने के लिय तो नही कर सकते हैं, बहुत दूर आमाद-प्रमोद के साधनो के निर्माण के लिय उन्हे ठेकेदारो को बेचा जा सकता है' यह कौनसा विज्ञान है?"

चमोली के लोगो ने इस वाणिया विज्ञान का यह कहकर चुनौती अवश्य दे डाली "यदि पेड काटने वाले कुल्हाडिया लकर आये तो हम उनसे चिपककर उनकी रक्षा करेंगे। यह कुल्हाडिया जिले के केदारनाथ क्षेत्र म मन्दाकिनी घाटी की ओर मुड गई। वहा भी बगावतियो न उनका पीछा किया तथा वक्षो को काटने से रोक रखा।

जुलाई 1970 म अलकनन्दा की धारा मे अवरोध उत्पन्न हो जाने के कारण गगा नदी में भयकर बाढ आयी और जन धन की अपार क्षति हुई। कई गावो के धसने के चिह्न देखे गये व अनेक स्थानो पर भूस्खलन के कारण बहुत सारे व्यक्ति दब गये। ऐसे ही समय चिपको आन्दोलन' को नया बल मिला।

मार्च 1974 मे ही अलकनन्दा क्षेत्र मे स्थित 'रेणी गाव के निवासियो को वहा पर अकित वक्षो का रोकने की प्रेरणा दी। इन वक्षो को काटने हेतु एक ठेकेदार को बेच दिया गया था। जब पेड काटे जाने लगे, कुल्हाडी लिये मजदूरो को वहा की महिलाओ न यह कह कर जगल से बाहर खदेड दिया था 'यह जगल हमारा पीहर मायका है हम इसे कटने नही देंगी।" मायका महिलाओ के लिये वह स्थान होता है जो सकट के समय उनका सबल बन कर खडा हो जाता है।

रेणी गाव के आन्दोलन के पश्चात, अगस्त 1974 मे चिपको आन्दोलन के कार्यकर्ताओ का ध्यान विरोजा व तारपीन बनाने वाले चीढ के पेडो से लीसा निकालन हेतु पेड पर किये जा रहे गहरे घावो से होने वाली क्षति की ओर गया। इसके लिये अक्टूबर 1974 मे धरने देकर नीलामी के समय अवरोध उत्पन्न किये गये तथा उपवास रखकर सरकार का ध्यान आकर्षित किया गया।

30 मई 1977 को उत्तराखण्ड के पाच मनिषियो ने चीढ के पेडो का क्रन्दन सुन टेहरी गढवाल जिले के हेवल घाटी मे चीढ के पेडो पर गीली मिट्टी का लेपकर गोद निकालने हेतु ठोकी गई कीलो को निकाल कर फेंक दिया तथा उनकी रक्षा की।

इन सबका परिणाम यह निकला कि हिमालय के वनो की सुरक्षा के लिये चिपको आन्दोलन की मांगों का समर्थन करते हुए उत्तर प्रदेश सरकार ने भी अपनी वन नीतियो म आमूल चल परिवर्तन करने का मानस बना लिया। कुछ अवसर पर घाटी की महिलाओ ने अल्वाणी गाव मे कटाई के लिए अकित पेडो को राखी बाधकर उनकी रक्षा का सकल्प लिया।

इसी प्रकरण मे वृक्षो को काटने को लेकर महिलाओ की एक और वदना सामने आयी है। राज्य सरकार न वैज्ञानिक दोहन की दुहाई देकर वनो का काटना जारी रखा। वन अधिकारियो को विज्ञान सिखाने हेतु अनपढ महिलाओं के नाम लेकर भेजा गया। परन्तु महिलाओ न दिन-दहाडे जलती हुई लालटेनो से उनका स्वागत किया।

अदवाणी के जगला मे ग्रामीणा को लालच देकर फुसलाने के जब कुल्हाडी वाला के सब ही प्रयत्न असफल रह तो 1 फरवरी 1978 को सशस्त्र पुलिस के 50 जवाना की टुकडी कुल्हाडी वाला को साथ लेकर वहा पहुची। इस अवसर पर स्वय महिलाएँ यह कहत हुए पेडो के साथ चिपक गई 'पड नही, हम कटेंगी", और सगीन तनी की तनी रह गई।

'चिपको' आन्दोलन केवल हिमालय मे रहने वाले लोगो की समस्या का उत्तर नहीं है यह तो समस्त मानव जाति की समस्या का हल है। परतु 'चिपको' के लिये भी वडा सकट बना रहता है। वन के ठेकेदारो, उद्योगपतियो और उनका शह देने वाले राजनीतिज्ञो तथा प्रशासनिक अधिकारियों के सगठित विरोध का सामना करना पड रहा है। उनके पास बगावत करने के लिये कानून की तलवार है। यह सच है कि भाषणो म 'चिपको' को समथन देना आज फैशन बन गया है—बुद्धिजीवी व वैज्ञानिक इस निष्कष पर अवश्य पहुच गये है कि अब राजनीतिज्ञो का युग समाप्त हो गया है और पारिस्थितिकी (Ecology) का युग आरम्भ हो गया है। स्वय श्री सुन्दरलालजी वहुगुणा के लेख-चिपको सरक्षण का अभिनव 'जन आन्दोलन पढ कर यही निष्कष निकलता है कि उस गरीब वृक्ष की पुकार' सुनने वाला कोई नही है।

वनो तथा वृक्षों के सरक्षण के सदभ मे गढवालियो का चिपको आदोलन, राची (बिहार) म नेता बारसा मुण्डा की बगावत तथा डोली (राजस्थान) के विश्नोई समाज का योगदान सवविदित है। लगभग 500 वष पूव भी राजस्थान मे जोधपुर राज्य के रामासडी गाव की श्रीमती करमा व श्रीमता गौरा ने वृक्षा की रक्षा हेतु अपने प्राण योछावर किये थे। दूसरी घटना ग्राम तिलासणी (जोधपुर) म श्रीमति खीवणी तथा श्रीमति नेतू जीणा ने पेडो को काटने पर विरोध प्रकट किया और मौत की वलिवेदी पर खुशी खुशी चढ गई। खेजडली भी जोधपुर से 25 कि मी की दूरी पर एक छोटा गाव है जहा 1787 AD म खेजडी के पडो का काटने पर श्रीमती अमता देवी दामी व चीमा ने न केवल इसका विराध ही किया वरन् साथ मे 363 महिलाओ न अपने प्राणो की आहुति दे दी। महिलाओ का सीधा सम्ब ध गह ऊर्जा से है अतएव महिलाएँ परस्पर जागरूकता उत्पन्न कर परिवार

कल्याण, आर्थिक व स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रमों को सफल बनाकर पर्यावरण शुद्ध रखने का सफल प्रयास कर सकती हैं और समाज को विषम परिस्थितियों से बचा सकती हैं।

'चिपको' शब्द पेड़ों को काटने से बचाने के लिये पेड़ों का आलिंगन करने या उनसे चिपक जाने के आधार पर प्रचलित है। यह शब्द विश्व के सभी साहित्यों में लोकप्रियता के ऊंचे सोपान लांघ गया। 'चिपको' दक्षिण भारत में भी अप्पिको के रूप में उभर कर सामने आया। 'अप्पिको' कन्नड़ भाषा का शब्द है और चिपको का पर्याय है। यह आंदोलन चिपको के 10 वर्ष के पश्चात अगस्त सन् 1983 में प्रकट हुआ था तथा बयेही हाउडल प्रोजेक्ट पर कन्नड़ के लोगों ने शुरू किया था। यह काफी जोश-खरोश के साथ एक महीना व आठ दिन तक चलता रहा था। युवाओं ने जब देखा कि उनके गांव के चारों ओर के जंगल धीरे धीरे गायब होते जा रहे हैं वे इस आंदोलन में जोर-शोर से लग गये। उन्होंने पाया कि कागजों पर तो प्रति एकड़ दो पेड़ों की कटाई दिखाई जाती है परन्तु वास्तव में काफी अधिक संख्या में पेड़ काटे जाते हैं। गांव वालों ने हर पेड़ों के काटे जाने पर पूरी तरह पाबंदी लगाने की मांग की। यहां पर लोगों का यही नारा था कि पेड़ों को काटना है तो पहले हमारे ऊपर कुल्हाड़ी चलाओ। अहिंसा के इस आंदोलन ने अन्य लोगों को भी प्रेरणा दी है।

इस प्रकार के आन्दोलन, प्रकृति के नाजुक सन्तुलन को बनाये रखने की राह दिखाते हैं जो सामूहिक हैं, व्यक्तिवादी नहीं। पुरुषों, स्त्रियों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं छात्रों, वैज्ञानिकों यहां तक की सरकारी अधिकारियों ने भी ऐसे आंदोलनों को स्वीकारा है। अब यह आवश्यक हो गया है कि नाजुक व जल ग्रहण क्षेत्रों में किसी भी किस्म के पेड़ों का गिराया जाना रोक दिया जाय और वनाच्छादन बढ़ाया जाय। वन व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य होना चाहिये— मिट्टी की रक्षा, जलधारण व पर्यावरण का सन्तुलन। वनरहित कर दिये गये पहाड़ी ढलानों को फिर से हरा भरा बनाने के लिये वृक्षारोपण किया जाय जिसमें जनता का भरपूर सहयोग लिया जाय। संरक्षण की दृष्टि से वन रक्षा व वन-रोपण एक ही तस्वीर के दो पहलू हैं और लोगों को शिक्षा के माध्यम से यह महसूस कराना आवश्यक है कि यह कार्यक्रम उनका अपना है।

□□

पर्यावरण प्रदूषण

पर्यावरण प्रदूषण, आधुनिक युग मे, मानव के लिये सबसे बडी चुनौती बन गई है। विकसित व विकासशील देश सभी, इस समस्या से गभीर रूप मे चिन्तित हैं। भूतपूर्व प्रधान मन्त्री स्व श्रीमति इदिरा गाधी ने पर्यावरण प्रदूषण के खतरो को पहिचाना और इस पर काबू पाने के लिये स्वतन्त्र केन्द्रीय पर्यावरण मत्रालय की स्थापना की। तब से अब तक राजकीय और गैर राजकीय स्तरो पर अनेक विचार गोष्ठियो मे इस समस्या के समाधान के उपाय ढूढने का प्रयत्न किया जा रहा है। पर्यावरण सम्बन्धी रक्षा कानून बना दिये गये हैं परन्तु मात्र कानून बना देने से ही तो काम नहीं चल सकता। जब तक आम आदमी को पर्यावरण प्रदूषण तथा उसके सम्भावित खतरो से अवगत नही करवा दिया जाता, तब तक इस समस्या के समाधान की कल्पना करना ठीक नही होगा। साधारणत हम जिस स्थान पर निवास कर रहे हैं, उसके आस-पास के सभी प्राकृतिक परिवेश जैसे जल, वायु मृदा वनस्पतिया, धूप, वन एव वक्ष तथा वन्यप्राणी आदि हमारा पर्यावरण या प्राकृतिक वातावरण बनाते हैं। फिलहाल उचित होगा, हम देखें की 24-25 किलोमीटर तक की मोटाई तक की वायुमण्डल-वायु का आवरण हमे लपेटे हुए है, उसमे से भी 15-16 किलोमीटर की वायु पट्टी को समझने भर मे काम चल जायेगा। इसी पट्टी मे हम देखने को मिल जाता है—बदलता है रग आसमा कैसे कैसे!

इसी पट्टी मे हम जीवनोपयोगी विभिन्न गैसें भी मिल जाती हैं जिनम प्रधान हैं, नाइट्रोजन 78 प्रतिशत, ऑक्सीजन 21 प्रतिशत और शेष 1 प्रतिशत में जलवाष्प, रजकण, सूक्ष्म-जीवाणु, परागकण, हाइड्रोजन, हिलीयम, आगन नियोन, क्रिपटान कार्बन डाइऑक्साइड आजोन आदि की बारात। वर्तमान मे हम ऐसे पर्यावरण मे रह रहे है जो जैविक क्रियाओ का बना है। आक्सीजन जो हम श्वसन मे ग्रहण करते है कार्बन डाइऑक्साइड का हरे पादपो द्वारा उपयोग कर बनती है और इस प्रकार पर्यावरण स्वत ही शुद्ध होता रहता है। ऐसा भी अनुमान है कि गत 100 वर्षों मे 12 5 लाख टन फिलिन्ट, 14 टन आरसेनिक, 60 लाख टन कोबाल्ट, व 8 लाख टन निकिल जो अत्यन्त विषैले तत्त्व हैं, वायु पट्टी मे प्रवेश कर चुके है। जीवावशेष इधन के ज्वलन से इस शताब्दी मे 24 लाख टन ऑक्सीजन का दहन हुआ है व 26 लाख टन कार्बन डाइ ऑक्साइड वायु मे विमुक्त हुई है। इसके परिणामस्वरूप वायु मण्डल मे कार्बन डाइ आक्साइड की प्रतिशत बढी है और ऑक-

सीजन की प्रतिशत कम हुई है। यह स्थिति अत्यन्त भयावह है। स्पष्ट है कि प्रकृति ने वनस्पति को जीवनदायिनी नाइट्रोजन तथा मनुष्य को प्राणवायु आक्सीजन बड़ी ही दरियादिली से बख्शी है, अगर हम चाहें तो शराफ्त से प्रकृति के साथ मिलकर इसका भरपूर लाभ उठा सकते हैं,

पर्यावरण सम्बन्धी प्रदूषण जल व वायु तक ही सीमित नहीं रह गया है, प्रदूषण तो आज सबके खान-पीन मे भी है शोर-शराबे में है, साथ ही नागरिक और पारिवारिक जीवन मे भी समा गया है। धर्म सम्बन्धी विचलित कर देने वाली बावली लहर मे भी विद्यमान है। मानव मात्र की इस उखाड-पछाड से खुदा तो नही, मगर उसकी खुदाई मे प्रकृति को अवश्य ही चक्कर म डाल दिया है।

जन-सख्या वृद्धि जिस तीव्रता के साथ खाद्य भण्डारा का सफाया करने म उतारू हो गई है उससे तो स्पष्ट है कि यदि आज मछलियां नहीं होती तो मनुष्य का क्या हश्र होता ? एक बार बनारस शहर मे गगा किनारे जाकर दखिये, वहा पर हर सौ कदम पर पावन गगा मे गदे नाले प्रवाहित हो रहे है। मुर्दे भी नहाने वालो से आकर टकरा जाते है। भारत की सबसे पवित्र पावना नदी का यह एक उदाहरण है। हमारी सैकडो नदियो, तालावा और झीलो पर क्या बीतती होगी।

आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण शहरीकरण तथा भोगविलास की अधी दौड मे मानव पागलो की भाति भागा जा रहा है उसे पीछे मुडकर दखने स क्या वास्ता ? उसे तो बस उद्योगो को बढाना है, बस्तिया व कोलोनिया बसानी है। प्रकृति द्वारा बख्शी धरती भी उस छोटी पडने लगी है। एक ओर वह निरतर जगलो को काटता चला जा रहा है तो दूसरी ओर 'हरित क्राति' के नाम पर मरुस्थलो मे बाग लगाने की तमन्ना रखता है। सागर तटा को पाटते-पाटते जितनी भूमि और मिल जाय, इस जुगाड मे लगा हुआ है। ले देकर जो अत्यन्त उपजाऊ सागर तट की एक सकरी सी पट्टी, उसे विरासत में मिली हुई है उसे भी उजाडने म कोई कसर नही रख छाडी है।

बीसवीं सदी मे वातानुकूलन का एक बडा शौक चर्राया है जो प्राकृतिक सतुलन को बिगाडने का एक अनुपम साधन है। गर्मी मे शात की ओर सर्दियो मे उष्णता की, शील बिना म सुख की इच्छाएँ नित्य प्रति बढती जा रही है। गर्मिया म उसे गोभी व मटर की आवश्यकता है तो शरद ऋतु म भोजन क साथ आम व खरबूजे भी चाहिये। यह सब करिश्में तो केवल बिजली घर ही दिखा सकत है जो वातानुकूलन तथा पखा आदि के सामयिक कार ण का एक मात्र साधन हो सकते हैं। आईये—जरा उस वायु आवरण

पृथ्वी के कम्बल की ओर भी गौर करें जिसमे चिमनियो, कारो, ट्रको, रेल-गाडियो व फैक्ट्रियो आदि से निकला धुआँ पूरी तरह समा गया है। स्टील के कारखानो से, धातु उत्पादक सस्थानो से, खाद्य तथा कीटनाशी रसायन उद्योगो से, तेल शोधक रिफायनेरीज से, खेतो व वनो मे स्थान-स्थान पर जलाये जाने वाले कूडे के ढेरो से उठते हुए धुआँ मे सल्फर डाइ आक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड जानलेवा कार्बन मोनाक्साइड पारा एस्बिस्टॉस, सीसा, जस्ता अमोनिया, कोबाल्ट, आरसेनिक व रेडियाधर्मी गैसो की भरमार रहती हैं जो वायुपट्टी मे व्याप्त होते जा रहे हैं।

द्वितीय विश्व युद्ध (1939-45) के पश्चात अमेरिका व रूस ने बेतहाशा परमाणु विस्फोट किये, जिन्होने पर्यावरण की तो धज्जियां ही उडा दी। उनसे विषाक्त घास आदि चरने पर मवेशियो तथा उनका दूध पीने वाले जीव मत्यु का आलिगन करने लगे, तब हारकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अणु विस्फोट पर रोक लगानी पडी— लेकिन परीक्षणो हेतु तो आज भी भूमिगत विस्फोटो का क्रम रुका नही है।

खाद्य प्रदूषण के क्षेत्र में तो भारत अद्वितीय व अग्रणी कहा जा सकता है यहा तक कि जीवनदायी दवाईयो और सखिया (Arsenic) तक मे मिलावट का बोलबाला हो गया है। फलत मिलावटियों ने आपका जीना तो जीना, मरना भी मुश्किल कर दिया है।

2 प्रदूषण एव जन स्वास्थ्य

अपने अल्पकालीन लाभ के लिये मानव प्राकृतिक सम्पदाओ का दोहन करता आ रहा है। उसने यह कभी नही सोचा कि इससे वातावरण मे अवाछनीय परिवर्तन आ जावेंगे। बिना सोचे समझे मोटर गाडियो व रेल गाडियो का प्रयोग औद्योगिकीकरण कृषि का औद्योगिकीकरण, जनसख्या वद्धि, शहरीकरण, मानव की नित्य प्रति बढती हुई महत्वाकाक्षाएँ, आवश्यकताएँ, प्लास्टिक जसे मश्लेषित रसायनो का अधिक से अधिक उपभोग आदि सभी वातावरण म अनिश्चितता व दूषण उत्पन्न कर रहे हैं। आज यह स्वयसिद्ध हो चुका है कि सभी प्राणी, जन्म से लेकर मृत्यु तक, अपने सम्पूर्ण जीवनकाल मे पर्यावरण के सभी प्राकृतिक ससाधनो का मुक्तरूप से द्रुतगति से उपभोग करते हुए, जैविक-क्रियाएँ सम्पादित कर रहे हैं।

कोई भी ऐसी प्रक्रिया अथवा पदार्थ जो प्राकृतिक ससाधनो के मुक्त उपयोग म बाधा डालते हो या व्यवधान उत्पन्न करते हैं, उन्हें 'प्रदूषक' कहा जाता है, तथा फल के रूप मे स्थिति को 'प्रदूषण कहा जाता है। दूसरे शब्दो मे इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है कि "प्राकृतिक साधनों की शुद्धता को प्रभावित कर, उनकी जीवन उपयोगिता को कम करने या नष्ट

करने वाले पदार्थ 'प्रदूषक' और ऐसी प्रक्रिया 'प्रदूषण' है। सीधे अर्थों में अभिव्यक्त है कि अवांछनीय पदार्थों या तत्वों की मिलावट ही प्रदूषण है। यह भी कहा जा सकता है कि प्रदूषक उन वस्तुओं के अवशेष हैं जिन्हें हम बनाते हैं, उपयोग में लाते हैं और बाद में उन्हें फेंक देते हैं। बढ़ती हुई आबादी तथा प्रति व्यक्ति बढ़ती हुई आवश्यकताओं के कारण व्यक्ति प्रति वर्ष अधिक से अधिक अवशेषों को फेंकता है तथा फेंकी गई वस्तु को पुनः काम योग्य बनाई जाय तो उस पर वास्तविकता से भी अधिक रकम को खर्च करना पड़ सकता है जिसका भार मानव समाज को ही वहन करना पड़ता है।

हरित क्रांति की सफलता के लिये भारी मात्रा में उर्वरकों, कीटनाशियों, पीड़कनाशियों, आदि का इस्तेमाल किया जा रहा है जिससे जल-प्रदूषण को बढ़ावा मिल रहा है। विशाल उद्योग, अवश्य ही मानव समाज के लिये उन्नति का मार्ग खोल रहे हैं, वहीं वे सश्लेषित रसायनों-पारा, सीसा, जस्ता आदि से उत्पन्न अज्ञान उत्पादनों को जन्म दे रहे हैं। रेडियोधर्मी तत्त्वों से होने वाले जल एवं वायु प्रदूषणों को छिपाया नहीं जा सकता। कोयला डीज़ल, पेट्रोल व अनेक जीवाश्म ईंधनों से श्वास को अवरुद्ध करने वाली गैसें भी जीवन के लिये खतरा सिद्ध हो चुकी है। प्लास्टिक जैसे सश्लेषित रसायन भी ठोस अपशिष्टों से छुटकारा पाने की समस्या भी बराबर बढ़ती जा रही है। नये अपमार्जक (detergents) (जिनका सूक्ष्मजीवों द्वारा अपघटन नहीं हो सकता) भी नदियों व तालाबों को दूषित कर रहे हैं। प्रदूषण की यही समस्याएँ हर व्यक्ति को बाधे हुए है। इसकी गम्भीरता भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न हो सकती हैं—अविकसित राष्ट्रों में भोजन व प्राकृतिक सम्पदाओं की कमी प्राणियों में अपशिष्टों के कारण, रोगों को उत्पन्न करने में सहायक हैं तो विकसित राष्ट्र औद्योगिकीकरण, कृषि औद्योगिकी व रसायन प्रदूषण से गम्भीर रूप में ग्रसित है।

प्रदूषण क्या करता है ?

यह मानव समाज को तीन प्रकार से प्रभावित करता है —

(i) संसाधनों के उपयोग के पश्चात उत्पादों का अनावश्यक रूप में शेष रह जाना तथा उनसे हानियाँ।

(ii) प्रदूषण की मात्रा में कमी लाने के कारण या उनके नियन्त्रण का अत्यधिक व्यय मानव समाज को वहन करना, तथा

(iii) प्रदूषण के कारण मानव स्वास्थ्य पर कुप्रभाव।

उपरोक्त तीनों में से प्रदूषण का अन्तिम प्रभाव ही सबसे अधिक खतरनाक सिद्ध हो रहा है। अध्ययन व आंकड़ों से ज्ञातव्य है कि तपेदिक, मोतीझरा व

व डिपथिरिया जैसे संक्रामक रोगो से मृत्यु दर मे भारी कमी आयी है परन्तु वातावरण सम्बन्धी श्वास रोगो व कैंसर से मृत्युदर उतनी ही अधिक बढ गई है।

लेव तथा सेस्किन (1970) के आकलन के अनुसार केवल शहरी क्षेत्रो मे ही वायु प्रदूषण मे 50 प्रतिशत कमी से रोगो के उपचार तथा बीमारी मे खोये गये काम घन्टो की कीमत के रूप मे सालाना 20 खरब डालर की बचत हो सकती है। इस बचत मे मोटर गाडियो एव औद्योगिक दुघटनाओ के कारण होने वाली मानव विपदाओ, मृत्यु अथवा असमथता (disability) की कीमत सम्मिलित नही है। इन दोनो ही लेखको ने सभी श्वसन रोगो तथा वायु प्रदूषण के मध्य गहरा सम्बन्ध भी प्रमाणित किया था। इनकी मान्यता है कि कैंसर से होने वाली मत्युओ को प्रदूषण से सम्बंधित बतलाने के लिये भी काफी प्रमाण उपलब्ध है। ज्यो-ज्यो मानव शरीर पर वातावरणीय प्रतिबल बढते है, शारीरिक प्रतिरोध कम हो जाता है और रोग बढ़ जाते है।

वायु-प्रदूषण व जन-स्वास्थ्य

वायु प्रदूषण के बढते प्रकोप का अध्ययन पश्चिमी देशो मे आरम्भ किया गया। शर्टलिन व लैंडो (1961), कोहने एव साथी (1972) तथा मस्टार्डी एव लेयोनार्ड (1974) ने ब्रिटेन व अमेरिका मे वायु-प्रदूषणो से होने वाले मानव रोगो की विस्तृत समीक्षा की है। भारत मे भी केन्द्रीय जन स्वास्थ्य इन्जीनियरी अनुसधान सस्थान, नागपुर ने 1970 म चार महानगरो के पर्यावरण का सर्वेक्षण किया था और अत्यधिक चौकाने वाले आकडे प्रस्तुत किये थे।

देहरादून के चूना पत्थर उद्योग की एक सर्वेक्षण रिपोर्ट यहा प्रस्तुत की जा रही है। यह उद्योग दो भागो मे विभक्त है (i) भट्टिया म चूने के पत्थर को जलाकर चूना प्राप्त करना तथा (ii) जला हुआ चूना पत्थर मशीनो म पीसकर चूना तैयार करना। इस उद्योग मे निरन्तर गैसें, धूल व धुआ निकलता रहता है। गैसो म कार्बन डाइऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, नाइट्रोजन के आक्साइडस तथा हाइड्रोजन साइनाइड प्रमुख हैं। इस उद्योग मे लगे 50 कर्मचारियो के स्वास्थ्य के अध्ययन मे पाया गया कि परिणाम काफी चिन्ताजनक थे। क्योकि 40 कर्मचारी श्वास के रोगों व रक्ताल्पता ((anaemia) से ग्रसित थ। 20-25 वय आयु वग के कर्मचारी अपेक्षाकृत पर्यावरण प्रदूषण स कम प्रभावित थे लेकिन 30 वष से अधिक आयु वग वाले कर्मचारी अधिक। रक्त परीक्षण पर 60 प्रतिशत से अधिक कर्मचारी रक्ताल्पता के शिकार थे, इनकी नाडी गति धीमी तथा रक्तचाप भी कम था। खासी, बलगम, जुकाम, गले के रोग 75 प्रतिशत से

अधिक ही लागो को थे। यह बात भी सर्वेक्षण द्वारा ज्ञात हो सकी कि उस उद्योग के अतिरिक्त समीप मे रहने वाले नागरिको में भी उपरोक्त रोग का पता लगा है।

सारिणी

गैसीय प्रदूषण	रोग
कार्बन डाइ-ऑक्साइड	—दम घुटना
कार्बन मोनो-ऑक्साइड	—रक्त में ऑक्सीजन प्रवाह म कमी, जहरीला प्रभाव।
कार्बन के अन्य आक्साइड्स	—रक्त हिमोग्लोबिन मे सयुक्त होकर कार्बोक्सी हिमोग्लोबिन बनाता है जो एक विष है तथा मृत्यु का कारण बनता है।
सल्फर डाइ-ऑक्साइड	—आँख, नाक व गले म सूजन, तेज सिरदर्द तथा मृत्यु।
नाइट्रोजन के आक्साइड्स	—खासी, कफ, गले की गिल्टियो मे सूजन, फेफड़ाइटिस, स्वर यन्त्र शोथ।
हाइड्रोजन साइनाइड	—स्नायु तन्त्र अक्रियाशील होना, नेत्र दोष
गैसीय धूल तथा धुआ	—आख व गले के रोग-फेफडो के रोग जैसे दमा, खासी व ब्रोनक्राइटिस।

वर्णित अध्ययन से प्रस्तुत है कि शहरो म औद्योगिक प्रदूषण के कारण मानव स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव पडते हैं और मनुष्य का भारी हानि उठानी पडती है। हृदय रोग, रक्ताल्पता, श्वास व नेत्र रोग काफी हद तक वायु प्रदूषण के कारण ही होने हैं। सूक्ष्म गैसीय धूम्र के कण नासिका छिद्रो मे होकर फेफडो में पहुच जाते है। सल्फेट कणो से निमोनिया हो सकता है। विषैली गसो से आखो म जलन, जुकाम, बलगम व श्वास तथा गले के रोग, बेहोशी व सिर दर्द होने लगते हैं। फेफडो की आक्सीजन धारण क्षमता व लचीलापन समाप्त हो जाता है जिससे रक्ताल्पता होने लगती है। शोध कर्ताओ की मान्यता है कि सास के रोग, राजयक्ष्मा (टी बी), दमा जुकाम, खासी, टॉन्सिलाइटिस इन्फ्लूएंजा आदि का सीधा सम्बन्ध उस स्थान पर स्थित औद्योगिक इकाईया ही हो सकती है।

वायु प्रदूषण के कारण ही एक अन्य समस्या भारत के कुछ महानगरो म उठ खडी हुई है जहा कपडे की मिलें अधिक है। महाराष्ट्र व गुजरात राज्य के बम्बई, सूरत व अहमदाबाद म रुई मे स्थित धूल के कणो की मात्रा असहनीय

हो गयी है तथा मजदूरो मे बायोसिनोसस नामन रोग घर कर गया है। इन कणो की सीमा जब 100 थी, यह रोग भी सह्य था। पडित (1973) के मतानुसार अब यह सीमा रेखा 763 के बिन्दु को पार कर गयी है और यह रोग अपना विकराल रूप धारण कर गया है।

जस्ता केडमियम तथा पारा यद्यपि वायु के प्राकृतिक घटको की श्रेणी म नही आते परन्तु जस्ता खनन के अवसर पर जस्त के कण मानव के लिय खतरा अवश्य बने रहते ह। जब भी तावा, जस्ता व सीमे का खनन किया जाता है, जस्ता भाप बनकर उडता है। केडमियम भी एक सूक्ष्म पोषक है, अति सूक्ष्म मात्रा (traces) मे मानव वृक्क, फेफडो तथा यकृत मे जमा हो जाता है। इससे फेफडा म खुजली आरम्भ हो जाती है तथा मूत्र नलिकाऐ भी कुप्रभावित होती है।

जल-प्रदूषण व पर्यावरण स्वास्थ्य:—

वायु मानव के लिय आवश्यक है ठीक उसी प्रकार जल भी आवश्यक है। जल तथा वायु दोनो के बिना हमारा अस्तित्व खतरे म पड जाता है। पीने के पानी के सम्बन्ध म भारत की गिनती सम्पन्नतम देशो मे होती है। लेकिन जिस प्रकार वायु मे प्रदूषण के कारण पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पडा है, उसी प्रकार जल प्रदूषण से हमारे जीवन व पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। जल प्रदूषण का प्रमुख कारण बढती जनसख्या के कारण वनो का विनाश ही ह। तालाब झील, पोखर, नदी, नाला व नहरो के वरास्टोक दुरुपयोग से प्रदूषण मे वृद्धि हो रही है। गगा-जमुना जसी पवित्र नदिया भी औद्योगिक कचरे को ठिकाने लगाने के उद्देश्य से काम म ली जाती है। इस विषय मे अनेक उदाहरण दिय जा सकते हैं। कर्नाटक के हरिहर शहर म हरिहर पाली फाइबर फैक्ट्री का पानी तुगभद्रा नदी मे फेंका जाता है जिसमे उसके पानी का रग काला, भूरा, लाल व बदबूदार हो गया है। इस गद पानी मे विषैली गैसें यथा—सल्फर डाइ ऑक्साइड, कार्बन-मोनो आक्साइड व हाइड्रोजन सल्फाइड के कारण लोगो के फेफडे छलनी हो रहे है। यहाँ पहले प्रति एकड 6-7 टन ज्वार पदा होती थी अब केवल 2 टन होती है। नीम के पड भी पीले होते जा रहे हैं। राजस्थान के जोधपुर, पाली, तथा बालोतरा के लघु उद्योग सैकडो लीटर पानी नालियो मे छोडते रहते है। वहाँ की मिट्टी रेतीली है अत पानी के साथ विषैले रासायनिक पदार्थों के कण छनकर कुओं, तालाबो व अन्य जलाशयो म आ जाते है जिसका सीधा प्रभाव अन्य जीवो, घरेलू पशुओ तथा मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल पडता है। विभिन्न उद्योगो म सयत्र को ठडा करने के लिये जल प्रयुक्त किया जाता है जब यह जल नदियो व झीलो म विसर्जित किया जाता है तो जलीय

अस्तित्व को भी खतरा हो जाता है। ऐसे प्रदूषित जल के सेवन से जलवाहित रोग जैसे हैजा, मोतीझरा, शिशु प्रवाहिका, पेचिश रोग उत्पन्न हो जाते हैं। कारखाना के अवशेषो म अति भयकर तत्त्व विद्यमान रहते हैं जिनसे विभिन्न प्रकार की बीमारियां हो जाती है और कैंसर तक होने की सम्भावनाएँ होती हैं। नदियो मे बढते जल-प्रदूषण के कारण मछलियो की दुर्गति हो रही है। वायु रस जनित रोगो न मक्रामक यकृतशोथ, पोलियो, सूक्ष्म जन्तुओ से फलन वाल रोगो मे अभिपिक अतिसार, अभीपिक यकृत एब्सिस, आतो मे एमवेरिस, पतिकृमि मम्ब धी रोग हो जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रो म प्रदूषित जल ग्रहण करने मे नारु रोग का खतरा बना रहता है। जल के प्रदूषण से फ्लोराइड की मात्रा मे दन्तक्षय या द त विकृति रोग हो जाते हैं। भूमिगत जल मे लोहे के लवणों के कारण बदहजमी व कोष्ठबद्धता जैसी बीमारिया भी हो जाती हैं।

आज देश म बडे-बूढे, औरत आदमी, अमीर गरीब आदि बिना जातिगत व क्षेत्रीय भद-भाव के सभी को औपचारिक व अनौपचारिक रूप से प्रदूषण के फैलन के कारण तथा उनके दुष्प्रभावो के बारे मे ज्ञान प्रदान करते हुए पर्यावरण को सुरक्षित व सतुलित बनाय रखने हेतु राष्ट्रीय अभियान आरम्भ करने की महती आवश्यकता है। प्रत्येक देशवासी का अपना नैतिक कर्तव्य बनता है कि वह समाज राष्ट्र तथा अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सार्वजनिक स्वास्थ्य को ठीक रखने म योगदान करे।

□ □

जन-संख्या तथा पर्यावरण प्रदूषण

यह एक अटल सत्य है कि मानव जन-संख्या उन्हीं प्राकृतिक नियमों से प्रेरित है जिनके द्वारा अन्य जीव संख्याएँ प्रचालित होती हैं। एक पारितन्त्र में जन-संख्या वृद्धि तथा जन्म-मृत्यु इनके भौतिक व जैविक पर्यावरण पर आधारित है। भौतिक अथवा अजैविक पर्यावरण के अन्तर्गत जल, वायु सूर्य का प्रकाश, तापमान मृदा चट्टानें और खनिज आदि सम्मिलित है जबकि जैविक वातावरण सूक्ष्म जीवों, पादप तथा जन्तुओं का विशाल समूह है और मानव भी उसी समूह या समुदाय का एक अभिन्न अंग है। मानव अपने श्रेष्ठ विकसित दिमाग-मस्तिष्क के द्वारा सोच सकता है, योजनाएँ बना सकता है तथा अपने विचारों का आदान-प्रदान करने की क्षमता रखता है। यह औजारों तथा मशीनों का निर्माण कर प्रयोग में ले आता है, नये पर्यावरण स्थलों का निर्माण, सृजन कर सकता है तथा अपनी सामाजिक व आर्थिक आस्थाओं के अनुकूल पूर्वस्थित प्राकृतिक 'पारितन्त्र' का विकास कर सकता है। कृषि व शहरीकरण मानवीय योग्यताओं के दो ऐसे विशिष्ट उदाहरण हैं जो उसके पर्यावरण तथा नवीन पारितन्त्रों के सृजन को परिलक्षित करते हैं।

मानव जाति का प्रागऐतिहासिक इतिहास केवल 50,000 वर्ष प्राचीन है। यह प्रारम्भिक प्राग् इतिहास का एक मात्र ऐसा प्राणी है जो आवश्यकतानुसार सोचकर अपनी जरूरतों को पूरा कर सकता है तथा जातिगत् जीवन एवं वृद्धि करने की क्षमता भी रखता है। यद्यपि प्राचीन मानव जन-संख्या की गणना असम्भव थी परन्तु 8000 ई० पू० में विश्व की आबादी 53 लाख मानी जाती थी। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि यह बढ़कर 2000 ई० पू० में 8 करोड़ 56 लाख हो गई। यह वह समय था जब नील नदी की घाटी में प्रथम मिस्री सभ्यता का सूत्रपात हुआ था। दजला व फरात नदी सभ्यता भी इसी समय में उदित हुई थी। ईसा के समय में विश्व की अनुमानित जनसंख्या 30 करोड़ के लगभग मानी जाती थी। 17वीं शताब्दी में यह 50 करोड़ थी जो 100 वर्षों में अर्थात सन 1800 में एक अरब के लगभग हो गई। सन 1901 की मतगणना के आधार पर सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या साढ़े 3 अरब थी जो 7 करोड़ प्रतिवर्ष की दर से बढ़ी और 1980 के दशक में विश्व की जनसंख्या साढ़े 4 अरब थी। अब यह कहा जा सकता है कि 21वीं शताब्दी के आरम्भ होने तक 5 अरब हो जाएगी। यदि जन-संख्या वृद्धि की दर इसी प्रकार बढ़ती रही तो अगले सौ वर्षों में यह ग्यारह

प्राणियों की संख्या की 15 प्रतिशत संख्या के बराबर हो जाएगी, व अगले 300 वर्षों में अन्य सभी प्राणियों के समतुल्य होगी।

मनुष्य के विकास के इतिहास में 'जनसंख्या विस्फोट' की तीन महत्वपूर्ण घटनायें पर्यावरण परिवर्तनों के अनुरूप व समयानुकूल ही हुई थी प्रथम विस्फोटक स्थिति 20 000 वर्ष पूर्व आयी, जब उसने शिकार एवं भोजन एकत्र करने की दृष्टि से पत्थरों के औजारों का उपयोग आरम्भ किया। यह मानव विकासक्रम में प्रथम क्रान्ति— औजार निर्माण क्रान्ति' थी। अब से 6000 वर्ष पूर्व दूसरी क्रान्ति आयी जिसका कारण 'खेती में सुधार था। यह कृषि क्रान्ति थी। तीसरी क्रान्ति का आगमन 300 वर्ष पूर्व हुआ, जब भोजन उत्पादन उद्योग व औषधि के क्षेत्र में सुधार होने लगे। इसे वैज्ञानिक अथवा 'औद्योगिक क्रान्ति' के नाम से पुकारा जाता है।

ऐसा अनुमान है कि आज विश्व जनसंख्या वृद्धि की दर 2 प्रतिशत प्रति वर्ष है। देखने सुनने में यह बहुत तुच्छ प्रतीत होती है परन्तु वास्तविकता यह है कि वृद्धि की यह दर अत्यन्त गंभीर है। यदि जन वृद्धि की दर यही रहती है तो 700 वर्षों में स्थिति यह उत्पन्न हो जायगी कि भूमि पटल पर प्रति एक वर्ग फीट में एक व्यक्ति दिखाई पड़ेगा। निश्चित ही यह परिस्थिति अत्यन्त भयावह होगी। क्योंकि इस बात से अनेक पर्यावरणीय प्रश्न जुड़े हुए हैं। पादप-संगठन की स्थिति क्या होगी? विश्व के शाकाहारियों को भोजन कहाँ से प्राप्त हो सकेगा? ऊर्जा के साधन व उपयोग क्या मानव आवश्यकताओं के अनुरूप रह सकेंगे? वनस्पति का विनाश अवश्यंभावी है, वायुमण्डल में ऑक्सीजन व कार्बन-डाईऑक्साइड का अनुपात क्या होगा? अन्य कौनसी नयी समस्यायें आ सकती हैं जिनकी ओर हमारा ध्यान गया ही नहीं। सुनिश्चित है कि आज जिस भी अवस्था में मनुष्य जी रहा है वह स्थिति कदापि नहीं रहने वाली। अवश्य ही मनुष्य को किसी दुर्भिविश्व संहति के साथ जुड़ना होगा व उससे अनुकूलित होने का सुअवसर भी आ सकता है जिसका अभी तक निर्माण ही नहीं हुआ तथा उसके संबंध में आज भी कहना मुश्किल है।

अतएव पर्यावरण विज्ञान जीवन तथा उसके वातावरण' को ऐतिहासिक, वर्तमान तथा भविष्य की सफलताओं के परिप्रेक्ष में कल्पना करने के लिये उकसाता है। पुनः भाग्यवाद, आशावाद व निराशावाद के यथार्थों पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है। कोयला खनिज तेल गैसें व उनके उत्पादनों को किसी भी राष्ट्र के जीवनरक्त के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है। वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व में 21 अरब टन कोयला 1 25 अरब टन खनिज तेल तथा 6 अरब टन प्राकृतिक गैसों का प्रतिवर्ष विनियोजन हो रहा है। इस प्रकार

पर्यावरणीय तत्वो का वृहद भाग ऊर्जा उत्पादन मे ही व्यय हो जाता है। सर्वविदित है कि धूल के कण, रोगाणु, ध्वनि, तथा जीव विनाश हमारे पर्यावरणक्रम मे कमी ला रहे हैं। कहने को तो सभी यही कहगे कि यहा मनुष्य के साधारण हित सर्वोपरि हैं परन्तु विश्वसमरूपी जीवन' जाल के लिये यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

तभी तो विषय एक विश्वव्यापी मुद्दा बन गया है। स्वय सयुक्त राष्ट्र सघ भी यह सोचने विचारने पर आमादा हुआ है कि 'पर्यावरण विहीन''— विश्व-समाज को लेकर क्या होना है ? विश्व मे चारो ओर विहीन (Less) विहीन शब्दो का प्रयोग बढता ही जा रहा है, यथा स्थान विहीन', आवास-विहीन निद्राविहीन शातिविहीन आदि। और सयुक्त राष्ट्र सघ ने वर्ष 1986 को विहीनता'—'अभाव वर्ष' के रूप मे मान्यता दी है। वर्ष 1987 को यह कहकर व्यक्त किया गया है कि किसी को भी भोजन विहीन आवास-विहीन व सम्पन्नताविहीन नही रहने दिया जायगा, जो सयुक्त राष्ट्र सघ चार्टर का एक मुख्य उद्देश्य है। हम इस ओर से आशाविहीन नही होना हैं।

वर्तमान युग मे पर्यावरण, सभ्यता, सस्कृति एव विकास को लेकर वैज्ञानिको, दार्शनिको, लेखको व विश्व की आत्माओ ने समय समय पर विश्व जन-समुदायको पर्यावरण को लेकर अपने विचारो से अवगत कराया है तथा प्रेरित किया है कि वह किस प्रकार से अपने लिये तथा भावी पीढियो के लिये शुभ्र आकाश, प्राणदायी जल व वायु हरी-भरी धरती तथा एक पावन रमणीय शुद्ध व विराट विश्व की अपेक्षा कर सकता है।

विवशता के घूट पीकर, मानव प्रदूषण की ज्वाला मे भस्म होता जा रहा है। अपने परातन्त्र की भीषण कथा म-दावानल से उजडते वनो को लुप्त होती वर्षा को, उभरते रेत के टीलो को देखकर सुन्दर दुलभ वन्य जीवो के विलुप्तीकरण, से मानव के स्वय के गर्व के कारण की छेडछाड से दुखी होकर-जर्मन वैज्ञानिक स्वातेजार का कथन है कि मनुष्य ने अपनी भविष्य दृष्टि व भविष्य-निर्माण की क्षमताओ को खो दिया है और पृथ्वी को नष्ट कर वह स्वय को नष्ट करने पर तुल गया है।'।

प्रो ई एफ शुमाखर ने भी सही कहा है कि ''अपनी वैज्ञानिकी व तकनीकी शक्ति के मुखरित होने के उत्साह मे आधुनिक मानव ने उत्पादन की ऐसी प्रणाली का विकास कर लिया है कि जो प्रकृति के साथ अनाचार करती है और एक ऐसे समाज की रचना कर डाली है जो मनुष्य को विकृत करती है।

मानव, उस प्रकृति जो उसकी मा' है, जननी है की सौम्यता, सदाशयता व सुन्दरता के साथ बराबर खिलवाड कर रहा है। उसे तनिक भी चिन्ता

नहीं है कि जिस पृथ्वी-प्रकृति से उसकी समस्त बुनियादी आवश्यकताएँ पूरी होती हैं, अपनी भोग्यत्व भावनाओ, चौयवृति और तृष्णा के वशीभूत होकर उसे ही लूटे जा रहा है। युगपुरुष महात्मा गांधी भी भावतिरक मन को बाँध कर नहीं रख सके और सत त हृदय से कहा—"यह धरती अपने प्रत्येक निवासी की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिये यथेष्ट साधन उपलब्ध करती है पर तु हर व्यक्ति के लालच की पूर्ति नहीं कर सकती हैं।" आधुनिक सभ्य मानव ने किस प्रकार अनुकूल पर्यावरण को बर्बाद कर दिया है कि वह पर्यावरण को दूषित करने के लिए धरती के साथ जोर जबरदस्ती करने में नहीं चूका है। आज की सभ्यता की यह एक जीती जागती मिसाल है।

अथशास्त्र का एक साधारण नियम है कि मानव की मूलभूत आवश्यकताएँ जनसंख्या वृद्धि के साथ बढती हैं व उत्तरदायी ससाधनो की राशि, उस अनुपात म सीमित हैं। इस विचारधारा को अभावात्मक नियम (Law of diminінschung return) के रूप म मान्यता मिली है। इस विचार से विमुख नहीं हुआ जा सकता है कि एक पारितन्त्र (Ecosystem) मे मनुष्य को उपभोक्ता माना गया है और उसका जीवन आधार हो भौतिक मडण्ल है। पोषक तत्व जल, वायु मृदा, खनिज पदार्थ आदि भूतल पर असीमित मात्रा मे उपलब्ध नही हो सकते। तात्पर्य यह है कि सभी आवश्यक ससाधन सीमित हैं किन्तु मानवीय आवश्यकताएँ असीमित हो गइ हैं। ऐसी अवस्था मे ससाधनो की कमी, मनुष्य कभी न कभी तो अवश्य ही अनुभव करेगा—उस समय मनुष्य की हालत हास्यास्पद, दयनीय व भयावह बन जाएगी और वह स्वार्थ के वशीभूत होकर आवश्यक रूप से अपने पर्यावरण मे निश्चय ही भारी फेर बदल करने की कुचेष्टा करेगा, तब तक वह अपना बहुत कुछ खो चुका होगा।

यथार्थ की दृष्टि से पूव में भी परिणाम कुछ अच्छे नहीं रहे हैं—अनेक स्थानो पर जीवोपयोगी पदार्थ प्राय नष्ट हो चुके हैं। यह आम धारणा है कि अर्वाचीन मे आज के मरुस्थलो के स्थान पर सम्भवत वैभवशाली प्राकृतिक वन रहे होंगे—उन्ही को स्वार्थवश काट कर मानव ने कृषि स्थलो मे बदला होगा तदोपरान्त तेज आंधियो व वर्षा के कारण जमीन कटने से, मिट्टी पर से नियन्त्रण हट गया होगा व मिट्टी उडने से मरुस्थलों का उदय सम्भावित है। कहना होगा कि मनुष्य अपनी तुच्छ स्वार्थसिद्धि के लिये कतिपय ससाधनो का नष्ट करने के लिये स्वय ही जिम्मेदार एव दोषी है। अत्यन्त उपयोगी ससाधनो का अन्धाधुन्ध दुरुपयोग, मनुष्य अपने भविष्य की अनदेखा कर भी करता रहा है। वस्तुत उस स्थान विशेष से व ससाधन ही समाप्त हो रहे हैं। ऐसी परिस्थितियो म मानव हितों का हनन कोई आश्चर्य

नहीं है। मानव के सम्मुख प्रकृति विकरालरूप धारण करती जा रही है और निस्सदेह पारित त्र असतुलन की सभावनायें भी बढ रही हैं।

अनेक आयुर्वेदिक पादप जिनका उपयोग औषधियो मे किया जाता रहा है, वे पादप प्रजातिया भूतल पर से विलुप्त होन लगी हैं और बहुत तो प्राय लुप्त हो चुकी हैं। इसी प्रकार अनेक प्राणी भी विलुप्तीकरण के द्वार पर दस्तक दे रहे है। उचित होगा कि एसे प्राकृतिक ससाधनो का उपयोग बुद्धिमतापूवक किया जाय तभी उनका सरक्षण (conservation) सभव होगा और यही एकमात्र समस्या का निदान भी है। प्राकृतिक साधनो का उपयोग, पर्यावरण सबधी नियमो का ज्ञान पर्यावरण सबधी आकडो का सही आकलन और सामयिक व विवेकपूण निणय लेना ताकि भविष्य मे उनका ह्रास न हो वे मानव जाति को निर तर उपलब्ध होते रहे—अभाव तथा असतुलन विषयी समस्यायें उदित न हो। हमारा प्रयत्न भी सदैव यही रहना चाहिये कि 'जीव' व 'जड'—सजीव व निर्जीव पदार्थों की यह व्यवस्था सामान्य बनी रहे। यह बहुत ही आवश्यक है कि अल्प सुलभ व दुर्लभ (rare) जातियो व प्रजातियो की रक्षा की जावे, दुष्प्राप्य खनिजो का कम से कम मात्रा मे दोहन व उपयोग हो तथा नये अनुसधानो की सहायता से अ य व य विधियो व साधनो (Substitute methods) के बल पर कमी को पूरा किया जाय।

☐ ☐

वायु-प्रदूषण व नियन्त्रण

जल तथा मृदा प्रदूषण की तुलना में वायु प्रदूषण अधिक हानिकारक है क्योंकि पहला तो यह क्षेत्रिय नहीं होते और दूसरे कोई भी जीव अधिक लम्बी अवधि तक श्वास रोकने मे असमर्थ है तथा यह प्रदूषित वायु से किसी भी प्रकार बच नहीं सकते। मनुष्य तथा जानवरों की अपेक्षा पादप वायु प्रदूषण के प्रति कई गुणा अधिक संवेदनशील होते हैं। ऐसे प्रदूषणों से वनों का विनाश अवश्यभावी है तथा फसलों की क्षति होने से समस्त विश्व को आर्थिक हानि वहन करनी पड़ती है।

जल की भाँति वायु भी पृथ्वी का अविभाज्य प्राकृतिक स्रोत है जिसके बगैर एक पल भी जीवित रहना कठिन है। सभी जन्तु व पादप किसी न किसी प्रकार से वायुमण्डल से सम्बन्धित है—इनमें जन्तु-जगत वायु से आक्सीजन श्वास क्रिया में ग्रहण करता है तथा विषैली कार्बन डाइआक्साइड छोड़ता है जो पुनः वायुमण्डल में ही मिल जाती है। इस क्रम में निरंतर गतिशील रहने के लिये वायुमण्डल का निश्चित अनुपात का बना रहना अति आवश्यक है। जैव मण्डल के अंतर्गत क्षोममण्डल (troposphere) में ही आवश्यक जीवनोपयोगी गैसों का मिश्रण नाइट्रोजन ऑक्साजन, कार्बन डाइ आक्साइड तथा अन्य निष्क्रिय गैसें अथवा 'वायु एवं उचित तापमान और आर्द्रता आदि कारक उपलब्ध है। वायु जब तीव्र गति से चलती है तो जल वाष्प को बादलों में परिवर्तित कर वर्षा में महत्वपूर्ण योग देती है। वायु के वेग के कारण ही ऋतुओं का नियंत्रण संभव है।

जीवधारियों के लिये पर्याप्त आक्सीजन की आवश्यकता है और यह तभी सम्भव है जब वायुमण्डलीय गैसों का सन्तुलन बना रहे। विभिन्न प्राकृतिक चक्र-नाइट्रोजन आक्सीजन व कार्बन-डाइआक्साइड तथा वनस्पतियाँ ही इस सन्तुलन की प्रमुख इकाईयाँ हैं। परन्तु आधुनिक उद्योगों के कारण उगली हुई जहरीली गैसें वायुमण्डल में मिल जाती है। फलस्वरूप जीवनोपयोगी गैसों का संतुलन गड़बड़ा जाता है।

मानवीय कृत्यों के उपउत्पादन (byproducts) जो प्रदूषकों के रूप में हमारे सम्मुख आते है बेहिसाब है और उनका किसी भी प्रकार वर्गीकरण कठिन काम है। विकसित देशों में प्रदूषण का मुख्य कारण उद्योगों में शेष कचरा, पस्टीसाइड (पीड़क नाशक) शाकनाशक कीटनाशक, उर्वरक तथा

अनेक रसायन पदार्थ हैं। संक्षिप्त में उन्हें निम्न प्रकार अभिव्यक्त किया गया है —

(1) जमा पदार्थ अथवा ठोस अपशिष्ट—काजल, धुआं टार, धूल तथा घरेलू अवशिष्ट जैसे रसोई घर की जूठन टूटी-फूटी बोतलें टूटे मिट्टी व चीनी के बर्तन, प्लास्टिक के बरतन, राख, पत्तियां, घास बगीचे की कतरनें व फटे कागज आदि।

(2) गैसीय पदार्थ—कार्बन नाइट्रोजन व गंधक के ऑक्साइड्स, हैलोजन्स जैसे क्लोरीन ब्रोमीन आयडीन इत्यादि।

(3) औद्योगिक प्रदूषक—बेन्जो पायरीन, कैफीन, ईथर, एसिटिक अम्ल, व सायनाइट यौगिक।

(4) कृषि प्रदूषक—पीड़कनाशी, शाकनाशी, कवकनाशी कीटनाशी व उर्वरक।

(5) प्रकाश-रसायन प्रदूषक—ओजोन, नाइट्रोजन के आक्साइड्स, एल्डीहाइड्स इथिलीन प्रकाश रसायनिक स्माग।

(6) विकिरण प्रदूषक—रेडियो धर्मी तत्वों द्वारा विकिरण तथा परमाणु परीक्षणों के अन्तर्गत रेडियो फाल आउट्स।

नित्य प्रतिदिन उपयोग में आने वाले पदार्थों को विभिन्न प्राकृतिक-चक्रों तथा प्रक्रियाओं के माध्यम से दोबारा उपयोगी बनाया जा सकता है साथ में कुछ ऐसे पदार्थों की जानकारी उपलब्ध हो सकी है जिन पर प्राकृतिक विघटकों या चक्रों का कोई भी असर नहीं होता और ऐसे पदार्थ आगे चलकर गंभीर समस्याएँ पैदा कर देते हैं। इसी आधार पर प्रदूषकों को दो श्रेणियों में विभक्त कर अलग कर दिया गया है —

(1) जैव विघटनात्मक अथवा निम्नीकरणशील प्रदूषक —

यह प्रदूषक अधिकांशत जीव जन्तुओं तथा पादपों की जैविक क्रियाओं के कारण उत्पन्न होते हैं तथा उनकी रासायनिक संरचना स्थायी नहीं रहती। यह पदार्थ कवक या जीवाणुओं के द्वारा सरल रासायनिक अवयवों में बिखर-कर मृदा को उर्वरा बनाने में सहायक होते हैं परन्तु जब इनका उत्पादन विघटन क्षमता से अधिक होने लगता है तो यह वायु, जल एवं मृदा प्रदूषण का कारण बन जाते हैं जैसे मनुष्य तथा अन्य जन्तुओं द्वारा उत्सर्जन, सब्जियां, फल, खाद्य पदार्थ, घरेलू कचरा आदि एक सीमित मात्रा में मिट्टी को उर्वरा बना सकते हैं परन्तु अनियन्त्रित जनसंख्या वृद्धि के कारण अब महानगरों में सबसे बड़ी समस्या इसी कूड़े के ढेर को निपटाने या ठिकाने लगाने की हो गयी है। भारत में बढ़ती हुई विस्फोटक जनसंख्या ही ने पर्यावरण प्रदूषण की विषम समस्या को जन्म दे दिया है।

(II) अविघटनात्मक अथवा अनिम्नीकरणशील प्रदूषक —

मानव द्वारा उत्पादित बहुत सारे पदार्थ ऐसे भी हैं जो प्राकृतिक विघटकों एवं चक्रों से सदा अप्रभावित रहते हैं और इससे उपजी समस्या और अधिक गम्भीर रूप धारण कर गयी है। यह मूलत अकार्बनिक यौगिक है जस क्लोराइड लवण, खनीनीय ऑक्साइडस, अपशिष्ट उत्पादन, एल्यूमीनियम व टीन के केस, पारे के लवण फिनोलिक यौगिक, डी० डी० टी०, बी० एच० सी० एल्ड्रीन, टाक्साफीन इत्यादि। यह पदार्थ स्थायी हैं और साधारणतया विभिन्न, स्रोतो म समायोजित होते रहते हैं। कभी कभी यही पदार्थ अन्य प्राकृतिक तत्वो के साथ सयोग कर विषैले पदार्थों का निर्माण कर देते है तथा पर्यावरण के लिये भयावह खतरा उत्पन्न कर देत हैं।

ऊपरवर्णित दोना ही प्रकार के प्रदूषक जल, वायु तथा मृदा के साथ मिलकर उ ह प्रदूषित करते रहते हैं। इस अध्याय मे हम केवल वायु प्रदूषण के ही अध्ययन तक सीमित रहगे। यह सौ फी सदी सच्च है कि आधुनिकरण की अ यवस्थित दौड म हमने वायुमण्डल की जीवनोपयोगी गसो क अनुपात को पूणतया छिन्न भिन्न कर दिया है तथा उसके स तुलन को बिगाड़ कर अपने पैरा पर कुल्हाडी मारने का दुस्साहस किया है तथा अपनी मौत का सामान भी स्वय ने ही तयार कर लिया है।

वायु मे विषैली गैसो की मिलावट को ही वायु प्रदूषण कहा जाता है और उसकी जीती-जागती मिसाल है 3 दिसम्बर 1984 की वह कालरात्रि- भारत के वायु प्रदूषण के इतिहास का वह 'काला दिन' जब मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल मे रात्रि को अकस्मात युनियन कार्बाइड उद्योग के एक टक से मिथिल आयसोसिनेड (mıegas) गैस रिस कर वायुमण्डल मे व्याप्त हो गई तथा प्रदूषित वायु के सेवन से तत्काल दो हजार व्यक्ति काल के गाल म समा गय। मानव की विनाशलीला की यह गाथा यह विभीषिका भुलाये नहीं भूलेगी। जापानवासी भी तो 5 अगस्त व 9 अगस्त 1945 के काले दिना को या आज तक दिल म रखे हुए हैं।

स्थिति का वणन करते हुए आँखें भीग जाती है। उस क्षेत्र की जनता आँखो, फफडा के रोगो तथा अन्य घातक रोगा स आज तक भी अपने आपको मुक्त नही कर पाया। दुधारू चौपायो में दूध देने की क्षमता घट गई है। जीव जन्तुओं तथा पौधो पर भी गैस रिसाव के कुप्रभाव देखे जा सकते हैं। क्या है यह वायु प्रदूषण के घटको को मापने के लिये। विश्व स्वास्थ्य सगठन ने एक सवमान्य भाषा म परिभाषित भी किया है —

वायु म उपस्थित हानिकारक तत्त्वा की मात्रा को जो मानव तथा उसके पर्यावरण क लिये घातक हो प्रदूषक हैं तथा उस प्रक्रिया को वायु-प्रदूषण कहते हैं।

वायु-प्रदूषण के स्रोत—वायु-प्रदूषण के अनेक कारण है जिन्हे निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है —

(i) औद्योगिक प्रदूषक —बिजली-घरो तथा चिमनियो से निकलने वाली गैसे सल्फर डाइ-ऑक्साइड, कार्बन मोनो ऑक्साइड, कार्बन डाई-ऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड प्रमुख हैं। इनके साथ ही हाइड्रोकार्बन्स धूल के कण धुआ तथा गद भी वायु-प्रदूषण का कार्य करते हैं। यह कोयले तथा पट्रोल के जलते व ताप विजलीघरो म लिगनाइट की ज्वलन अभिक्रिया से उत्पन्न होते हैं। अनेक रसायन उद्योग/गमक का अम्ल, क्लोरीन नाइट्रोजन के आक्साइड व ताँबे, जस्ते, सीसे पारे व आरसनिक के आक्साइडस भी वनाते हैं जो घातक हैं।

बम्बई के चेम्बूर क्षेत्र में 3-6 गुणा अधिक प्रदूषण आका गया है। गोरख-पुर तथा अहमदाबाद के समीप स्थित खाद्य के कारखाने, तमिलनाडु मे नवेली लिगनाइट उद्योग तथा भिलाई, राऊरकेला, दुर्गापुर व जमशेदपुर के स्टील के कारखानो के कारण निकलने वाली गैसो द्वारा ही वायु-प्रदूषण बहुत भयकर रूप से घर कर गया है।

(ii) स्मोग (Smog)—यदि स्मोग का शाब्दिक अर्थ देखा जाय तो यह ह्यूमस, धुआ तथा कोहरे का विभिन्न अनुपातो मे समिश्रण है। शहरो म जहाँ औद्योगिकीकरण चरम सीमा पर होता है, सरदी की मौसम मे कोहरे का धुऐ के साथ मिल जाना एक साधारण बात है परन्तु स्मोग का निर्माण तब होता है जब यह अनुपात इस प्रकार घटे या बढे की वह असामान्य हो जाय। सन् 1931-40 के दशक म अमेरिका के प्रसिद्ध शहर लासएंजल्स मे लोगो ने स्मोग के कारण वायु-प्रदूषण अनुभव किया था। लोगो की आखो म जलन, पानी आना, तथा नेत्र ज्योति मे एकाएक कमी आने लगी। इसके कारण रबर की बनी हुई वस्तुऐ तक चटखने लगी जो सामान्य बात नही है। लदन शहर म भी गधक युक्त कोयला इधन के रूप म काम म लिया जाता रहा है जिसके कारण स्मोग का निर्माण बहुत अधिक होता है। अनुसधानो से कुछ समय के बाद ही इस बात का पता लगा। शहरो म जहाँ वाहनों का प्रतिशत बहुत अधिक होता है वहा भी स्मॉग का निर्माण होता है, लॉसएन्जिल्स मे स्मॉग भिन्न है। रासायनिक दृष्टि से लॉसएंजल्स मे प्राप्त स्मोग 'ऑक्सीकारक' पाया गया है व अन्य स्थानो पर 'अवकारक'। ऑक्सीकारक स्मोग के विशिष्ट लक्षणो के कारण इसे फोटो केमिकल स्मोग भी कहा गया है। ऐसे स्मोग प्राय उन स्थानो पर पाये जाते हैं जहाँ धारा और पहाड़ियाँ हो और शहर घाटी मे बसा हो। वर्तमान में यह स्मोग एक गंभीर समस्या बना हुआ है।

(iii) ओजोन, हाइड्रोजन व दूसरे कार्बनिक 'परॉक्साइड्स व हाइड्राक्साइड्स जिस वातावरण म अधिक होते हैं, वहा प्रकाश रासायनिक स्मॉग को देखा जा सकता है। सूर्य के प्रकाश म जब नाईट्रोजन हाइड्रोकार्बन्स, मोटर साइकिलो व गाडियो से उत्पन्न धुऐ के साथ मिलकर क्रिया करते हैं तो यह विशेष स्मॉग—परॉक्सी एसिटिल नाइट्रेट (पी ए एन) तथा परावस पेय-जल नाइट्रेट (पी वी एन) बनाते हैं। वायु प्रदूषण पर्यावरण मे इनकी उपस्थिति से नेत्रो मे जलन होने लगती है और पानी बहने लगता है। यदि ओजोन की मात्रा बढने लगती है तो प्रकाश-रसायनिक स्मॉग की सम्भावना भी बढने लग जाती है। कभी-कभी ऐसे स्माग वातावरण मे हाइड्रोजन सल्फाइड व सल्फर डाइ-ऑक्साइड गैसें भी प्रवेश कर जाती हैं। यदि ये वातावरण की सहनीय स्थिति की सीमाओ को तोडकर पार कर जाती है तब उसके बहुत ही गभीर परिणाम होते हैं। अम्लीय वर्षा वस्तुओ का क्षरण (चटखना) तथा नत्र ज्योति की कमी होना व स्वास्थ्य-सबधी गम्भीर खतरे उत्पन्न हो जाते है। सल्फर डाइआक्साइड व हाइड्रोजन सल्फाइड्स की उपस्थिति मे तो पेड-पौधा तक पर इसका घातक प्रभाव पडता है। ओजोन गैस भी हानिकारक सिद्ध होती हैं।

सारणी 2

वायुमण्डल मे ओजोन का अनुपात व मानव जीवन पर दुष्प्रभाव

अनुपात (एक लाख मे एक का अनुपात)	दुष्प्रभाव
0 2	सामान्य,
0 3	नाक व गले मे जलन,
1 00-3 00	भारी थकान तथा शिथिलता,
9 00	फेफडो मे सूजन तथा मत्यु।

ओजोन का दोहरा प्रभाव होना है। यह मानव-जीवन को तो सकटपूर्ण बनानी ही है, वनस्पति को भी प्रदूषित कर पर्यावरण को भी विश्व के लिये सकटग्रस्त स्थिति मे डाल देती है। तम्बाकू की खेती में यदि ओजोन की हानिकारक मात्रा 6 घटे भी आ जाय तो फसल आधी रह जाती है। मूली तथा अन्य मूसला जड वाली फसलो पर भी इस गैस का घातक प्रभाव पडता है। एक अन्य भयकर सक्रमण तब होता है जब सल्फर डाइऑक्साइड नम उत्तक या आद्रता कणो के सम्पर्क मे जानी है व गधक के अम्ल मे परिवर्तित हो जानी है। ऐसा अम्लीय प्रदूषण स्वास्थ्य के लिये घातक सिद्ध होता है। यह धातुओ तथा चूने के पत्थर को भी क्षारित कर देता है और मानव जाति के

लिये आर्थिक हानि का कारण बन जाता है। धूम्र-पान से भी वायु-प्रदूषण होता है ,और कार्बन मोनोऑक्साइड के कारण रक्त मे विषाक्तन होने लगता है।

मोटर गाडियों के निर्वात—

मोटर गाडियो, हवाई जहाज, मोटर साइकिलें जो पेट्रोल व डीजल तेलो से चलती हैं, कार्बन मोनोऑक्साइड, नाइट्रोजन डाइऑक्साइड व अनेक हाइड्रोकार्बन्स उत्पन्न करते हैं। इनसे वायु मे प्रतिदिन हजारो टन हाइड्रोकार्बन्स व कार्बन मोनो ऑक्साइड छोडी जाती है। अकेले बम्बई शहर मे ही सन 1972 म दो लाख से भी अधिक मोटर गाडिया मौजूद थी।

एक गैलन पट्रोल के ज्वलन म 3 पौंड कार्बन मोनोऑक्साइड व 15 पौंड नाइट्रोजन डाइ ऑक्साइड उत्पन्न होती है। इनमे से प्रत्येक 8 लाख घन सेंटीमीटर से 20 लाख घन सेंटीमीटर वायु को प्रदूषित करने के लिये पर्याप्त है। अमेरीका मे 830 लाख कारो के कारण 60 प्रतिशत वायु प्रदूषण की समस्या है। वायु-प्रदूषण के दुष्परिणामो को विस्तारपूर्वक पादपो, जन्तुओं, मानव तथा जलवायु के सदर्भ में अध्ययन करना आवश्यक हो गया है।

(अ) पादपों पर प्रदूषकों का प्रभाव—

प्राय वायु प्रदूषको के घातक प्रभाव पादप समुदाय मे दृष्टिगत हुऐ हैं। कोलिफोर्निया मे ही गाढे स्माग के कारण लगभग 5 लाख वृक्ष नष्ट हो चुके हैं। पादपो तथा उनकी पत्तियो पर अनेक दुष्प्रभावी चिन्हो का अवलोकन किया जाता है जिन्हे विस्तार सहित वर्णन किया गया है —

(i) वायु प्रदूषको की उपस्थिति से पादप कोशिकाओ मे प्लाविकोकरण (plaomolysis) आरम्भ हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप पत्तियो का जन के साथ सम्बन्ध टूट जाता है पत्तिया पीली पड जाती है और ढीली होकर टहनियो से गिरने लग जाती हैं। कभी-कभी प्रदूषको के कारण पत्तियो म सलवटें (necrotic patterns) भी उत्पन्न हो जाते हैं—यह प्रदूषको के प्रकार तथा सान्द्रता पर निर्भर रहता है।

(ii) हरितमाहीनता अथवा हरितरोग (Chlorosis) के कारण पर्णहरित का अभाव हो जाता है जिससे पत्तियो का रग पीला पड जाता है, पत्तियो पर पीले रग के चकत्ते दिखाई पडने लगते हैं। कभी कभी वर्णको (pigments) की उपस्थिति के कारण अन्य रग भी प्रदर्शित होते हैं जो सामान्यत हरे पर्णक के कारण अदृष्य रहते हैं। इसका मूलकारण वायु मे सल्फर डाई आक्साइड की उपस्थिति ही है जो क्लोरोइडस के साथ सयोग कर भूरा पर्णक बनाती है। प्राय पादपो मे यह हरितरोग व उत्तको के मरनासन्न होन की क्रियाएँ समन्वित होती हैं।

(iii) वद्धि तनुकरण—वायु-प्रदूषण के कारण पादपो की वद्धि क्षमता पर गहरा असर पडता है, उनकी वृद्धि रुक जाती है तथा पत्तियो का झडना, वद्धि का रुकना, पुष्पो व फलो का छोटा होना जैसी पादप क्रियाओ का अवलोकन किया जा सकता है।

(ब) जतुओ तथा मानव पर प्रदूषकों का प्रभाव —

प्राणी वग मे वायु जनित प्रदूषको के भी कुछ प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रभावों का अध्ययन किया गया है। इनका वास्तविक प्रभाव फेफडो व वायुनलिका पर अधिक होता है जिसकी वजह से फफडो की सूजन तथा फेफडो के कैंसर जसे रोग उत्पन्न हो जाते हैं। आँखो मे तथा श्लेषमा झिल्ली पर जलन की क्रिया, फेफडो म बलगम का भरना, ब्रोनकाइटिस व यक्ष्मा जैसे रोग हो जाते है। पशुओ का यदि फ्लोराइडयुक्त धूल के कणो से सम्पक बन जाता है तो अस्थि रोग (Florosis) हो जायगा। इसके अतिरिक्त भी कायिकी प्रभाव, पक्ष्मो की गतिविधिया, फुस्फुस कायिकी विशिष्ट किण्वक प्रतिक्रियाओं का रुकना आरम्भ हो जाता है और रक्त-रसायन क्रियाओ म भी बदलाव आ जाते है'।

(i) ओजोन अधिग्रहण के कारण मह नाक व गले की श्लेषमा झिल्लिया सूखन लगती हैं आँखो की ज्योति मद पड जाती है, सिर दर्द, फुस्फुस का बलगमयुक्त होना और सूजन आरम्भ हो जाती है। इसकी अधिक सान्द्रता भी घातक हाती है। फेटनर (1969) का कथन है कि ओजोन के कारण गुण सूत्रो मे व्यतिक्रम भी उत्पन्न हो जाते हैं।

(ii) नाइट्रोजन डाइआक्साइड एक तीव्र प्रकृति की गैस है इस के कारण भी आखो मे जलन, फुस्फुस श्वसनी शाथ तथा सूजन हो जाती है और अन्त मे निमोनिया के कारण मत्यु तक हो सकती है।

(iii) गधक के ऑक्साइडस तथा सल्फर डाइ ऑक्साइड के कारण नागरिकगण सरदी जुकाम खासी, 'श्वास लेने म रुकावट व हृदय रोग से ग्रसित रहते हैं। कभी-कभी आहार नाल तथा प्रजनन नाल मे भी जलन आरम्भ हो सकती है।

(iv) वायु-प्रदूषको म सबसे खतरनाक कार्बन मोनोऑक्साइड गैस है। गधरहित होन के कारण श्वास लेते समय भी इसको पहिचानना कठिन है। रक्त मे स्थित हीमोग्लोबिन क साथ साम्य होने के कारण जब यह रुधिर-प्रवाह के साथ मिलती है तो यह ऑक्सीहीमोग्लोबिन की ऑक्सीजन को हटा कर स्वय उसका स्थान ले लेती है। इस प्रकार हीमोग्लोबिन की ऑक्सीजन ले जान वाली क्षमता म भारी कमी आ जाती है, और रक्त मे कार्बन डाइ-

आक्साइड की सान्द्रता बढती जाती है, फलस्वरूप सिरदर्द उल्टी, आँखो के सामने अँधेरी आना, कान का बजना, हृदय का धडकना, छाती पर दबाव, श्वास लेने मे कठिनाई, मास पेशियो की कमजोरी, बेहोशी जैसी अवस्था और अन्त मे मत्यु की पूरी सम्भावना बन जाती है।

(v) अन्य कार्बनिक यौगिक यथा फॉरमेल्डिहायड्स, थायोरस, टौलिप ओस वि दु पट्रोलियम, खनिज तेल, मोटर तल आदि भी श्वास लेने मे कठिनाई उपस्थित कर देत हैं।

(vi) कारसिनोजीनोक पदाथ साधारणतया वे पूणरूप से जले पदार्थों से निकलते है, प्रदूषित वायु मे बडी मात्रा मे मिल जात हैं तथा यह श्वास नलिकाओ के कैंसर के लिय उत्तरदायी है।

सयुक्त राष्ट्र सघ पर्यावरण कायक्रम के निदेशक डा मुस्तफा टोलवास ने 1980 मे अपने पर्यावरण सबधी प्रतिवेदन मे कहा था कि सीसे के विषैलेपन के कारण मस्तिष्क तक नष्ट हो जाता है, मैंगनीज कणो के श्वास नलिका मे प्रवेश से निमोनिया, निकल व क्रोनियम कणो से कैंसर, पारे की वाष्प के कारण केन्द्रीय नाडी सस्थान तक नष्ट हो जाते है। केडमियम की उपस्थिति मे उच्च रक्त चाप व हृदय रोग हो जाते है।

(vii) रेडियोधर्मी विकिरण भी वायु को प्रदूषित करते हैं। जा नाभिकीय छिडकाव पृथ्वी पर नाभिकीय विस्फोट के कारण होता है अवशोषित हो जैविक सस्थानो मे पहुच जाते है और प्रमुख रूप से कैंसर रोग उत्पन्न करते हैं। कभी-कभी पादप पत्तियो व जैविक सगठनो मे परिवतन लाकर उत्परिवतनीय विभिन्नताएँ ला देते हैं जो पीढी दर पीढी चलती हैं।

(स) जलवायु परिवतन —

अय्यर (1973) की यह अभिव्यक्ति रही है कि जलवायु म धूल, धुआ, कार्बन डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन व गधक के आक्साइडस की सान्द्रता बहुत अधिक हो जाती है तो 'प्रकाश का बिखराव आरम्भ हो जाता है और उसके साथ ही जलवायवीय परिवतन शुरू हो जाते हैं। औद्योगीकरण मे पेट्रोल, कोयला या अन्य प्रकार के ईंधन का निरन्तर प्रयोग हो रहा है जिससे प्रकृति मे कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा म निरन्तर वद्धि हो रही है। एक अध्ययन के अनुसार सन 2020 तक इसका स्तर दुगुना हो जायेगा, अत विश्व का तापक्रम 3° सेल्सियस बढ जायगा और 2100 तक तापक्रम 6° सेल्सियस बढ जायगा, जिससे सारी ध्रुवीय बफ पिघल जावेगी और नदियो मे बाढ की स्थिति होगी। धीरे धीरे यह तापक्रम मौसम चक्र तथा जलवायु को प्रभावित कर, खेती बाडी तथा मानव को भी प्रभावित कर सकेगा।

वायु-प्रदूषण पर नियंत्रण —

(i) पादपों की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इनकी अनुक्रिया का अध्ययन कर वायु की शुद्धता को ज्ञात किया जा सकता है। पादप प्रदूषक सूचक होते हैं तथा सभी पादप अपने ऊपर हुए विशेष प्रभावों को निर्दर्शित करते हैं। इनकी सबसे बड़ी उपयोगिता यही कही जा सकती है कि यह सभी परिस्थितियों व सभी स्थानों पर पाये जाते हैं और सस्ते भी होते हैं जबकि वायु प्रदूषण मापने वाले यंत्र काफी महंगे होते हैं और सभी स्थानों पर नहीं ले जाये जा सकते। ऐसे सूचक पादपों की अनुक्रिया के साथ प्रदूषक की मात्रा (सान्द्रता × समय) का सम्बन्ध स्थापित किया जाय। पादपों पर उत्पन्न क्षति के लक्षणों और उनकी पत्तियों में संचित प्रदूषक की मात्रा की जानकारी प्रदूषण मापने में सहायक होती है।

इसी संदर्भ में कहा जा सकता है कि पादप वायु शोधक भी होते हैं। इनकी पत्तियां प्रदूषक पदार्थों को अवशोषित कर वातावरण में प्रदूषकों की मात्रा निरंतर कम करती हैं। प्रदूषित भागों में, नगर के मार्गों के किनारे वृक्षारोपण वायु प्रदूषण कम करने की प्रक्रिया में बहुत ही लाभदायक सिद्ध होते हैं। विभिन्न अनुसंधानों से पता चला है कि अनेक पादप 25 से 50 प्रदूषण कम करने में सहायक हैं। ये प्रदूषक कणों (pasticulates) को 80 प्रतिशत तक रोक लेते हैं। एक परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि जंगल जलेबी नामक वृक्ष का सघन रोपण कोयले की राख के अवशोषण के लिये बहुत ही उत्तम व लाभकारी रहता है। अनेक पादप विषपायी भी होते हैं जो विषाक्त प्रदूषकों का अवशोषण कर उन्हें अविषाक्त तत्त्वों में परिवर्तित करने की अद्भुत क्षमता रखते हैं। कुछ प्रतिरोधी पादपों में यदि प्रदूषक पदार्थों की अधिक मात्रा संचित हो जाती है तो भी उन पर कोई घातक प्रभाव नहीं पड़ता है। पादप अपनी सभी जैविक क्रियाओं में प्रदूषकों का उपभोग भी कर लेते हैं और पादपों की इस क्षमता का उपभोग सरलता के साथ प्रदूषण की रोकथाम के लिये किया जा सकता है।

(ii) कारखानों को शहरी आबादी से दूर स्थापित कराना चाहिये, साथ ही ऐसी-ऐसी तकनीकों का उपयोग भी करना चाहिये जिससे कि धुएं का अधिकांश भाग अवशोषित हो जाय और अवशिष्ट पदार्थ व गैसें वायु के साथ अधिक न मिल सकें।

(iii) शहरीकरण की प्रक्रिया को रोकने के लिये गांवों तथा कस्बों में ही कुटीर उद्योग अपनाकर रोजगार व अन्य सुविधाएं उपलब्ध करा दी जावें ताकि गांव वालों की दौड़ शहर तक न हो।

(iv) वाहनों तथा कारखानों से निकलने वाले धुआं का इस प्रकार समायोजित करना होगा कि जिसमें कम से कम धुआं निकले।

(v) निर्धूम चूल्हे व सौर ऊर्जा के उपयोग को प्राथमिकता व अधिक प्रोत्साहन की महती आवश्यकता है।

(vi) वनो की हो रही अधाधुध व अनियन्त्रित कटाई पर रोक लगा देनी चाहिये।

(vii) शहरो नगरो मे अपशिष्टो के निष्कासन हेतु सिवरेज सभी स्थानो पर होना आवश्यक है।

(viii) इस विषय को पाठ्यक्रम के साथ शामिल कर, बच्चो मे पर्यावरण सरक्षण के प्रति चेतना जाग्रत हो तथा मानव समाज को सजग रहने के लिये विभिन्न सूचना माध्यम यथा टी० वी, रेडियो, समाचार पत्र प्रचार के माध्यम होने चाहिये।

□ □

जल प्रदूषण एवं नियन्त्रण

जल ही जीवन का एक आधारभूत तत्व है सार है, निचोड़ है अनिवार्यता है। पृथ्वी की उत्पत्ति और मानव सभ्यता के विकास की कहानी में जल की अहम् भूमिका रही है। जीव विकास की आरम्भिक अवस्था में जीवद्रव्य की उत्पत्ति पानी से हुई थी। जल की एक बूंद में हजारों-लाखों सूक्ष्मजीवियों का जीवन चक्र दृष्टिगोचर होता है और जल के कारण ही पृथ्वी पर जीवन सम्भव हो सका है। इतिहास के पृष्ठ इस बात के साक्षी हैं कि सभी आदि सभ्यताएँ नील, दजला फरात, सिंधु-गंगा व चीनी नदी घाटियों में ही जन्मी व प्रस्फुटित हुई थीं। आज संसार के सभी प्रमुख नगर, नदी, झील, सागर—किसी न किसी जल-स्रोत के किनारों पर ही बसे हुए हैं। जल के साधन अनन्त नहीं है। पृथ्वी पर उपलब्ध कुल जल का 0 3 प्रतिशत ही शुद्ध, साफ व निर्मल जल है, जिस पर समस्त विश्व का कारोबार निर्भर है। परन्तु इसे भी दोनों हाथों से उलीच रहे हैं, उपभोग कर रहे हैं। आज जल की खपत सभ्यता का मापदंड बन गई है। एक किसान परिवार की तुलना में शहरी परिवार 8 गुना अधिक पानी का उपयोग करता है तथा एक औद्योगिक देश विकासशील देश की अपेक्षा 20 गुना अधिक उपयोग कर रहा है।

एक अनुमान के आधार पर हमारे देश में 70 प्रतिशत जल किसी न किसी रूप में प्रदूषित है। बस्तियों से निकला मैला, गंदा पानी और औद्योगिक प्रतिष्ठानों से निकले अपशिष्ट पदार्थ मिलकर इस प्रदूषण को निरन्तर बढ़ा रहे हैं। पश्चिमी राष्ट्रों को औद्योगिक विकास की बड़ी कीमत चुकानी पड़ रही है तथा जल प्रदूषण की समस्या मानव नियन्त्रण से बाहर होती जा रही है। विश्व का सबसे धनी राष्ट्र संयुक्त राज्य अमेरिका भी जल के सन्तोषजनक हल का खर्च उठाने में अपने आप को असमर्थ अनुभव करता है। प्रदूषण के कारण और स्वच्छ पानी की झीलें जिनमें ईरी झील एक है सम्पूर्ण 'मृतक' हो चुकी है। यूरोप की 'राइन नदी' जिसका जर्मन भाषा में अर्थ ही 'स्वच्छ नदी' है, अब मात्र एक बहुत बड़ा गन्दा नाला बन कर रह गई है। हमारी भागीरथी गंगा का भी यही हाल है। प्रसिद्ध जीव विज्ञानी थॉमस राबेन जो जिनेवा विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं उनका कहना है कि यूरोप की नदियों और झीलों में रमणीय स्वच्छ जल की [illegible] ट्राउट, सामन, ग्रायलिंग, [illegible] अपशिष्ट में [illegible] की अप्रत्यक्ष उपस्थिति के कारण उनके अंडे व बच्चे समाप्ति की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

भारतीय विज्ञान कांग्रेस मे सन् 1981 मे अध्यक्ष पद से बोलते हुए प्रो ए के शर्मा ने कहा था कि भारत की जीवनदायिनी नदियो का 70 प्रतिशत से भी अधिक जल प्रदूषित हो चुका है और पावनी गगा तो विश्व की सबसे अधिक प्रदूषित नदी बन चुकी है। दिल्ली से लेकर इलाहाबाद तक यमुना भी अति विषाक्त और प्रदूषित पाई गई है। गगा तथा यमुना का द्वाबा जिसे भारत का अन्न भडार कहा जाता है, दुर्भाग्य से सबसे अधिक दूषित क्षेत्र बन गया है। काश्मीर की डल झील तथा नैनीताल की ननीझील भी अपनी मोहकता व रमणीयता को प्राय खो चुकी है।

आज तालाब, झील, पोखर नदी, कुओ नहरो तथा सागरो म बेरोकटोक दुरुपयोग से प्रदूषण मे वृद्धि हो रही है। देवी स्वरूप गगा यमुना जैसी पवित्र नदिया भी औद्योगिक कचरा तथा शहर का मैला ढोने के लिये काम म ली जाती हैं। कुछ फैक्टरियो का गदापानी जिसम सल्फर डाइ आक्साइड, कार्बन मानो-आक्साइड तथा हाइड्रोजन सल्फाइड घुली रहती है, तालाबो म फेंका जाता है जिससे पानी का रग काला, भूरा, लाल व बदबूदार हो जाता है। राजस्थान का पाली नगर इसका एक जीता जागता उदाहरण है।

प्रमुख जल-प्रदूषक

यह एक तथ्य उभर कर सामने आया है कि प्रदूषण की समस्या मे मूल कारण जन-सख्या की वृद्धि है और समूचा विश्व इस बात को लेकर चिन्तित भी है। विज्ञान की प्रगति ने मानव के लिये जितने भी नये रास्ते खोले हैं उतने ही प्रदूषणो की सख्या मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। यहा ऐसे ही कुछ व्यापक प्रदूषणो का विवरण दिया जा रहा है।

(1) नगरीय गन्दगी —बढती हुई अनियन्त्रित जनसख्या के द्वारा अनेक नगरो व कस्बों में घरेलू कचरे के अम्बार लग जाते हैं। यह कचरा सडे-गले खाद्य पदार्थ, मल-मूत्र, गोबर, कूडा-करकट आदि से मिलकर बनता है। भारत मे 80 प्रतिशत लोग गांवो मे बसते हैं, परम्परागत उनका जीवन नदी, तालाबो, कुओ पर निर्भर करता है। अशिक्षा के कारण अज्ञानतावश या अन्य विकल्पों के अभाव म गाव की सारी की सारी गन्दगी इन जल स्रोतों मे आकर मिल जाती है जिससे वहां का जल दूषित हो जाता है। इस जल का दुष्प्रभाव वहां के निवासियो पर पडना स्वाभाविक ही है। इसके विपरीत शहरो म उपरोक्त प्रकार की गन्दगी से जल प्रदूषण तो होता ही है, उसके साथ मल-मूत्र आदि बिना उपचार किये ही जलाशयों में बहा देने से भी जल प्रदूषण मे भारी वृद्धि होती है। राजधानी दिल्ली म ही 17 नालों द्वारा 130 टन विषाक्त कचरा प्रतिदिन यमुना नदी में प्रवाहित होता है। इसी प्रकार विभिन्न नगरो के नाले हजारों टन कचरा नदियों में डालते

जल प्रदूषण व

(ii) औद्योगिक अपशिष्ट—हर विकसित नगर की पहिचान उसमे चल रहे उद्योग-धन्धो से ही होती है। हजारो औद्योगिक प्रतिष्ठान सकड़ो टन अवशिष्ट विषैले पदार्थों का उत्पादन करते हैं। उन्हें ठिकाने लगाने का सबसे सरल, सस्ता व निकटतम स्थान नदी या झील ही है। इन अवशिष्टो मे अनेक प्रकार के लवण, अम्ल क्षार तथा विभिन्न प्रकार की गैसें व रसायन घुले रहते हैं। ऐसे पदार्थों से जीव-जन्तु वनस्पति आदि सभी प्रभावित रहते हैं। कागज, चीनी, चमडा, वस्त्र, मदिरा व रसायन आदि प्रमुख रूप मे ऐसी औद्योगिक इकाईया है जो जल का सबसे अधिक उपयोग कर उसे गभीर रूप मे दूषित करती हैं।

(iii) अपमार्जक (डिटरजेन्टस)—बढती हुई औद्योगिक प्रगति तथा सभ्यता के विकास की प्रवृत्ति के फलस्वरूप सफाई के लिये नित्य प्रति नये-नये अपमार्जक बाजारो मे आते जा रहे हैं। उत्पादनकर्त्ता द्वारा इनके तात्कालिक लाभ के लिये उपभोक्ताओ को आकर्षित करने से इनका उपभोग उत्तरोत्तर बढ रहा है। यह अपमार्जक बराबर जल मे घुलकर जलदायो मे पहुचते है तो जल की सतह पर इनके ठोस कणो की पतली परतें बन जाती है। इन परतो के कारण सूर्य का प्रकाश जल के भीतर प्रवेश नहीं कर पाता जिससे जल मे आक्सीजन पर्याप्त मात्रा मे घुल नही पाती और जल प्रदूषित हो जाता। आक्सीजन की कमी होने से जल-जन्तुओं तथा वनस्पतियों पर हानिकारक प्रभाव पडता है।

(iv) कृषि-जनित जल-प्रदूषक —उत्पादन बढाने के उद्देश्य से खेतो मे रासायनिक खादो का उपयोग दिन-प्रतिदिन बढ रहा है। ऐसे उवरक फसल के पश्चात् बचा हुआ पदार्थ वर्षा जल के साथ घुलकर मिट्टी के नीचे पहुच कर भूमिगत जल स्रोतो को प्रदूषित कर देता है। इसी प्रकार खरपतवार और रासायनिक कीटनाशक, शाकनाशक, व पीडकनाशक भी भूमिगत जल को प्रदूषित कर रहे हैं। खादो की बडी मात्रा, नदी, तालाबो व झीलो मे भी पहुचती है जिससे जल मे शैवाल की मात्रा बढ़ जाती है। शैवाल द्वारा अपने विकास मे जल की अधिकाश आक्सीजन के उपभोग से आक्सीजन की कमी हो जाती है जिसका जलीय-जन्तुओ और मानव पर घातक प्रभाव पडता है।

(v) औद्योगिक तापीय प्रदूषण—अनेक औद्योगिक सयन्त्रो को ठडा रखने के लिये जल का उपयोग किया जाता है तथा उपयोग के पश्चात् उष्ण जल को नदियो तालाबो, व झीलों मे प्रवाहित कर दिया जाता है। इससे जल स्रोतो मे जल का तापमान बढ जाता है। जिससे प्राकृतिक सतुलन बिगड जाने के कारण जीवो को भारी क्षति उठानी पडती है।

(vi) खनिज तेलों के द्वारा प्रदूषण—सागर जल-मार्गों से खनिज तेल ले जाने वाले जहाजों के दुर्घटनाग्रस्त होने से जल प्रदूषण तो होता ही है, भूमि पर भी तेलों के बिखरन के कारण प्रदूषण होता है। बड़े-बड़े जलपोत टनो खनिज तेल जल सतह पर छोड़ते रहते हैं। परन्तु खनिज तेलों के उत्पादन, शुद्धिकरण, संग्रह तथा वितरण व्यवस्थाओं में, उनका भूमि पर गिरना स्वाभाविक है। यह तेल मिट्टी के साथ बहकर भी जलाशयों में पहुंचकर प्रदूषण फैलाता है।

(vii) शवों का जल प्रवाह और प्रदूषण—नदियों के किनारे बसे नगरों में शव प्रवाह का प्रचलन है। रोगजनित जीवाणुओं सहित मानव तथा पशुओं के मृतक शरीर नदियों में प्रवाहित कर दिये जाते हैं जिनसे जल का प्रदूषण अवश्य होता है। कई स्थानों पर जली अधजली लाशें प्रज्वलित अग्नि व राख को नदी में प्रवाहित कर देने पर तापक्रम बढ़ कर जल प्रदूषण हो जाता है।

जल के मुख्य प्रदूषक तत्व—

जल में मिश्रित कुछ प्रदूषक तत्त्व वनस्पति तथा जन्तुओं पर घातक प्रभाव छोड़ते हैं, कुछ तत्व तो तत्काल दुष्प्रभाव प्रदर्शित कर देते हैं और कुछ अपना असर धीरे धीरे दिखा पाते हैं। इनसे अनेक प्रकार के रोग जन्म लेते हैं। जल में मिश्रित तत्व जब अपनी सीमा से अधिक हो जाते हैं तो मानव स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जिन्हें अलग-अलग प्रस्तुत किया गया है —

(i) फ्लोराइड्स —अकार्बनिक फ्लोराइड अत्यन्त विषैला तत्व है। इसकी लगातार मात्रा का उपयोग करने पर वजन कम हो जाता है रक्त की कमी दांतों के रोग, अंगों का असाधारण रूप में विस्तार, जोड़ों का दर्द, हड्डियों का गलना व मुड़ना आदि रोग हो जाते हैं। पश्चिमी राजस्थान के भूमिगत जल में फ्लोराइड की काफी अधिक मात्रा पाई जाती है। यदि यह मात्रा 1 पी पी एम से अधिक हो जाती है तो बच्चों के दांतों में छिद्र, तथा 1.5 पी पी एम से अधिक होने पर दांतों पर धब्बे पड़ जाते हैं, उनकी चमक समाप्त हो जाती है तथा वे पीले पड़ जाते हैं।

(ii) सीसा —यह एक साधारण जहरीला तत्व है जो निर्धारित सीमा से अधिक मात्रा में घुलने पर जनस्वास्थ्य को प्रभावित करता है। इससे भी अनेक प्रकार की फुफ्फुस व वक्क सम्बन्धी बीमारियां हो जाती हैं।

(iii) पारा —यह एक जीव द्रव जनित विष है जो रक्त परिवहन तन्त्र में अवशोषित होने के पश्चात, यकृत, गुर्दे प्लीहा तथा हड्डियों में जमा होने लगता है। इससे मुंह व मसूड़ों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। अम्लीय पारा

तो और भी अधिक विषाक्त पदार्थ है और इसकी मात्रा में बढ़ोत्तरी होने पर मिनिमाता रोग' हो जाता है।

(iv) सोडियम —अत्यन्त सक्रिय तत्व होने के कारण यौगिक रूप मे पाया जाता हैं। इन यौगिको मे जहरीलापन केवल धन आयन के कारण ही सम्भव होता है।

(v) जस्ता —यह स्वय तो जहरीला नहीं है परन्तु इसके यौगिक अवश्य ही कुछ विषैले होते है। जब जस्ते को गर्म किया जाता है तो जिंक-ऑक्साइड बनता है जिससे श्वास फाउन्डर रोग तथा श्वास विल्स' नामक बीमारिया हो जाती हैं। जिंक क्लोराइड की अधिकता से फेफडो सम्बन्धी रोग हो जाते है।

(vi) फिनोल —यह एक अत्यन्त विषैला कार्बनिक पदार्थ है। यह त्वचा तथा अन्त झिल्लियो को घातक रूप मे प्रभावित करता है। गुर्दे, यकृत, प्लीहा तथा फेफडा पर भी घातक प्रभाव छोडता है। 15-20 मिनट तक हा त्वचा के साथ सम्पर्क रहने पर सिर का दर्द, मास पेशिया म ढीलापन, न्यून दृष्टि, कम सुनना, तथा जल्दी-जल्दी श्वास लेना, बेहोशी आ जाना उत्पन्न हो जाते हैं और अन्त मे मृत्यु तक हो सकती है।

(vii) नाइट्राइट —यह भी एक खतरनाक यौगिक है जिससे शिशुओ मे रक्तावण रोग हो जाता है तथा ऐसे शिशु को नीलावण शिशु (bluebaby) कहा जाता है।

(viii) रोगजनक जीवाणु अथवा आरमेनिज्म—स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकारक हैं। इनसे हैजा, मोतीझरा निमोनिया तथा इन्फ्लूऐंजा आदि रोग फलते हैं।

शुद्ध जल की पहचान

किसी भी पदार्थ की परिशुद्धता जानने के लिये एक विशेष पैमाना (Scale) की आवश्यकता है यह बात दूषित जल के लिये भी लागू होती है —

(अ) गदलापन — जल म घुलनशील कथित कलित तथा निलम्बित ठोस पदार्थ छितरे रहते हैं जो पानी को गदला करते हैं। यह जल पीने योग्य तो नहीं होता परन्तु नहाने धोने तथा सिंचाई मे उसका उपयोग अवश्य किया जा सकता है। प्रकाश की कितनी मात्रा जल को भेद सकती है के अनुसार जल साफ या गदला कहलायेगा।

(ब) तापमान —सजीव जीव जन्तु एक निश्चित तापक्रम पर ही जीवित रह सकते हैं। तापक्रम के अनुकूल ही उनकी अभिक्रियाएँ भी प्रभावित

होती हैं सूक्ष्मजीव 27^0 सेल्सियस पर अधिक क्रियाशील तथा 32° सेल्सियस पर निष्क्रिय हो जाते हैं। मत्स्य 30° सेल्सियस पर सुचारू रूप से जीवन व्यतीत करते हैं और 35° सेल्सियस से तापक्रम बढने पर मरने लगते हैं।

(स) जैव रासायनिक ऑक्सीजन अपेक्षा—(Biochemical Oxygen Demand-B O D)—वायु की अनुपस्थिति मे निश्चित समय व तापमान पर जैव पदार्थ के जैव रासायनिक आक्सीजन (अपघटन) के लिये ऑक्सीजन की मात्रा को जैव रासायनिक आक्सीजन अपेक्षा (B O D) कहलाती है।

यह क्रिया अत्यन्त धीमी गति से चलती है। समयानुसार जैव पदार्थ उसी गति से स्थिर होने लगते है आक्सीजन की माग भी कम होने लगती है। इसके लिये 20^0 सेल्सियस तापमान तथा 5 दिन की अवधि एक आदर्श स्थिति मानी गयी है। औद्योगिक अपशिष्टो मे विद्यमान प्रदूषको के आधार पर इन्हे तीन श्रेणिया मे विभक्त किया गया है।

(1) अपशिष्ट जिनमें उच्च ऑक्सीजन अपेक्षा (B O D) है

अनेक फल व सरकारी भण्डार, गन्ना मिलो तथा कागज की मिलो के अपशिष्टो मे शकरा के कारण ऑक्सीजन अपेक्षा उच्च स्तर की होती है। अनुमान है कि एक साधारण मध्यवर्गी कागज की मिल से उपसर्जित अपशिष्ट एक साधारण नगर जिसकी जन सख्या कई लाख हो सकती है के द्वारा फेंके गये अपशिष्ट के बराबर है। इनके कार्बनिक घटक भारी मात्रा मे जीवाणु तथा कवको को पोषण प्रदान करते हैं। ऐसे जीवो की चयपचयी क्रियाओ मे आक्सीजन की मात्रा मे भारी कमी हो जाती है तथा वह क्षेत्र तेजी से ऑक्सीजन अभावी क्षेत्र बन जाता है। इस परिस्थिति मे मछलिया या तो मर जाती हैं या उस क्षेत्र को छोडकर अन्यत्र चली जाती है।

(2) अपशिष्ट जिनमें उच्च ऑक्सीजन अपेक्षा तथा न्यून विषपन है —

कुछ औद्योगिक अपशिष्ट ऐसे भी हैं जिनकी ऑक्सीजन अपेक्षा बहुत ऊची होती है साथ ही कार्बनिक तथा अकार्बनिक विष पदार्थ भी रहते हैं तथा इनके साथ ही हाइड्रोजन आयन की मात्रा बहुत उच्च तथा बहुत निम्न हो सकती है। शकरा पदार्थों के अतिरिक्त लकडी की लुगदी के अपक्षयी पदार्थों मे उच्च ऑक्सीजन अपेक्षा, सोडियम हाइड्रोक्साइड, सोडियम सल्फाइड, फार्मेलडिहाइड, व सोडियम लवण तथा फैटी अम्ल पाये जाते हैं। इन अपदार्थी पदार्थों का उच्च कार्बनिक घटकों के कारण जल मे घुली ऑक्सीजन की मात्रा घट जाती है। अब यह स्थिति वायु मे सास लेने वाले जीवों के उपयोगी नहीं रह जाती। जरा भी हल्के विषैले पदार्थों की उपस्थिति से जन्तुओ मछली आदि पर घातक प्रहार करते हैं।

जल-प्रदूषण म ११९१४

(3) अपशिष्ट जिनमे न्यून ऑक्सीजन अपेक्षा व उच्च विपचन है—

खनिज एव रासायनिक उद्योगो से निकलने वाले अपशिष्टो मे विपल पदार्थों की मात्रा अधिक व कार्बनिक पदार्थों की मात्रा न्यून होना है ऐसे पदार्थों की ऑक्सीजन अपेक्षा न्यून होगी तथा विपैलापन अधिक होगा। ताबा, पारा तथा सीसा युक्त अपशिष्ट अधिक भयकर सिद्ध होग।

(4) रासायनिक ऑक्सीजन अपेक्षा (C O D)

खास परिस्थितियो मे रासायनिक ऑक्सीकरण (अपघटन) के लिये आवश्यक आक्सीजन की मात्रा रासायनिक आक्सीजन अपेक्षा (C O D) होती है। प्रदूषण की मात्रा को शीघ्रता से मापने के लिये इस विधि का उपयोग किया जाता है। यह प्रक्रिया दो तीन घण्टो मे पूरी हो जाती है।

(5) जल मे घुली आक्सीजन (D O)—

जलीय प्राणियो तथा वनस्पति का जीवन जल मे घुली हुई आक्सीजन पर निर्भर करता है। जब जल मे मल-मूत्र तथा औद्योगिक अपक्षय अधिक मात्रा मे डाल दिये जाते हैं अपघटन के कारण पानी मे घुली ऑक्सीजन मे भारी कमी आ जाती है और मछलिया मरने लग जाती है, इस प्रकार जल दूषित होने लगता है। जल मे घुली आक्सीजन शुद्ध जल क्षमता की द्योतक है। इसलिये जल मे विद्यमान जन्तुओ तथा वनस्पति के द्वारा प्रदूषण का पता लगाया जा सकता है।

(6) हाइड्रोजन आयन की मात्रा (pH मान)—

जल मे हाइड्रोजन की मात्रा से उसकी अम्लीयता व क्षारीयता का मान होता है। यदि pH का मान कम है तो इसका सीधा सा तात्पर्य यह है कि जल अम्लीय है। जब pH का मान 7 हो जाता है तो जल को उदासीन कहा जाता है।

(7) जीव विज्ञानी विधिया—

जल पीने योग्य है अथवा नही यह जानने के लिये जल मे कालीफार्म नामक जीवाणु की गणना की जाती है। यूलोथ्रिक्स नामक शैवाल शुद्ध जल में तैरता रहता है और क्लोरैला नामक शैवाल दूषित जल मे। जल में फास्फेट की मात्रा अधिक होने पर हरी व नीली शवाले बडे बडे गुच्छो के रूप जल सतह पर तैरने लगती हैं। इसका मुख्य कारण है पर्याप्त पोषण के अभाव मे यह नष्ट होकर सडने लग जाती हैं और जल प्रदूषण मे भागीदार बनती हैं।

जल प्रदूषण निवारण तथा नियन्त्रण—

जन सख्या मे विस्फोट औद्योगिक विकास तथा शहरो के व्यापक विस्तार के परिणाम स्वरूप दिनो दिन शुद्ध जल की माग खपत बढती जा रही है।

जल की आवश्यकता तथा उपभोग का सतुलन के लिये जरूरी है कि जल अपव्यय पर नियन्त्रण किया जाय, उपलब्ध जल भण्डारो को सुरक्षित रखा जाय तथा नये जल स्रोतो की निरतर खोज की जाय। इसके अतिरिक्त शुद्ध मीठे जल को प्रदूषण से बचाया जाय और दूषित जल का समुचित उपचार करने के बाद उसका फिर से उपयोग करने की दिशा मे ठोस कदम उठाये जावें।

जल के प्रदूषण पर दो विधियो से नियन्त्रण रखा जा सकता है —

(अ) नदियो, तालाबो झीलो आदि मे स्वत शुद्धिकरण की प्रक्रिया द्वारा तथा

(ब) प्रदूषण के साधनो पर अकुश लगाकर।

जलाशयो के जल स्वत शुद्धिकरण क्रिया मे सूय, प्रकाश वायु सूक्ष्म-वनस्पति तथा जलीय जन्तुओ का सहयोग होता है। जब प्रदूषण अधिक हो जाता है तो जल का स्वत शुद्धिकरण होना सभव नही है। ऐसी परिस्थिति मे प्रदूषकों को उनके स्रोतो पर ही नियन्त्रित करने की विधि सफल हो सकती है। उसके लिये आवश्यक है कि बडे शहरो मे मलस्राव प्रणाली विकसित करके स्थानीय परिस्थितियो व आर्थिक साधनो के अनुसार उपचार किया जाये तथा दूसरे उद्योग जनित अवशिष्टो के उपचार के लिये सयन्त्र लगाने मे औद्योगिक इकाईया पहल करें। उपचार के पश्चात ही इन पदार्थों को जलीय ससाधनो मे प्रवाहित किया जाय।

इसके अतिरिक्त अन्य निवारक उपाय भी अपनाये जा सकते हैं —

(I) अपमार्जको के अधिक उपयोग से हानिकारक प्रभावो के विषय मे जनता मे जागरण की आवश्यकता है।

(II) कृषि मे कम से कम जीवाणुनाशक, कीटनाशक तथा शाकनाशक औषधियो का प्रयोग होना चाहिये।

(III) मानव तथा पशुओ के शवो अथवा हड्डियो का विसर्जन रोकने हेतु सामाजिक वातावरण तैयार किया जाना चाहिये।

(IV) पृथ्वी पटल से 30 से 35 प्रतिशत जल भाप बनकर उड जाता है उसे रोकने के लिये वैज्ञानिक बराबर प्रयासरत हैं, दूसरी ओर सागर के खारे जल को भी पीने योग्य बनाने के लिये प्रयोग किये जा रहे हैं। ऐसी स्थिति मे जल का अपव्यय मानव जाति व जीव जगत के साथ न्याय नही होगा। इसकी रोकथाम करना प्रत्येक व्यक्ति की नैतिक जिम्मेदारी है।

(V) उद्योगपतियो का शासक एव प्रशासको के साथ अपवित्र गठबधन पर्यावरण सरक्षण की महती आवश्यकताओ पर कुठाराघात है। गोमती नदी

मे जल को प्रदूषित करने वाले शक्कर तथा शराब के कारखाना के उच्च सपर्क रखने वाले मालिक लोग ही थे। यदि ऐसे लोग अपने तुच्छ आर्थिक स्वार्थों को ताक म रख दे तो मानव जाति का बडा उपकार करेंगे। इन्हें यह समझना चाहिय कि शुद्ध पेय जल की कमी के कारण ही लोगों में विशेषकर बच्चो मे हैजा, पेचिस टायफायड, क्षय, मलरिया, पेट के कीडे नारु आदि रोग उत्पन्न होते हैं। केवल भारत मे ही दो-तिहायी बीमारिया का कारण अशुद्ध जल है।

(vi) कावनिक पदार्थों के निष्पादन से पूव उसका ऑक्सीकरण कर दिया जाय। पानी मे जीवाणुओ को नष्ट करने के लिये रासायनिक पदाथ जसे ब्लीचिंग पावडर आदि का प्रयोग करना चाहिये।

(vii) जव जल मे परमाणु परीक्षण किये जाते हैं तो जल म इनके नाभिकीय कण मिल जाते हैं और यह जल को प्रदूषित बनाते हैं। समुद्रों मे होने वाले परमाणु परीक्षणा के कारण नाभिकीय कण सीधे ही समुद्री जीवा व वनस्पति को नष्ट कर देते है और सागरीय पर्यावरण मे असन्तुलन की स्थिति जन्म लेती है अत अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जल मे किये जा रहे परमाणु परीक्षणों पर रोक लगानी अनिवाय है।

□ □

भूमि-प्रदूषण एवं प्रबन्ध

एली पाक एव पाक (1967) ने मृदा के विषय मे कहा है कि यह भूमि की वह ऊपरी 'थिथली' परतें हैं जो हजारो वर्षों से चट्टानों के टूटन स बनती है तथा जीवो और कार्बनिक यौगिको मे सम्बधित होती है। ट्रेशो (1970) ने मृदा का 'एक जटिल भौतिक-जैविक महति कहा है जिसमे जल, पोषक तत्व व पादपो के लिये आक्सीजन सहयोगी है।' आज के परिवेश मे वैज्ञानिकों ने मृदा विज्ञान को जिस प्रकार विकसित किया है इससे समझा जाता है कि मिट्टी मृत नही है, उसका अपना जीवित ससार है। मिट्टी भी श्वास लेती है तथा सूक्ष्म जीविया सहित उसमे समस्त गदगी को नष्ट करने की निश्चित क्षमता है। यदि बाहरी साधना से—जीवनाशियो के प्रयोग द्वारा उसकी क्षमताओ को कम किया जाता है तो मिट्टी मे गदगी घटने के बजाय और बढेगी और मानव-स्वास्थ्य पर उसका दुष्प्रभाव ही होगा।

मृदा पर्यावरण का एक अभिन्न अग है और यह प्रदूषण से अछूती नही है। चाहे वायु-प्रदूषण हो अथवा जल-प्रदूषण इन सब मे मृदा भी सहभागिनी है। इसलिये मृदा, जल व वायु की अपेक्षा प्रदूषण की सम्भावनाओ से अधिक सत्रस्त है। उसे उष्मीय तथा नाभिकीय प्रदूषण भी बराबर आतकित कर रहे हैं। मिट्टी अपने प्रदूषण को स्वय तक ही सीमित नही रख कर उसे वनस्पतियो मे, फिर पशुओ मे और अन्त मे मानव मे स्थाना तरित करती है। यह चक्र निरतर गतिशील रहता है। धुआ, गद व सडन भी सदव मृदा से चिपकी रहता है। औद्योगिकरण के कारण भी भूमि-प्रदूषण बढा है। आज भूमि एक रद्दी की टोकरी बन गई है। इसमें बिना किसी सोच विचार के अपशिष्ट या रद्दी माल फेंक दिया जाता है। कोई भी ऐसा पदाथ जो मृदा के साथ मिलकर उत्पादकता को प्रभावित करे मृदा प्रदूषक कहलाता है। प्रदूषकों के कारण उत्पन्न स्थिति को प्रदूषण कहते हैं।

प्रदूषित मृदा जन्तुओ को हानि पहुचाती है तथा मृदा के भीतर ही बदलाव आ जाता है। यह धनात्मक प्रदूषण है परन्तु इससे भी घातक प्रदूषण वह है जिसम स्थलाकृति मे ही रद्दो-बदल हो जाती है और जो किसी उपभोग या निष्कासन के कारण होता है, वह ऋणात्मक प्रदूषण होना है। भूमि अपरदन ऐसा ही प्रदूषण है जो पशुचारण या वनस्पति के विनाश के कारण होता है। रेगिस्तान की उत्पत्ति का मुख्य कारण भी यही है। अपने घरो को स्वच्छ रखने की होड़ में घर का कूडा करकट, धातु निर्मित टीन, प्लास्टिक का

टूटा सामान, कांच की बोतलें, अखबार व रद्दी कागज खेतो म फक दिये जाते हैं, इसे तृतीय प्रदूषण की सज्ञा दी जाती है। अमेरिकन नागरिक प्रतिवष लगभग 250 किलोग्राम कागज प्रयोग कर फेंक देता है।

विज्ञान तथा प्रगति की अधी दौड मे हमने भूमि को ही नहीं बख्शा है, प्रतिवष अरबो टन मिट्टी का क्षरण केवल इसलिए हो जाता है क्योंकि मानव भलि-भांति इसका उपयोग नही कर रहा है। अनुमान है कि भारत म ही कम से कम 17 5 लाख हेक्टेयर भूमि पर अनावृत्तिकरण का गम्भीर सकट है। सामाजिक वानिकी (Social forestry) के नाम पर बडे बडे वनो का सफाया कर यूकिल्पटस के पेड रोप दिये गये हैं, भूमि में मनमाने ढग से उवरको के उपयोग के कारण भूमि अपनी उवराशक्ति को खोकर खाद पर जीवी हो गई है। यही कारण है कि भूमि में जो खाद डाली जाती है वह खाद्य-पदार्थों के जरिये मानव शरीर मे पहुच कर अनेक प्रकार के रोग पदा कर रही है। खाद्य पदार्थों, दूध मक्खन आदि म डी० डी० टी० व अय जीवनाशक, कीटनाशक कवकनाशक, शाकनाशक औषधियो के तत्व मिल गये हैं। इनके अतिरिक्त भी विकसित राष्ट्रों की होड मे महाशक्तिया दिन रात अणु, परमाणु हाइड्रोजन बम परीक्षण, नाभिकीय सस्थान रेडियोसक्रिय अपशिष्ट पदार्थों, रेडियोसमस्थानिको आदि को विसर्जित करती रहती है जिससे पर्यावरण प्रदूषित होकर कैंसर बाझपन तथा मानसिक रोगियो की सख्या म वृद्धि हो रही है।

गावो मे पशुओ का गोबर व मूत्र गदगी का एक प्रमुख कारण है परतु इ ह यदि कामपोस्ट के रूप म खेतो मे डाला जाय तो ये भूमि की उवराशक्ति को बढाते है। उन्नत देशो मे जहा पशु उद्योग सगठित है बडे बडे डयरी फाम हैं वहा की स्थिति गभीर है। पशुओ का मलमूत्र उठाना दुष्कर हो रहा है जिससे प्रदूषण भी बढा है। यहा कृषि के अवशेष उग्र समस्या बन चुके हैं। चावल मिलो के आसपास भूसे के ढेर चीनी मिलो के निकट गन्ने की खोई तथा शीरा कागज की मिलो तथा कृषि-उद्योगो के अपशिष्ट भी उग्र रूप धारण कर गये है। 25 000 टन फलो व सब्जियों का अपशिष्ट भी निकलता है। प्राप्त आकडो के आधार पर कहा गया है कि भारत मे ही कुल 2 अरब टन अपशिष्ट होता है जिसके लेशमात्र भी कृषि म पुन काम मे नही आता यह मदा-प्रदूषण को ही बढावा देता है।

हमारे देश मे बजर तथा लवण युक्त मिट्टियो की भरमार है जो लवणो के अत्यधिक सचय के कारण है। यह लवण सिंचाई-जल तथा भूमिगत जल से बचे रहते हैं। लवणो के सचित होने पर मदा की भौतिक स्थिति खराब हो जाती है। वर्षा का जल भूमि के भीतर प्रवेश नही कर पाता और ऐसे क्षत्रो म फसलो को उगाना सम्भव नही होता।

जब जन सख्या मे वृद्धि होती है, मनुष्य को नये आवासो की खोज करनी पड़ती है, तब उसे अन्य स्रोतो से नये ससाधनों के उपयोग की आवश्यकता होती है। वह समाज म रहकर अनुभव करने लगता है कि अपने वातावरण को सुरक्षा दे, ससाधनो का सही उपयोग कर तथा समस्याओ के घेरे मे उलझ कर नही रह जावे। मनुष्य ने प्रकृति को 'दास' बनाया है तथा ससाधनो को दृढ बनाने का अथक प्रयास भी किया है परन्तु इसके परिणाम बहुत हद तक मनुष्य के लिये अहितकर सिद्ध हो रहे हैं। इन्हे साधारणतया "पारिस्थितिक दुष्परिणाम (Ecological blacklashes) कहा जाता है। फावर तथा मिल्टन (1969) ने विश्वस्तर पर ऐसे दुष्परिणामो की ओर ध्यानाकर्षण किया है। अविकसित देशो म बडे-बडे बाध बन जाने के कारण दूसरे प्रकार की समस्याओं—मछलियों की उपज में भारी कमी, मृदा का अपरदन, बड-बडे दलदलो का निर्माण, सी सी मक्खियो की जीव सख्या म भारी वृद्धि तथा महामारियों का प्रकोप।

भूपटल के ऊपर तथा जलमण्डल के नीचे तक जैव-भू-रासायनिक आवरण मृदा जव पदार्थो व चट्टानो की अन्तरक्रियाओं से हजारो वर्षो के सतत् प्रयास से बनी है। औद्योगीकरण व शहरीकरण व अन्य मानवीय कृत्यो का मृदा पर गहरा असर हुआ है। वनो मे अप्रयोजनापूर्ण बरबादी का जल व भूभाग पर घातक प्रहार हुआ है। वन क्षेत्रो मे पेडो के कट जाने से मृदा के उपजाऊ कण भी बह जाते हैं तथा विषम परिस्थितिया उत्पन्न हो गई हैं। कृषि मे आधुनिकतम तरीको का उपयोग व अन्धाधुध रासायनिक खादो ने पर्यावरण को भयकर मोड पर ला खडा किया है। एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि अकार्बनिक खादो के स्थान पर कार्बनिक पदार्थों का उपयोग अधिक श्रेयकर होगा। जमीन को कटाव से बचाने के लिये घासस्थलियों का विकास किया जाय, बागो तथा उपवनों के महत्व को समझा जाय।

चट्टाने मृदा की जननी है और मृदा का निर्माण हजारो वर्षों मे पूरा होता है। यह मृदा ही पादप-उत्पादन का माध्यम है तथा इसी के भीतर पादपो का मूल परिवर्धन सम्भव है। वस्तुत मृदा पृथ्वी की बाह्य पटल तथा जलद चट्टानो के आवरण का कार्य करती है। इस परत म खनिज लवणो, जैविक द्रव, व सूक्ष्मजीवी पोषक तत्व तथा वायु व जल की उपस्थिति अनिवार्य है। मानव भोजन का मूल आधार पादप समुदाय ही है। इस प्रकार स्थलीय पादपों की मूलो जड़ों का पर्यावरण भूमि की परतो के रूप में 'मृदा प्रणाली' म निहित है। इस तथ्य से स्पष्ट है कि मृदा भी वायु व जल की भांति एक प्राकृतिक ससाधन है और उतना ही आवश्यक भी। यदि मानव को इस भूपटल पर अपना अस्तित्व रखना है तो उसके लिये मृदा की उपमा करना

महासागर-भौगोलिक पर्यावरण

भूगोलवेत्ताओं के अनुसार पृथ्वी एक जलीय ग्रह है। चूंकि परतों का ठोसकरण हो गया है पृथ्वी का भीतरी जल बाहर निकल कर, निचले तलों में एकत्र हो गया है। पृथ्वी का लगभग 71 प्रतिशत भाग जलीय आवरण से आवरित हो गया है और कहीं-कहीं जल की गहरायी 3730 मीटर तक हो गयी है। केवल कुछ ही अंश तक पृथ्वी जल का एक छोटा-सा अंश वायुमण्डल में समाहित होता है, स्थल पर झीलों, तालाबों आदि के भीतर भरा रहता है हिमानियों या पर्वत की चोटियों पर बर्फ के रूप में जमा रहता है। जल का अधिकांश भाग तो समुद्रों के भीतर ही समाया हुआ है। समुद्र विशाल, गंभीर व मर्यादा की महिमा बनाये रखते हैं।

पृथ्वी पर जन समुदाय कुछ सौ किलोमीटर सागर तट पर ही बसा हुआ है। इस जन समुदाय के लिये सागर मौज मस्ती के क्षेत्र, भोजन संसाधन तथा व्यापारिक मार्गों के रूप में कार्य करता है। ऐसे समुदायों के लिये भी जो सागर तटों से दूर स्थित है, उनकी दैनिकचर्या को भी बड़ी मात्रा में प्रभावित करते है। सागर केवल जीवन के आवश्यक तत्व जल को ही उपलब्ध नहीं कराता वरन् यह सौर ऊर्जा को भी संग्रहित कर पृथ्वी के वायुमण्डलीय चक्रण द्वारा ऊर्जा का वितरण करता है फलतः, मौसमों का निर्माण भी करता है। हमारा विश्व संक्षिप्त में जलीय ही है तथा सागरों के विस्तृत अध्ययन द्वारा ही हम अपने स्वयं के पर्यावरण को अधिक से अधिक जान पाते हैं।

भूमि-तल जो लगभग 5100 लाख वर्ग किलोमीटर में विस्तृत है, उसे देखते हुए महासागर 3610 लाख वर्ग किलोमीटर अर्थात् 70 8 प्रतिशत में फैले हुए हैं। विश्व का आयतन 1368×10^{18} लीटर है, उसकी तुलना में महासागरों का मात्राभार $1,419 \times 10^{18}$ मीटरिक टन है जो पृथ्वी के सकल भार का 0 24 प्रतिशत है। पृथ्वी का सकल मात्रा भार 1591×10^{18} मीटरिक टन है। पृथ्वी पर मिलने वाला 97 2 प्रतिशत जल समुद्र में ही निहित रहता है तथा शेष 2 8 प्रतिशत ठोस रूप में रहता है। वास्तविकता में जो जल भूमि-तल पर तथा वायुमण्डल में विद्यमान है, विश्व के 46 अरब लोगों के लिये सकल जल संसाधन का 0 031 प्रतिशत ही है।

महासागरों के विषय में कहा जाता है कि यह पृथ्वी तल का प्राचीन स्वरूप है जबकि यह विश्वास किया जाता है कि पृथ्वी 4 5 अरब वर्ष

पुरानी है तथा महासागरो की आयु 3 अरब वर्ष है। जल तथा भूमि के बीच स्थान अपनी सीमाओं को निरंतर बदलते रहते हैं। इसका मूल कारण हिम नदियो के हिम का पिघलना है। महासागरो के छिछले क्षेत्र किसी समय सूखे स्थली क्षेत्र रहे होगे। ऐसा भी अनुमान है कि 20,000 वर्ष पूर्व महासागर आज के स्तर से 130 मीटर नीचे था। एशिया व उत्तरी अमरिका उस समय म पृथ्वी के एक ही भूभाग थे तथा उनके मध्य स्थलीय पुल था जो अब बेहरिंग जल डमरू मध्य तथा चुकुची सागर क रूप म विद्यमान है।

समस्थलीय आकडे—

पृथ्वी का क्षेत्रफल—510×10^6 वर्ग कि मी

महासागरो का क्षेत्रफल—361×10^6 वर्ग कि मी (70 8 प्रतिशत पृथ्वी का)

पृथ्वी का मात्रा भार—591×10^{18} मीटरिक टन

महासागरो का मात्रा भार—1419×10^{18} मीटरिक टन

महासागरो का आयतन—1368×10^{18} लीटर

बगाल की खाडी तथा अरब सागर का क्षेत्रफल—10312×10^6 वर्ग कि मी (समस्त महासागरो का 2 9 प्रतिशत)

भारत का क्षेत्रफल— 3276×10^6 वर्ग कि मी (31 8 प्रतिशत सागरो के अतिरिक्त घर हुए)

भारत व भारतीय सागर :—

भारत भूमि का क्षेत्र फल $3\ 276 \times 10^6$ वर्ग कि मी है जो समस्त पृथ्वी का 0 64 प्रतिशत है। बगाल की खाडी व अरब सागर को सयुक्त कर सागर क्षेत्रफल $10\ 312 \times 10^6$ वर्ग कि मी है जो विश्व के सभी महासागरो के क्षेत्रफल का 2 9 प्रतिशत है। इस प्रकार हम देखते है कि भारत के चारो ओर स्थित सागर क्षेत्र भारत क स्थलीय क्षेत्र का 3 गुना है। यह भी सत्य है कि यह सारा क्षेत्र भारत का नही है। नियमानुसार प्रत्येक देश के लिये उसके सागर तट से 200 नाटिकल मील (370 कि मी) का ही क्षेत्र उसका हो सकता है और वह देश अपने ही क्षेत्र मे जविक (मत्स्य आदि) तथा अजविक (खनिज तेल आदि) के ससाधनो को अपने उपयोग म ला सकता है। ऐसे सागर क्षेत्र को एकाकि आर्थिक सभाग (exclusive economic zone) कहते हैं जिसके द्वारा उस देश क ही जहाज अपना व्यापारिक साज-सामान एक ओर से दूसरी ओर ला व लेजा सकते हैं। इस आधार पर भारत क अधिकार क्षेत्र म $2\ 05 \times 10$ वर्ग कि मी सागर आता है जो सम्पूर्ण भारत के सकल क्षेत्रफल का 61 5 प्रतिशत होगा। भारत का सागर तट भी लगभग 6000 कि मी लम्बा है जिसम अनेक नदियो का समागम होता है और 1645 घन

कि मी स्वच्छ जल बह कर आता है। इसका लगभग 75 प्रतिशत बगाल की खाडी मे ही गिरता है। भारत के चारो ओर स्थित सागरा म सन् 1984 म 16 8 लाख टन मत्स्य उत्पादन हुआ था तथा प्रतिवष मत्स्यों को पकडन की दर 10 प्रतिशत बढ रही है अर्थात प्रति दस वर्षों मे म स्य आखेट दो गुना हो जाता है।

भारत के चारों ओर सागर-तटीय प्रदूषण की स्थिति —

सन 1981 म भारत की जनसंख्या 7500 लाख थी तथा 1880 लाख लोग अर्थात भारत की आबादी का 25 प्रतिशत सागर तट या समीपी क्षत्रो म ही बसता है और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अपने जीवनाधार सागर पर ही निभर रहता है। भारत म सागरतटो पर स्थित महानगरो का घरलू अपक्षय 120 लीटर प्रतिदिन प्रति व्यक्ति की दर से सागर मे प्रवाहित हो रहा है इस आधार पर प्रतिवष लगभग 4 1 घन कि मी अपक्षय सागर म जुडता है। 0 66 से 0 06 घन कि मी क्रमश बम्बई व मद्रास व दरगाह के द्वारा ही जुड जाता है। सागर तट पर बडे बडे उद्योगो स निकलने वाले अपशिष्ट भी समुद्र मे ही छोड जाते हैं। यह भी अनुमान है कि भारत म सागरो म मिलन वाले अपशिष्टो म 10 प्रतिशत केवल औद्योगिक उत्पादन हैं। इसका सीधा अथ है कि अतिरिक्त 0 41 घन कि मी अपशिष्ट सागर के साथ जुड जाता है। अकेल बम्बई महानगर ही 2310 लाख लीटर अपशिष्ट प्रतिदिन सागर म भेजता है। इस दर स 0 5 कि ग्रा प्रति व्यक्ति प्रतिदिन क हिसाब से यदि गदगी सागर म मिलती है तो एक वष मे भारतीय सागरो मे लगभग 33×10^6 टन ठोस अपशिष्ट व अशुद्धिया अ त मे सागर में पहुच जावेंगे।

इसी प्रकार यह भी अनुमान है कि सागर मे जितनी भी नदिया मिलती है, सभी अपरदो का 5 प्रतिशत सागर तक वहा लेकर आती है। महानदी गगा के अपने स्वय क डेल्टा मे स्थित उद्योगो के कारण अपने वार्षिक 370 घन कि मी का 0 344 घन कि मी अपरद समुद्र मे गिरता है। कहना होगा कि 1 083 घन कि मी भारतीय नदिया द्वारा सागर म प्रतिवष आ मिलता है।

भारत म जीवनाशियो का उपयोग भी भारी मात्रा म किया जा रहा है जो औसतन 55,000 टन प्रतिवष है। इसी प्रकार 1 25,000 टन सश्लेषित कपडे धोने का डिटर्जेंट पाउडर, द्रव साबुन तथा 5×10^6 टन उवरको को प्रतिवष काम मे लिया जाता है। यह तो साधारणतया विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि इनके 25 प्रतिशत भाग तो अवश्य ही समुद्र मे मिलता होगा। सभी को जोड कर, इन अनक वर्षों मे बहुत विशाल मात्रा म अपशिष्ट सागर मे समा गये हैं।

फारस की खाडी से अरब सागर में होकर कच्चा खनिज तेल व उत्पाद विदेशों को जाता है—तेल वाहक जहाज प्राय पश्चिमी गोलार्द्ध में अफ्रीकी महाद्वीप का चक्कर लगाकर सुदूर पश्चिम में जाते हैं। इस प्रकार पूर्वी गोलार्द्ध में भी जापान आदि देशों को जाने वाले जहाज भारतीय सागर तट के साथ श्रीलंका होकर जाते हैं। सन 1985 में विश्व के खनिज तेलों का आवागमन 12640 लाख टन का था, इसका 43 प्रतिशत भाग अर्थात 4470 लाख टन तेल व तेल पदार्थ अरब सागर के मार्ग द्वारा ही पहुचाये गये थे। तेल के बिखरने व खाली टेंकरो के धोने के परिणाम स्वरूप 750 से 1000 टन तेल प्रतिवर्ष भारत के पश्चिमी तट पर ही बिखर जाता है और टार की गोलियों के रूप में सागर-तल में संग्रहित होता रहता है।

प्रदूषकों से खतरा —

जब यह प्रदूषक समुद्र में गिरते हैं तो रासायनिक व जैविक प्रतिक्रियाओं के कारण परिवर्तित होते है और कभी-कभी कम और कभी अधिक विनाशकारी पदार्थ बना देते है। कुछ प्रदूषक ऐसे भी होते है जिनमे किसी प्रकार का परिवतन नही होता और उन्हें स्थायी प्रदूषक (biomaginfications) कहते हैं। कभी कभी कुछ प्रदूषक जैविक वर्धन के कारण अधिक भयकर रूप धारण कर जाते हैं। इनमे कुछ भारी धातुओं के कारण भी बनते है। भारी धातुएँ तरने वाली शैवालो (पादप प्लवक) के द्वारा स्वांगीकृत होकर भोजन शृंखलाओं के अंतर्गत जंतु प्लवको मे पहुचते है जिन्हें छोटी मछलियाँ और तदुपरांत बडी मछलियाँ भक्षण कर लेती हैं। जववर्धन का एक उदाहरण पारा है जो जल में नानोग्राम स्तर पर सम्पन्न होता है तथा मत्स्य मे मिलीग्राम स्तर पर। इसका अर्थ है पारा सागरीय पर्यावरण में मत्स्य द्वारा एव मानव मे भोजन के द्वारा पहुचता है। यही क्रिया अन्य दूसरे प्रदूषकों की भी हो सकती है।

प्रदूषक सागर में मानव द्वारा बडी मात्रा में अपने अपक्षय द्वारा उत्सर्जित होता है। किसी भी एक व्यक्ति को प्रतिदिन 2-3 लीटर जल की आवश्यकता होती है परन्तु सागर मे जो वास्तविक आपतन अवशिष्टों का पहुँचता है वह कई सौ गुना अधिक होता हैं। मानव अपशिष्टो मे कार्बनिक पालीफास्फेट का अनुपात बहुत बडा होता है। इसी प्रकार कार्बनिक नाइट्रोजन घटक भी काफी ऊचा होता है। जल में अपशिष्टो में फास्फोरस नाइट्रोजन के भार में भी 2-5 गुना अधिक है। ये फास्फोरस व नाइट्रोजन जीवाणुओं की उपस्थिति में अकार्बनिक पदार्थों में परिवर्तित हो जाते है और जलीय आक्सीजन को भी प्रभावित करते हैं। यह कार्बनिक लवण पादपप्लवकों के पोषण में उपयोगी सिद्ध होते है और लगभग 10 प्रतिशत पादपों

का उपभोग जन्तु प्लवको द्वारा हो जाता है। दूसरा 10 प्रतिशत बगैर टटे ही सागर-तल म एकत्रि हो जाता है तथा शेप 80 प्रतिशत सडकर व टूटकर घुली हुई आक्सीजन को प्रभावित करता है, परिणाम स्वरूप विपैला हाइड्रोजन सल्फाइड बन जाती है तथा जल मे अकाबनिक लवण छोड दिये जाते हैं। जब इस तल म ज्यो-ज्यो जल बह कर आता है तो पोषक युक्त जल तल से सतह की ओर ऊपर उठकर आता है और पुन सतह पर शवाल समूह (algal blooms) बनने लगते है। इस प्रक्रिया को सुपोषणीकरण (eutrophication) कहते हैं। यह क्रिया अपने आप म वारवार दोहरायी जाती है। वाहृतमल (sewage) के साथ अनेक प्रकार के हानिकारक जीवाणु यथा कालीफामस, और रोगवाहक शुक्राणु भी मौजूद होते ह। जब इन सूक्ष्म-जीवियो की माता आवश्यक्ता से अधिक हो जाती हैं तो जल नहाने, तैरने और अ य दूसरे मनोरजन के उद्देश्यो के योग्य नही रह जाता है।

सागर-तलीय पेट्रोलियम हाइड्रोकाब स अपने माध्यमिक रूप म रहते हैं जो भौगर्भिक परिवतना म मीथेल व काबन-डाई-ऑक्साइड आदि उत्पन्न करते हैं। यह सदैव प्राकृतिक वहिगमन के द्वारा ही वहा तक पहुच पाते हैं। अनेक प्रकार के हाइड्रोकाब स प्राकृतिक रूप म भी समुद्री जीवो म पाये जाते हैं। खनिज तलो के आवागमन की गति बढ़ जाने के कारण, तेल का कुछ अश निखर जाता है और सागरीय पर्यावरण म यह एक प्रमुख प्रदूषक होता है जिसका तात्कालिक दुष्प्रभाव समुद्री पक्षियो की मृत्यु है। इसी प्रकार तल की पतली परतें समुद्री क्रस्टेशियन्स के सवेदी अगो को आवरित कर देती है और भोजन हेतु उन्ह अयोग्य बना देती है, साथ ही अपने हिंसको से बचाव की क्षमता को भी समाप्त कर देता है, इनकी प्रजनन क्षमता भी क्षीण पड जाती है। तैलीय पदाथ मौलस्का समुदाय-मोतीसीप घोंघे आदि व अ य तलीय जीवो को भी भारी नुकसान पहुचाती है और वे जीव मानव क भोजन के अयोग्य हो जात हैं।

गत 15-20 वर्षो म अनेक विषैले भारी धातुओ की सान्द्रता भी कई सौ गुना बढ़ गई हैं। उदाहरण क लिय सीसे का टेट्राईथाइल जो पट्रोल क साथ समिश्रित होता है, वायु के द्वारा सागर की सतह पर एकत्रि ह न लगता है। केवल इसी प्रक्रिया म महासागरा म सीस की सान्द्रता लगभग 500 गुना बढ़ गई है। पारे के बढते प्रयोग के कारण जापान म विश्व-प्रसिद्ध मिनीमाता रोग' मानव द्वारा मत्स्या का उपभोग करन से हाना है। धातु की सान्द्रता बढ़ जाने के कारण अयोग्य तथा मदबुद्धि शिशुआ का ज म होता है। केडमियम विष के कारण गुर्दे नष्ट हो जात है, मूत्र म विपल प्रोटीन व हड्डिया मे केल्सियम पहुचन पर—इटाई-ईटाई रोग उत्पन्न हो जाता है।

अन्य अपक्षयी धातु तत्व—तांबा, जस्ता, आरसेनिक आदि को भी समुद्री मछलियां, सीपियो व जन्तु प्लवको म सग्रहित होते देखा गया है।

डी०डी०टी० तथा पी०सी०बी० आदि जो बहुक्लोरिनेटेड हाइड्रोकाब स की श्रेणी मे पाये जाते हैं और स्थायी प्रदूषक है जब सागरीय पर्यावरण म पैठते हैं तो इनम किसी प्रकार का रसायनिक परिवतन नही होता। वह दोनों ही कुछ प्लवका क्रस्टेशियन, मोलस्क व मछलियो म जमा हो जाते हैं। पक्षी वग जब ऐसे जीवा का भक्षण करते हैं तो देखा जाता है कि उन पक्षियां के अण्डो के कवच बहुत पतले होते हैं और एस अण्डो से शिशुओ का बाहर निकलना सम्भव नही बनता। इसी तरह से सागरीय पक्षियां की सख्या मे भारी गिरावट आ गई है।

आज मानव ऊर्जा के अन्या य साधना को ढूढने म लगा हुआ है क्योंकि ऊर्जा के सचित साधन यथा कोयला व पट्रोल आदि तेजी से खप रहे हैं। अणुशक्ति तथा ताप ऊर्जा का विकास हो रहा है। इन विधियो मे जल तापमान को ठण्डा करने मे सागरीय वनस्पति व जन्तुओ की भारी हानि होगी। रेडियोधर्मी अपशिष्टो के सागर मे पहुचने पर तो और भी वीभत्स नतीजे सामने आ सकते हैं। यह सत्य है कि सागरो मे दिन म दो बार 'ज्वार' उठता है और जल कई मीटर की ऊचाई तक उठ जाता है जिससे प्रदूषको का घातक प्रभाव अधिक नही दृष्टिगत होता। भारतीय महासागर म ज्वार का वेग अधिक नही है, केप कैमेरीन के समीप तो ज्वार का उठाव 1-2 मीटर का ही है जबकि खम्भात की खाडी म 8-9 मीटर तक होता है।

□ □

सागर-प्रदूषण तथा निवारण

सागर विज्ञानी जैक येसकुस्तू ने दस वर्ष पूर्व, साढ़े तीन वर्षों में 2,48,000 किलोमीटर की समुद्र यात्रा से लौटने के पश्चात एक ही वाक्य में उत्तर दिया था कि सभी सागर अब मृतप्राय होते जा रहे हैं। गत दस वर्षों में सागरों को वास्तव में मृत्यु के निकट ला खड़ा किया है। भूमध्य सागर के विषय में भी कुछ इसी प्रकार की अभिव्यक्ति की गई है। वह इतना दूषित हो चुका है कि अब वह सागर नहीं रह कर मात्र एक गन्दी झील' बन गया है।

समुद्र तट पर बसे नगरों व गावों का मलमूत्र व कूड़ा सदियों से समुद्र में ही विसर्जित होता आया है, उसमें रहने वाले जन्तु विसर्जित पदार्थों का सेवन कर लेते हैं। कुछ पदार्थ जैव रसायनिक क्रियाओं द्वारा जन्तुओं के खाद्य में बदल जाते हैं। थोड़ा अंश ऐसा भी बचा रहता है जो ठिकाने नहीं लगाया जा सकता है ऐसी स्थिति में सदियों से ही वह 'कूड़ादान' बनता रहा है। कुछ वर्षों पूर्व तक सागर को दूषित नहीं कहा जा सकता था—जीव-जन्तु स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण कर रहे थे, न तो दम घुटने से उनकी मृत्यु होती थी और ना ही जहरीले पदार्थों को खाकर। परन्तु गत कुछ वर्षों में सागर में समाये अपशिष्ट काफी मात्रा में ऐसे हैं जिन्हें समुद्री जन्तु सीधे ही नहीं खा सकते। जब रसायनिक क्रियाओं द्वारा हानिप्रद पदार्थों में भी शीघ्र विघटन नहीं हो सकता। ये पदार्थ स्थायी हैं और लम्बी अवधि तक सागर तल में पड़े रहते हैं। यही कारण है कि आज सभी सागर प्रदूषित हैं।

आइये, यह भी देख लें कि इन अनन्त सागरों में कितना पारा, कितना सीसा व कितना जहर हमने जाने अनजाने घोल दिया है। पृथ्वी के 71 प्रतिशत हिस्से को घेरे सागर सालाना 50,000 टन से भी अधिक पारे के घातक यौगिकों को अपने में समेट रहा है। यह हलाहल उन्हें मिल रहा है कृषि तथा उद्योगों के काम में आने वाले पदार्थों से। इनमें से बहुत तो पारे के कार्बनिक यौगिकों के रूप में होते हैं जो कवकनाशियों और उत्प्रेरकों की भांति प्रयुक्त होते हैं। जल के साथ घुलकर वर्षा जल के साथ बहकर नदी, नालों व महानदियों से होते आखिर सागर में समाहित हो जाते हैं, कूड़ादान में फेंक दिये जाते हैं। पारे के यौगिक अत्यन्त विषैले तथा स्थायी होते हैं, इनमें कुछ अविघटित स्थिति में 50 से 100 वर्ष तक जल में पड़े

रह सकते है तो कुछ 'मेथिल पारे' मे बदल जाते है जो अत्य त घातक विष है। खायी जान वाली मछलिया तथा अ य ज तु पारे के यौगिको का जब भक्षण करती है या व जब भोजन शृ खलाओ द्वारा उन तक पहुचते हैं—पारा ऐसे दूषित जन्तुओ द्वारा मनुष्य तक पहुँचता है—वह अ धा हो सकता है, मस्तिष्क को हानि पहुचाता है, तत्रिका रोग उत्प न कर सकता है और तत्पश्चात मत्यु तक हो सकती है। जापान की मिनीमाता खाडी मे पारे का सुरक्षित अक कही अधिक हो गया है।

सीसा ऐसा ही दूसरा तत्व है जो औद्योगिक प्रगति के नाम पर सागर को प्रदूषित कर रहा है। इसके यौगिक भी समुद्रो मे भारी मात्रा मे पहुँच रहे हैं। सवमा य है कि प्रति वष लगभग 1,50,000 टन सीसे के यौगिक विभि न क्रियाओ द्वारा सागर म धकेले जा रहे हैं। केवल उत्तरी गोलाद्ध मे ही गत 45 साल म सीसे का ए टीनाक 01—02 म्यू-ग्राम से बढकर 07 म्यूग्राम/प्रति किलोग्राम हो गया है। सीसे की इस बढी हुई मात्रा का सागरीय जीव ज तुओ पर क्या असर हुआ है, हमे इसका पूरा ज्ञान नही है पर तु वह निश्चिय ही घातक है।

केवल पारा व सीसा ही नही, अनेक कीटनाशक भी तीव्र गति से सागर तक की दौड मे भाग ले रहे हैं। हर देश हर सम्भव कोशिश कर रहा है, बढती जनसख्या के लिये खाद्यान उत्पन्न करने की तथा विभिन्न किस्मो के रसायन प्रयोग कर, फसलो के नुकसान पहुचाने वाले कीटो व जीवाणओ को नष्ट करने का उपाय कर रहा है। इसम कोई शक नही है कि इन रसायना मे हानिकारक कीटाणुओ को नष्ट कर उत्पादन बढ़ाने मे महत्वपूण योगदान किया है पर तु बोनस के रूप मे प्रदूषण भी दे दिया है। यह प्रदूषण केवल जल, थल, वायु तथा नदियो तक ही सीमित नही रह कर सागर तक भी पहुच गया है।

कीटनाशका मे सर्वाधिक उपयोग डी०डी०टी० का हुआ है जिसके विघटन से डी०डी०ई० बनता है। निश्चित ही सबसे अधिक प्रदूषण डी०डी०ई० के कारण हाता है। भोजन शृ खलाआ के माध्यम से यह मासाहारियो के शरीर म एकत्रित होता रहता है। अधिक सा द्रता के कारण यह मछलियो के लिये घातक सिद्ध हुआ है। पक्षियो की सख्या पर भी इसका प्रभाव पडा है तथा मानव में ऐसे मासाहारियो को खाने पर कैसर, त त्रिका रोग रक्त कैंसर जस रोग उत्पन्न हो जात हैं। दूसर कीटनाशक डिलड्रीन, एल्ड्रीन हेप्टाक्लोर आदि भी प्रदूषण फलान म योग दत ह। इन सभी क कारण सागर तट पर मछलियो की सख्या म भारी कमी आ गई है।

प्लास्टिक भी प्रदूषण फैलाने की दौड मे किसी से पीछे क्यो रहे ? यह धातुओ से बहुत सस्ते है अधिक उपयोग मे आने लगे है। काम मे लेते हुए उनकी कठोरता बढती रहती है रग बदरग हो जाते हैं और टूट जाते हैं तब हम उन्हे फेंक देते है। सोचना है क्या हमने इनसे हमेशा के लिये छुट्टी पाली। नही उन्होने तो हमारा पीछा पकड रखा है। वे तो हमारे पर्यावरण को अवश्य ही आगे दूषित बनाने वाले है। यह पदार्थ बहुत देर से तथा कठिनाई से ही विघटित होते है। वायु, जल, मृदा, सूक्ष्म जीव जैसी प्राकृतिक शक्तियां भी इन्हे आसानी से आत्मसात नही कर पाता। कुछ लोगो का कथन है कि प्लास्टिक के एक डिब्बे की उम्र मिस्र के पिरामिडो से भी अधिक हो सकती है। निश्चय ही इनके ढेर भूतल पर बढते जायेंगे, कालान्तर मे इन्हे सागर मे ही प्रवाहित होना है। यह भी सागर-प्रदूषण के महत्वपूर्ण कारक है। प्लास्टिक, रबर, रेजक आदि बडे पैमाने पर उपयोग मे आने लगे है, जिन्हे रसायन शास्त्रियो ने पी० सी० बी० (पालीक्लरीनेटेड बाइफीनायल) नाम दिया है, सागर को विस्तृत रूप मे प्रदूषित कर रहे हैं।

विश्व का खनिज तेल का कुल उत्पादन सालाना 250 करोड टन है। 180 करोड टन से अधिक तेल समुद्री मार्गो से ही ढोया जाता है। इस कार्य मे लगभग 20 से 50 लाख टन तेल सागर की सतह पर ही बिखर जाता है। यह तेल ढोने के समय नही बिखरता वरन् सागर से तेल खनन के समय भी बिखरता है। आज अधिक से अधिक देश सागरो मे तेल निकालने के प्रयत्न मे लगे हुए हैं। भारत भी इस दिशा मे प्रगति कर रहा है। बम्बई के समीप बोम्बे हाई' से 'सागर सम्राट' की सहायता से तेल प्राप्त किया जा रहा है क्योकि तेल का मूल्य बढता जा रहा है। सभी राष्ट्र अपने इन प्रयत्नो मे तेजी ला रहे हैं। परिणामस्वरूप सागर पर बिखरने वाले तेल की मात्रा मे भी निरन्तर वृद्धि होती जा रही हैं।

सागर पर बिखरने वाले तेल मे बहुत सारे परिवर्तन होते हैं। उसके हल्के अंश वाष्प बनकर उड जाते हैं। इससे वह गाढा तथा भारी हो जाता है। धूप व आक्सीजन उसे (बृहलक पालिमरित) करते रहते हैं जिसके कारण वह और भी गाढा तथा भारी होकर 'टार' की छोटी-छोटी काली गोलियो के रूप मे बदल जाता है। तेल की कुछ मात्रा जल मे भी घुल जाती है। कुछ अंश सूक्ष्मजीवियो के द्वारा विघटित भी होता है, ऐसे हाइड्रो कारखाना को ऊर्जा के लिए इस्तेमाल करते हैं। यह भी प्राय देखा गया है कि तेल के हाइड्रोकार्बन्स समुद्री जीवो के शरीर मे पहुच जाते हैं और लम्बे समय तक भी टूटते नही है। जब कोई अन्य जीव इनका भक्षण कर लेते हैं तो अविघटित रूप मे ही वहा पर भी विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार एक के बाद दूसरे,

तीसरे व चौथे जीव के शरीर मे पहुचते रहते है और जब हम उन जीवो को खाते हैं तो यह हाइड्रोकार्बन कैंसर जैसे घातक रोग उत्पन्न कर देते हैं।

तेल के सागर सतह पर बिखराव के कारण बडी सख्या मे जीव-जन्तु मर जाते है। समुद्री पक्षी भी भारी सख्या मे मरते देखे गये है। समुद्री जीवो की हानि का अनुमान कुछ वर्ष पूर्व ब्रिटेन मे किया गया था, उस सर्वेक्षण के अनुसार केवल इगलैंड के तट पर ही तेल प्रसार के कारण 1,00 000 पक्षी प्रतिवर्ष मर जाते हैं। तेल की बडी मात्रा सागर तल मे भी पहुचती है और काफी समय तक वहा रहता है। यहा पर सूक्ष्म जीवो पर तेल का प्रभाव अवश्य ही पडता है क्योकि इस बात की पूरी सम्भावना है कि वहा तेल अन्य घातक पदार्थों मे बदल जाता है।

भारत के सागर तट पर अभी उतने प्रदूषण नही हुए हैं जितने अधिक प्रगतिशील राष्ट्रो के हो चुके हैं। हमारे तटीय रमणीय स्थल अपक्षाकृत स्वच्छ हैं। हमारे सागर जल मे इतना सीसा, पारा कीटनाशक औषधिया तथा रेडियोधर्मिता प्रवेश नही कर पायी है जितनी यूरोप के सागर जल मे पायी जाती है। बगाल की खाडी व अण्डमान सागर के जल व जन्तुओ मे खनिज सान्द्रता अभी सुरक्षित अक तक ही पायी जाती है। अरब सागर के पश्चिम भारतीय तट पर परमाणु रिएक्टरो, परमाणु बिजलीघरो, बोम्बे हाई के तेल-कूपो व उर्वरक कारखाना के कारण प्रदूषण तेज गति से बढ रहा है तथा उसे रोकने की भरसक कोशिश भी की जा रही है ताकि हलाहल से सागर जहरीला नही बन पाये। परन्तु एक बात अत्यन्त गभीर है, खाडी देशो के तेल वाहक जहाज सुदूर पूर्व तथा दक्षिण पूर्वी देशो को भारत के पश्चिमी तट को छूते हुए निकलते हैं। तेल ढोने का यह मार्ग बहुत प्रचलित है तथा विश्व मे जितना तेल ढोया जाता है उसका 60% भाग इसी मार्ग से ढोया जाता है। निश्चय ही तेल तो बिखरेगा ही। मानसून की हवाएँ इस तेल को पश्चिमी तट तक जाने मे भारी सहयोग भी देती है। नतीजा यह निकलता है कि हमारे पश्चिमी तट पर खनिज तेल के बिखरने से बनी टार की गोलिया की सख्या बहुत बढ़ गई है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि एक वर्ष मे कई हजार टन टार की ऐसी गोलियाँ पश्चिमी सागर तट पर आ जाती है। यह हमारे बहुत से रमणीक स्थानो को दूषित करने से बाज नही आती। भारत के अनुसधान पोत 'गवेषणी' ने पता लगाया है कि अरब सागर के तटवर्ती भागो मे 20 मीटर की गहरायी तक 32 5 म्यूग्राम/प्रति किलोग्राम टार की गोलिया मौजूद हैं।

इन 40 वर्षों मे परमाणु तथा हाइड्रोजन बमो के कई परीक्षण हुए हैं जो प्राय समुद्रो मे ही किये गये हैं—इनसे सागर मे रेडियोधर्मी पदार्थों की

मात्रा बहुत अधिक बढ गई है। स्ट्राशियम-90 तथा सीज़ीयम-137 के नये समस्थानिक सागर जल पर फैल गय है। कार्बन-14 तथा ट्रीटीयम की मात्रा भी आवश्यकता से अधिक हो गयी है। यह तत्व समुद्री जीवो के शरीर मे सचित हो जाते हैं और जब इन तत्वो की सा द्रता जल की तुलना मे हजारा गुना हो जाती है तो अवश्य ही जीवो के लिय घातक बन जाती है। जिस जीव के शरीर म यह सा द्रता बढ जाती है। वह स्वय ही प्रभावित नही होता बल्कि उसकी जीनी सरचना बदल जाती है और उत्परिवतन (Mutatations) उत्पन्न हो जाते हैं तथा उनकी आने वाली पीढिया तक प्रभावित हुए बगैर नही रहती। जब रेडियाधर्मी पदार्थों से दूपित जीवो का मानव द्वारा भक्षण किया जाता है तब वे पदाथ मानव शरीर मे प्रवेश कर उ ह भी अनेक व्याधियो का शिकार बना देते है। सागर मे रेडियोधर्मिता बढने का एक अ य कारण यह भी है कि रेडियोधर्मी अपशिष्ट, बिना उपचार किये ही तथा बगैर सोचे-विचारे ही सागर की भेंट कर दिय जाते हैं।

प्रसिद्ध निदेशक रामान द सागर द्वारा निर्देशित 'रामायण' का एक प्रकरण इसी सदभ मे उपलब्ध है, जब श्रीराम अपनी पत्नी सीता को प्राप्त करन लिये श्रीलका जाना चाहते थे, सागर को लाघना वाछित था और तभी लका पहुचा जा सकता था। श्रीराम ने सवप्रथम सागर देवता की आराधना की थी और देवता ने प्रकट होकर सागर पार जाने के लिये श्रीराम से कहा भा था कि यदि वे चाहें तो जल का शोषण कर सागर मे माग बना सकते हैं। परन्तु श्रीराम ने सागर देवता से यही अनुरोध किया था कि वे सागर की अपनी मर्यादा को तोडना नही चाहते। उ होने केवल यह चाहा था कि सागर केवल अपने प्रचण्ड स्वरूप को बदल कर शा त रूप धारण करले ताकि सागर मे सेतू का निर्माण सभव हो सके। यदि राम स्वय भी मानवीय मर्यादा को त्याग कर चाहते तो सागर जल का अवशोपण कर सकते थे। इसका आशय है कि स्वय श्रीराम मर्यादा म रहे और उ होने यह भी नही चाहा कि सागर अपनी स्वत त्रता, अनन्तता, विशालता व मर्यादा का निर्वाह छोड दे। इस बात मे सत्य पर एक आवरण छाया है कि उस काल मे भी मानव पर्यावरण के प्रति कितना सवेदनशील था। यदि आज भी मानव उसी के अनुरूप अपने कर्त्तव्यो के प्रति सजग रहे तो बहुत सारी प्रदूपण सम्बन्धी समस्याओ से निजात पा सकता है।

□ □

ध्वनि-प्रदूषण तथा नियन्त्रण

प्रदूषण क्यों ?

प्राकृतिक पर्यावरण मानव-जीवन का एक अभिन्न अग है, अत मनुष्य का रहन सहन, खान पान, वेशभूषा, स्वास्थ्य तथा अन्य गतिविधिया उस वातावरण का ही परिणाम है जिसम वह रहता आया है रिचाडवक, मिनिस्टर तथा फुलर ने यथाथ ही कहा है कि "मनुष्य वही कर सकता है जिसकी अनुभूति उसे प्रकृति करा सकती है तथा जो प्रकृति क नियमो के विरुद्ध है वह कदापि नही होगा।' परन्तु प्रकृति न तो क्रूर है और न ही निष्ठुर, वह ता नियमानुकूल चलती ही रहगी। प्रकृति के यह नियम एक सतुलित विधि स चक्र के रूप म चलत है जिन्ह आधुनिक वज्ञानिक उत्पादक-सजक, उपभोक्ता तथा विघटक चक्र क नाम से पुकारते हैं। भारत मे अनादि काल से ही इस समझ लिया गया था, उन्ह देवता स्वरूप-ब्रह्मा विष्णु तथा महेश कह कर सम्बोधित किया गया और पूजा जाने लगा। मोट रूप मे चक्र क्रम इस प्रकार है—पथ्वी पर जीवन के अश के रूप म प्रतिस्थापित होना, आकार ग्रहण करना तथा मृत्यु को प्राप्त होना।

प्रकृति का यह सतुलन-क्रम शाश्वत है परन्तु अपने आपको प्रकृति विजेता कहने वाला मानव आज अपन बाहुबल व बुद्धिबल से प्रकृति पर विजय की कामना स प्रकृति के नियमित सतुलन चक्र को नासमझ बनकर अस तुलित बनाने पर तुला हुआ है और नाना प्रकार की कष्टदायिनी समस्याओ के भ्रम जाल मे उलझ गया है। अनेक प्रकार के प्रदूषण जल, वायु मृदा एव ध्वनि प्रदूषण एव विकार बडी तीव्र गति से इस प्राकृतिक पर्यावरण म निरन्तर बढ रहे हैं, जिसस समस्त विश्व आतकित है। इसी सदभ म हम ध्वनि प्रदूषण की समस्या पर विस्तार से विचार करेंगे।

ध्वनि प्रदूषण-आशय एव कारण —

प्रदूषण का तात्पय है जल थल व नभ के पर्यावरण म अनेक प्रकार के अवाछनीय भौतिक, रासायनिक तथा जविक परिवतन होने से जो समूच जीवधारियो, वनस्पति तथा अर्जैविका के लिये हानिकारक हो। अत ध्वनि प्रदूषण का आशय वातावरण मे छोडी गयी या उत्प न की गई एसी 'आवाज ध्वनि व धुन से है जो अवाछनीय होन के साथ प्रतिकूल व हानिकारक प्रभाव उत्पन्न करती है।

औद्योगीकरण तथा शहरीकरण की दौड ने आज छोटे-बडे नगरो को जन्म दिया परन्तु उनका विकास उचित ढग से नही होने के कारण, नगर-शहर आवासीय बस्तिया व्यावसायिक तथा औद्योगिक क्षेत्र एक खिचडी सी बन गये हैं। स्कूल कालेज, अस्पताल, रेल्वे स्टेशन, सिनेमा घर, कारखाने, मन्दिर, बस-स्टैंड बाजार तथा हमारे आवास स्थल एक दूजे का हाथ पकड खडे है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि मोटर गाडियो की पो पो रेलगाडियो की सीटी व घडघडाहट कारखानो मे मशीनो की घडघड, सिनेमाघरो से लाऊड स्पीकरो की कर्ण भेदी ध्वनियो ने वातावरण को ध्वनि प्रदूषण से आच्छादित व आदोलित कर दिया है। समय-कुसमय म विज्ञापन करने वालो की कर्कश आवाजो ने तो गली मोहल्लो के शात वातावरण को गजाकर रख दिया है। मोटर गाडियो के हार्न, खुदाई के यन्त्र, मिलो व कारखानो के सायरन, विवाह व जन्म के समय बजाये जाने वाले ढोल-बाजे धार्मिक व राजनैतिक जलूसो की भरमार, चुनाव प्रसार, वायुयानो की घडघडाहट जसी आवाज जो कानो के पर्दे तक फाड देती हैं—ध्वनि प्रदूषण होता है।

वैज्ञानिको द्वारा की गई खोजो से पता चला है कि महानगरो के निवासी मानक सहनीय श्रवण ध्वनि से कितने अधिक ध्वनि प्रदूषण-'शोर' के साथ मे जी रहे हैं। 'शोर का माप डसीबल म किया जाता ह। ध्वनि को मापने की इकाई डेसीबल (dacibel-db) है—यह माप की निरपेक्ष इकाई नही वरन् सापेक्ष इकाई है जो ध्वनि की आवतता (I) का निर्देश स्तर (Io) का अनुपात जो log पर आधारित है। जब ध्वनि व दाब 0 0002 माइक्रोबार (dynes/cm) या ऊर्जा (10^{-16} वाट्स) होती है जो ध्वनि केवल सुनी जा सकती है।

$$\text{bel} = \text{Log } 10 \frac{I}{Io} \text{ तथा decibel} = 10 \text{ Log}_{10} \frac{I}{Io}$$

इनकी मान्यता है कि 75 डेसिबल से अधिक शोर हानिकारक होता है। 140 डेसिबल शोर व्यक्ति को पूर्णतया सवदना हीन तथा पागल बनाने के लिये काफी है। इस प्रदूषण से लोगो की श्रवण शक्ति कमजोर पड जाती है, बहरापन, तनाव चिडचिडापन, महिलाओ मे गर्भपात, हृदय रोगो म वृद्धि, रक्त चाप की समस्या, कार्य करने व सोचने की क्षमता म कमी शोर प्रदूषण का परिणाम है।

जर्मन वैज्ञानिक डा० जानसन ने 'शोर व मानव शरीर पर उनका प्रभाव' विषय को लेकर लम्बे समय तक अनुसधान के पश्चात बताया कि गाड़ के शोर के कारण मनुष्य के शरीर की शिराएँ सकुचित हो जाती है साथ ही सूक्ष्म शिराओ म रक्त का परिवहन सुस्त पड़ जाता है जो शरीर पर घातक प्रभाव छोड़ सकता है।

मानक ध्वनि—सहजो श्रवण योग्यता तीव्रता—75 डैसीबल

बम्बई	—90 डैसीबल
कलकत्ता	—85 डैसीबल
दिल्ली	—80 डसीबल
कानपुर	—80 डैसीबल ।

हाल ही म प्रकाशित स्टॉक ऐक्सचेंज की रिपोट से ज्ञात हुआ है कि बम्बई स्टाफ ऐक्सचेंज के वातावरण म शोर 90 decibel है तथा वहां लोग पागलों की भांति व्यवहार करने लगत है जो मूलत ध्वनि या शोर प्रदूषण का परिणाम हो सकता है ।

कानपुर नगर म भी 'शोर व दुष्प्रभाव' पर डा० वीरेन्द्र कुमार के एक सर्वेक्षण से पता चलता है कि शोर की तीव्रता किस प्रकार से घातक सिद्ध होती हैं । कानपुर मे मोटर गाडियो के अतिरिक्त शोर का दूसरा स्रोत मशीनें हैं जो कारखानो म रात-दिन चलती हैं । इन भारी मशीनो से इतना शोर होता है कि यह श्रवण क्षमता से बहुत अधिक है । जो लोग वस्त्र उद्योग प्रतिष्ठानो के नजदीक रहते हैं इससे बहुत दुखी है । कारखानो मे शोर का स्तर विभि न मशीनी विभागा म 69-105 डैसीबल तक रहता है । शोर की अधिकतम तीव्रता 105 डसीबल कपड़े बनने के शड मे रहती है । इस स्थान पर कार्यरत श्रमिक या तो अपनी श्रवण-शक्ति पूरी तरह खो चुके है या मानसिक तनाव से ग्रसित हैं ।

नियन्त्रण के लिये सुझाव :

शोर हमारे वातावरण की कोमलता को तोडकर पर्यावरण को दूषित करता है तथा यह प्रदूषण देखा नही जा सकता, केवल मानव ज्ञानेन्द्रियो द्वारा महसूस किया जाता है अथवा वातावरण म फली अदृष्य अनिच्छित ध्वनि को शोर कहते है । यद्यपि वैज्ञानिको क लिये एक महत्वपूण समस्या है, इससे बचने के लिय कुछ उपाय खोज लिये गये है । तीन विधियो से इस प्रदूषण को रोका जा सकता है —

(i) स्रोत की शोर क्षमता कम करके ।

(ii) ध्वनि के माग म बाधा उत्पन्न करके तथा

(iii) ध्वनि सुनने वाले को सुरक्षा प्रदान करके ।

उपरोक्त म शोर की क्षमता को कम करना ही कारगर सिद्ध होता है । घने बसे इलाको नगरो म ट्रको, मोटर साइकिलो की सख्या कानून द्वारा कम कर शोर की तीव्रता को कम किया जा सकता है । मशीनो से उत्पन्न कान-फाड शोर मोटर गाडियो, वायुयानो, छोट वाहनो आदि म उच्च शक्ति

भू-ओजोन प्रदूषण

भू ओजोन प्रदूषण —

भूमि तथा जल की भांति वायु आवरण भी पृथ्वी का अभिन्न अंग है। पृथ्वी के चारों ओर लिपटा वायु का आवरण, उसी के साथ निरंतर घूमता रहता है। इस प्रकार पृथ्वी के बाहरी भाग पर तीन प्रमुख मण्डल—भूमि, जल तथा वायु। यह पृथ्वी के तीन परिमण्डल कहलाते हैं। भूमि वाले भाग को स्थल-मण्डल, जल भाग को जल-मण्डल तथा वायु आवरित भाग को वायु-मण्डल कहते हैं। स्थल मण्डल सामान्यत 60 कि मी मोटाई का शैलो से मिलकर बनता है। समुद्र, सागर झीलें, नदियां, तालाब तथा पृथ्वी के भीतर छिपा जल आदि सम्मिलित होकर जल मण्डल का निर्माण करते हैं। वैसे तो वायुमण्डल भूतल से 1,600 कि मी की ऊंचाई तक फैला हुआ है किन्तु इसके सम्पूर्ण द्रव्यमान का 99 प्रतिशत केवल 32 कि मी की दूरी तक ही पाया जाता है। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल के कारण वायुमण्डल पृथ्वी से जुड़ा रहता है। वायुमण्डल मे आक्सीजन की उपस्थिति से भूतल पर जीवन की उत्पत्ति तथा वृद्धि सम्भव हो सकी है।

भूतल के निकट वायुमण्डल का घनत्व अधिकतम है, ऊंचाई बढने के साथ-साथ घनत्व भी घटता रहता है। वायुमण्डल मे भी चार विभिन्न परतें बन जाती है —

(i) सबसे निचली परत क्षोभ मण्डल है जो मौसम सम्बन्धी सभी घटनाओं को प्रेरित करती है। इस परत मे बढती ऊंचाई के साथ प्रति 165 मी पर 10 सेल्सियस की औसत दर से तापमान घटता रहता है। विषुवत रेखा पर क्षोभ मण्डल की सीमा 18 20 कि मी की ऊंचाई तक तथा ध्रुवीय प्रदेशो मे 8-10 कि मी की ऊंचाई तक है।

(ii) दूसरी परत समताप मण्डल है जिसमे तापमान एक समान व स्थिर रहता है जो आगे ऊंचाई के बढने के साथ धीरे धीरे बढता है। इस मण्डल मे ताप बढने के कारण सौर परावैगनी विकिरणो (ultraviolet rays) का ओजोन द्वारा अवशोषण होता है। समताप-मण्डल मे वायु अत्यन्त शुष्क होती है तथा क्षोभमण्डल के बादल व सवहन धाराएँ इसमे सरलता के साथ प्रवेश नही करती है।

(iii) दोनो उपरोक्त मण्डलो को विभाजित करने वाला मण्डल शान्त मण्डल (tropopanse) है।

(iv) समताप मण्डल म ही ओज़ोन से युक्त एक अ य परत ओजोन मण्डल का निर्माण करती है। भूतल से 20-25 कि मी की ऊचाई पर ओजोन मण्डल सर्वाधिक है। इसमे 75 कि मी तक ओजोन प्राय नही के बराबर रह जाती है। भूतल से लगे क्षोभमण्डल मे 10 कि मी की ऊचाई तक आजोन की मात्रा नगण्य होती है।

जब सौर पैरावैगनी किरणें वायुमण्डलीय ऑक्सीजन के साथ क्रिया करती है तो ऑक्सीजन का प्रकाश विघटन होता है तथा ओजोन की उत्पत्ति होती है। यही कारण है कि भूतल से 20-25 कि मी की ऊचाई पर (10^{12}-10^{13} अणु / घन से मी सघनता) ओजोन की परत पायी जाती है। यह परत सौर पराबगनी किरणो का अवशोषण कर लेती है तथा जीव-जगत को इन घातक किरणो से रक्षा करती हैं। यह कहने म कोई अतिशयोक्ति नही है कि वायुमण्डल सौर विकिरणो से बचाव के लिए एक कवल के रूप म काय करती है। समताप मण्डल मे ओजोन का अभाव जीव जगत को सूय की प्रच ड किरणो व गर्मी द्वारा निदयता से भून सकता है।

ओजोन एक सक्रिय गैस है जो धुआ, काजल के कण, वायु मे मिश्रित कार्बनिक पदार्थो के साथ शीघ्रता से क्रिया करती है। मोटर वाहनो ताप बिजली घरो कारखानो रेलगाडियो तथा वायुयानो से निकली कार्बन डाइ-आक्साइड तथा कार्बन मोनो ऑक्साइड के द्वारा पर्यावरण प्रदूपित होता रहता है जिसका अथ है आजोन की मात्रा म अत्यधिक कमी। इस प्रकार आजोन मण्डल का प्रदूपित होना स्वाभाविक लगता है, साथ ही यह भी सुस्पष्ट है कि ओजोन हमार जीवन के लिये कितनी महत्वपूण है। अत पर्यावरणीय प्रदूपण के कारण ओजोन मण्डल भी आवश्यक रूप म प्रदूपित हो जाता है। इसके अनेक कारण हो सकते हैं —

(1) रासायनिक कारण —प्रयोगशालाओ मे रासायनिक प्रतिक्रियाओ से उत्प न क्लोरीन व नाइट्रिक आक्साइड गैसें भू-ओजोज प्रदूपण के लिये उत्तरदायी हैं।

(2) पराध्वनिक वायुयान —इन वायुयानो मे उच्च ज्वाला तापमान पर दहन प्रक्रिया के अ तगत नाइट्रिक आक्साइड निकलती है जिसस ओजान की मात्रा म भारी कमी हो जाती है। गैस का तापमान जितना अधिक होगा नाइट्रिक ऑक्साइड का उत्पादन भी उसी अनुपात म बढता जायगा।

(3) हैलो कार्बन —ओजोन मण्डलीय ओजान की मात्रा म कमी का कारण उद्योगो मे उपयोगी फ्लोरो क्लोरमीथेन भी हो सकती है। इस घातक रसायन का उपयोग एयरोसोल स्प्रे, रेफ्रीजरेशन, वातानुकूलन तथा ठोस प्लास्टिक अवयवो के निर्माण मे किया जाता है। फ्लोरो-क्लोर मीथन, कार्बन डाई आक्साइड की भाति अवरक्त किरणो (infra red rays) को

आत्मसात एव विमजित करती है जिससे वायुमण्डल का ताप बढ जाता है। 50 वर्षों म यह बन्तरी दर 0 5 से मी है। इसस मौसम परिवतन पर अत्य धिक प्रभाव पडता है।

(4) उवरक —नाइट्रोजन युक्त उवरक जो उद्योगा में तयार किय जाते हैं ओजोन पर्यावरण प्रदूषण के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी हैं। भारत म बीसवीं सदी म तेल उर्वरको का उत्पादन अधिक हो प्रचलित हुआ है। अत आजोन प्रदूषण का होना स्वाभाविक है।

(5) ज्वालामुखी विस्फोट —ओजोन के घनत्व को कम करने वाला एक और प्राकृतिक कारण शक्तिशाली ज्वालामुखी उदगार (Volcmic erruption) है। अधिकाशत 50 कि मी की ऊचाई तक उदगारित बादल समतापमण्डल म प्रवेश कर जाता है। यह उदगार वायुमण्डल को दो प्रकार स प्रभावित करत हैं —(1) क्षोभमण्डल मे उदगार-वायु धुध की परत बन जाती है जो सौर विकिरण का पारेषण कम कर देता है और वायुमण्डल को शीतल बना देता है। (2) समताप मण्डल मे क्लारीन की मात्रा इतनी अधिक हो जाता है कि आजान प्राय समाप्त हो जाती है।

(6) सौर प्रोटोन —मानव प्रयुक्त साधनो की अपेक्षा प्राकृतिक स्रोत कभी इतने अधिक शक्तिशाली होते हैं कि मनुष्य का उन पर नियत्रण नही रह जाता है। आजोन की मात्रा को कम करने वाले एम कारक भी मौजूद हैं। सूय के तेज के प्रकाश पश्चात ब्रह्माण्डीय किरणें (cosmic rays) तथा सौर प्रोटोन विसर्जित होते हैं तो यह प्रोटोन समताप मण्डल तथा मध्य मण्डलो के भीतर प्रवेश कर वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का विखण्डन करने लगत है। इस प्रकार आक्सीजन तथा ओजोन की शृखला-प्रतिक्रिया (chain reaction) के द्वारा नाइट्रिक-आक्साइड बनकर ओजोन मण्डल प्रदूषित होता रहता है।

भू-ओजोन प्रदूषण के कारण जैविक, पारिस्थितिक तथा जलवायविक वातावरण मे भारी विभिन्नताऐं उत्पन्न हो जाती हैं। ओजोन की आधारभूत कमी से पृथ्वी सूर्य की पराबगनी किरणें अधिक मात्रा मे पहुचन लगती है फलस्वरूप त्वचा कैंसर, उत्तक वधन, एल्बूमिन निर्माण तथा स्कदन क्रिया रुक जाती है। पेड-पौधो की प्रकाश-सश्लेषण दर म परिवतन आ जाता है। भू-मण्डल पर तापमान तथा वर्षा की दशाओ मे बदलाव उत्पन्न हो जाता है। आधी तूफान आने की आशकाऐं बलवती हो जाती है। आजोन प्रदूषण तथा उसकी कमी के कारण मानव त्वचा पर कुप्रभाव आनुवाशिक लक्षणो म बदलाव, रजकता, आयु लिग भेद, स्थान परिधान तथा जीवन ढग भी प्रभावित होत हैं। काले लोगो की अपेक्षा श्वेता म मादा की अपेक्षा नरा म तथा उत्तरी अक्षाशा की अपेक्षा दक्षिणी अक्षासो पर इन विकिरणा का प्रभाव अधिक पडता है। □ □

पर्यावरण तथा पीडकनाशक रसायन

गत कुछ वर्षों मे, विश्व मे चारो ओर, पीडक नाशियो (pesticides) और विशेषकर कीटनाशियो (insecticides) का प्रयोग अपनी चरम सीमा पर पहुच गया है जो सरलता से बाजार मे उपलब्ध होते हैं और किसानो द्वारा असावधानी के साथ उपयोग मे लाये जा रहे हैं, आज समस्त मानव जाति के लिये भारी सकट का कारण भी बन गये हैं, मानव स्वास्थ्य पर इनका घातक प्रभाव पड रहा है। आज तो यहा तक कहा जाने लगा है कि पीडकनाशियो के निरन्तर प्रयोग से स्तनधारियो व पक्षियो को तो सरलता के साथ मारा जा सकेगा, किन्तु कीट समुदाय को नही, जो थोडे से समय मे ही इतनी पीढियो को जन्म दे देते हैं कि वे किसी भी ऐसे नये आने वाले रसायन के प्रति अपने मे 'आनुवशिक अनुकूलन' कर सकते हैं या फिर 'उत्परिवर्तित' होकर इन विषो को प्रभावहीन कर देते है।

पिछले 30-40 वर्षों मे ही अनेक नये रसायनो के निर्माण तथा उनके उत्पादन से मनुष्य के हाथ मे बहुत से प्रभावी पीडकनाशी कारक आगये हैं और यह पदार्थ विभिन्न 'नाशक-जीवो' को रोकने व नष्ट करने मे साधक सिद्ध हुए हैं। यह रसायन कीटनाशी (insecticides) कवकनाशी (fungicides), शाकनाशी (herbicides) खरपतवारनाशी (weedkillers) मूषकनाशी (rodent killers) आदि लेबलो से बाजारो मे उपलब्ध हैं। अब तक लगभग 1000 ऐसे रसायनो को तैयार किया जा चुका है। इनमे भारत लगभग 40 प्रकार के पीडकनाशी विदेशो से आयात करता है तथा 44 का अपने यहा पर ही निर्माण कर रहा है। इनमे कुछ ऐसे शाकनाशक भी हैं जिन्होने समस्त वियतनाम के वनो को निष्पत्रित बना दिया है और जिन्हे अब सयुक्त राज्य अमरिका मे निषेध कर दिया है। कुल मिलाकर 250 प्रकार के कीडे मकोडे, कवको, शाको, पीडको, खरपतवारो तथा कुन्तक प्राणियो आदि को नष्ट करने के लिये लगभग 44,000 टन रसायनो का प्रतिदिन उपयोग किया जाता है और ऐसा विश्वास किया जाता है पीडकनाशियो की यह मात्रा अभी और भी बढेगी।

इसमे कोई अतिशयोक्ति नही है कि सम्पूर्ण विश्व मे बहुत सारे नाशक जीव (pests) हैं जो फसलो तथा उपयोगी पादपो को समूल नष्ट कर देते हैं और उनसे प्राप्त उत्पादनो को बरबाद कर रहे हैं। यह फसल बोने से लेकर उसके पकने-कटने और यहा तक की उनके भण्डार तक पीछा नही छोडते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि वे खेत, के खलिहान तथा अनाज के गोदामों तक छाये रहते है और मानव के सीमित उत्पादक साधनो को भारी हानि पहुंचा रहे हैं। ऐसी परिस्थितियो मे मनुष्य अपने इन सूक्ष्म शत्रुओ-कीट-पतग, फफूद, खरपतवार, चूहे मूषक' व कृमियो से लगातार लोहा ले रहा है तथा उनसे सम्बंधित समस्याओ का समाधान, अपने वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान के आधार पर कुछ सीमा तक कर रहा है। इस दिशा मे उसने आशातीत सफलताऐं भी प्राप्त की है। अनेक प्रतियोगी शाकनाशक व कृमिनाशक जीवो को नियंत्रित करने या उन्हे नष्ट करने मे मानव की सफलता, बीसवीं शताब्दी का एक महान वैज्ञानिक आश्चर्य है। सन 1920 मे अमेरिका मे जहा एक किसान 8 व्यक्तियो के लिये अन्न पैदा करता था, वहा 90 वर्षों के पश्चात अब वह 30 व्यक्तियो से भी अधिक का पेट भरने लगा है, और इस उपलब्धि का श्रेय वर्तमान पीडकनाशियो को ही दिया जा सकता है। लेकिन आज वस्तु स्थिति यह बनती जा रही है, अनेक नाशक जीव सिर उठा रहे हैं और उन्होने समस्त मानव जाति को भी परेशानी मे डाल रखा है।

एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं—सर तथा पैर खोटा व खरा इसी प्रकार से पीडकनाशियो के सम्बन्ध मे भी रचनात्मक तथा विनाशकारी पहलू सामने आते हैं। इस बात मे कोई सशय नही रह गया है कि पीडकनाशक आधुनिक कृषि-विज्ञान के परमआवश्यक तथा समयानुकूल भाग बन गये हैं। आधुनिक पीडकनाशको के साथ कृषि की आधुनिकतम तकनीकियो, उन्नत किस्म के बीज व नये-नये उवरको के उपयोग से कृषि उत्पादन मे भारी वृद्धि हुई है। कृषि के अभीष्ट लक्ष्यो की प्राप्ति की दिशा मे पीडकनाशियो ने निर्भर योग्य और दीर्घकालीन साधन प्रदान किये है। यह कम खर्चीले हैं तथा इनके प्रयोग से थोडे ही प्रयत्न मे अधिक दक्षता भी साध्य है। कुछ परिस्थितियो मे तो नाशक जीवो की रोकथाम के लिये इन रसायनो के अतिरिक्त दूसरा विकल्प भी नही है। मानव जाति को अनेक संक्रामक बीमारियो को दूर करने मे भी रासायनिक कीटनाशियो ने महत्वपूर्ण योगदान किया है। भारत, श्रीलंका बर्मा तथा कुछ एशियायी व अफ्रीकी देशो मे डी डी टी के निरंतर प्रयोग से मलेरिया जसी महामारी का लगभग उन्मूलन कर दिया गया है। इन्ही विशिष्ट कारण वश ससार के सभी भागो मे पीडकनाशियो का बडी मात्रा मे उपयोग किया जा रहा है।

सन् 1947 मे भारत की स्वतंत्रता के पश्चात से ही अनेक समस्याऐं उठ खडी हुई। देश को तीव्र गति से बढ़ती हुई जन सख्या के सदर्भ मे सोचना पडा है—यह आर्थिक रूप मे आगे बढ़ा भी है तथा 21वी शताब्दी मे प्रवेश करने वाले विकासशील देशो की श्रेणी मे भी आ गया है परन्तु जन सख्या विस्फोट की समस्या कोई साधारण नही है। भारत की आबादी विश्व आबादी

की 15 4 प्रतिशत है जबकि उसका क्षेत्रफल केवल 2 प्रतिशत ही है। सन् 1971 मे भारत की जनसख्या 5479 लाख थी जो 1981 मे बढकर 683 8 लाख हो गई, इस प्रकार 1359 लाख जनसख्या वृद्धि केवल 10 वर्षों म ही हो गई थी। ऐसी स्थिति म भारत को अपने देशवासियो के लिये अतिरिक्त भोजन, मकान, कपडा शिक्षा व्यवस्था तथा अन्य ससाधनो को जुटाने की आवश्यकता पडी है। भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा 60 प्रतिशत जनता अपने जीवन के लिये भूमि तथा कृषि-योग्य उद्योगो पर ही निभर रह सकती है। भारत अपने यहा खेती के लिये 49 1 प्रतिशत खेतीहर मजदूरो को नौकरिया देने की व्यवस्था करता है जबकि अमेरिका म 3 प्रतिशत खेतीहर मजदूर है।

सारणी

	राष्ट्र	खेतीहर श्रमिका की सख्या का प्रतिशत
1	सयुक्त राज्य अमेरिका	3
2	ब्रिटन	6
3	कनाडा	9
4	जमनी	10
5	जापान	30
6	भारत	49 1

स्पष्ट है कि भारत को अपनी बढती हुई आबादी को देखते हुए खाद्यानो का उत्पादन बढान की भी अत्यधिक आवश्यकता है और उसे अन्य देशा से कृषि तकनीको को ग्रहण करने की महती आवश्यकता है। बढती हुई जन-सख्या को भोजन मुहय्या कराने तथा सतुलित विकास के लिय भारत सरकार ने सन् 1960 म खाद्यान्न उत्पादन की दिशा म स्वपूर्ति हेतु मेक्सिको से 'हरित क्रान्ति का गुरु-मत्र प्राप्त किया। कृषि म तकनीकी परिवतन सिंचाई साधनो मे वृद्धि, उवरको तथा खरपतवारो मे नियत्रण तथा नये उन्नत किस्म के बीजो की सहायता से उस स्तर तक पहुचा गया है कि कृषि उत्पादन मे भारी वद्धि हो सकी है, वह इस दृष्टि से सम्पन्न हो गया है। भारत अब लगभग 350 लाख टन अतिरिक्त खाद्य पदार्थों का उत्पादन कर उन्हे विदशा मे निर्यात करन मे भी सफल रहा है।

खेती म नये तरीका को अपनाकर व उर्वरका तथा जीवनाशियो की सहायता से अनाज उत्पादन कर इस ओर काफी आगे बढ गया है। खेतो मे जीव नाशिया के उपयोग से अनेक लाभ भी हुए हैं यथा—भोजन पदार्थों का ह्रास कम होना, फसलो की सुरक्षा, मानव व अन्य प्राणिया म कीटा क

द्वारा संक्रमण होने वाले रोगों में भारी कमी तथा खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता में विकास। किन्तु इस तस्वीर का एक दूसरा पक्ष भी है और वह जीवनाशियों के इन लाभों के विरुद्ध इनके कारण पर्यावरण गुणवत्ता में भारी कमी भी आई है तथा पारिस्थितिक सतुलन में भी बदलाव आया है। अमरिका तथा यूरोप के देशों में जीवनाशियों के उपयोग से पारिस्थितिक विनाश अवश्य हुआ है परन्तु भारत में अधिक लोगों, उच्च जनसंख्या घनत्व, न्यून ससाधनों और भूमि-प्रसार के अभाव में विनाश की गति अधिक रही है।

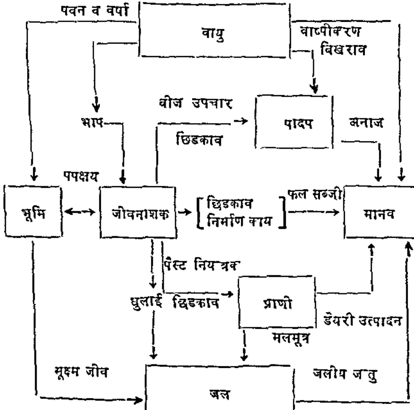
जीवनाशियों का इतिहास 1000 ईसवी पूर्व तक जाता है। होमर ने यह जानकारी दी थी कि अनेक रोगों के लिए गंधक का उपयोग लाभकरी सिद्ध हो सकता है। 1939 में डा पाल मुलर ने एक शक्तिशाली कीटनाशक ओषधि—डी०डी०टी० की खोज कर इस क्षेत्र में तहलका मचा दिया था। इसके तत्काल बाद तो अन्य कई जीवनाशियों की खोज हो चुकी है। सन 1970 तक ऐसे जीव नाशियों की सख्या 32000 थी और अन्य 1000 रसायन यौगिक थे जिनका उपयोग केवल सयुक्त राज्य अमेरिका में ही किया जाता था। आज अमरिका में उच्च सफल कृषि एक उद्योग है जिसमे लगभग 65000 व्यापारिक रसायन प्रतिवर्ष पर्यावरण में प्रवेश कर रहे हैं। इसमें कुछ कारसिनोजनों की सम्भावनाएँ हो सकती है।

भारत मे जीवनाशियों का उपयोग 1948 से होने लगा है जिसका मूल उद्देश्य देश मे मलेरिया रोग का उन्मूलन था। डी०डी०टी०तथा बी०एच०सी० के उपयोग से मलरिया मे भारी कमी आयी और उसकी सफलता के कारण यह ओषधिया 1950 से भारत में ही बनायी जाने लगी। हरित क्रांति के शुभारम्भ से नये प्रकार के बीजो को खरपतवारो से बचाने की आवश्यकता भी अनुभव की जाने लगी और इसके पश्चात तो जीवनाशियों का उपयोग निरन्तर बढ़ता ही गया। वर्तमान में 46 जीवनाशियों का विभिन्न फैक्ट्रियों मे देश मे ही निर्माण किया जाने लगा है।

सन् 1966 तक विश्व का जीवनाशियों का उपभोग 25030000 लाख टन था जो 1980 तक 41550000 लाख टन हो गया जिसकी वार्षिक वृद्धि दर 4 प्रतिशत आकी गई है। अब भारत में ही 116, 281 टन जीव-नाशियों का निर्माण हो रहा है जिनमे 93 689 टन कीटनाशक, 13084 टन कवकनाशी, 1394 टन मूषकनाशी, 5736 टन खरपतवारनाशी व 2378 टन फ्यूमीगटस है। विश्व अनुपात मे यह 19 प्रतिशत है। इन जीव-नाशियों की आर्थिकी को समझना अत्यन्त आवश्यक है। विकासशील देशों में साधारण किसान इन रसायनों का उपयोग व खर्चा बर्दाश्त नहीं कर सकता। अमेरिका जसे विकसित राष्ट्र में—एक हेक्टेयर भूमि में एक किलो-

ग्राम जीवनाशी के अनुसार 218, 450 किलो कैलोरी की आवश्यकता होती है जो 3 8 अरब लीटर पट्रोल के समकक्ष हैं क्योकि 80 प्रतिशत जीवनाशी पेट्रोलियम उद्याग पर ही आधारित है।

वर्तमान मे भारत मे ही 123 प्रकार के जीवनाशियो का उपयोग सरकार द्वारा किये जाने के आदेश प्रसारित किये हुए हैं, जिसका उपयोग 1420 लाख हक्टेयर भूमि के लिये किया जाता है। सन् 1970 म यह खपत 19,000 टन से बढकर 1985 मे 98216 टन हो गयी और अनुमान है 1990 तक यह खपत 119172 टन हो जायेगी। सभी जीवनाशियो मे कीटनाशको की खपत 80 प्रतिशत, 10% कवकनाशी तथा 7% खरपतवारनाशी व अन्य 3 प्रतिशत है। भारत मे लगभग 5000 प्रजातिया जीवाणुओ तथा कवको की हैं इस कारण जीवनाशियो का होना बहुत जरूरी है। इनकी 1000 प्रजातिया भारत मे हमेशा से खतरा बनी हुई है व 4000 कीट प्रजातिया फसलो को भारी नुक्सान पहुचाती हैं। अटवाल (1984) के



अनुसार भारत मे सन् 1983 मे 518 अरब रुपये मूल्य का नुकसान हुआ

था। यदि वार्षिक हानि का अन्य प्राणियों के साथ मिलाकर आकलन किया जाय तो यह नुकसान कई खरब रुपया म पहुचगा।

सन् 1930 म जीवनाशियो की खोज के पश्चात् इन रसायनो का उपयोग निरन्तर बढा है और मानव समाज मे रोगो व खरपतवारो क विरुद्ध रसायनो के युद्ध को एक मुहिम-सी छिड गई है। सन् 1962 म महिला रश्वेल कासन द्वारा लिखित पुस्तक 'साइलेंट स्प्रिंग' म इस दिशा म हुई जन-जागरण की सम्भावनाओ पर प्रकाश डाला गया है। यह नितात सच भी है कि जीवनाशी सम्पूण विश्व म तीव्रता से प्रयोग म आ रहे हैं तथा जल वायु, मृदा के साथ प्रवाहित होकर दोबारा प्रसारित होते हैं। यह भी देखा गया है कि यह अ य विषैले पदार्थो म परिवर्तित होकर मत्स्य, व यजीवो तथा वनस्पति को भारी नुकसान पहुचा रहे है।

सन 1962 म ही जब डी०डी०टी० को फसलो के अनेक रोगो के लिये अचूक व मलेरिया के विरुद्ध एक प्रभावशाली प्रतिरोधक माना जाता था तभी इस अमेरिकी महिला शोधकर्त्ता रश्वल कासन ने चेतावनी दे दी थी कि इस औषधि का छोटा-सा कण भी यकृत को भारी हानि पहुचा सकता है और कासन की यह चेतावनी अक्षरस सही भी निकली है। पश्चिमी जगत मे डी०डी०टी० पर पूण प्रतिब ध की घोषणा की जा चुकी है पर तु भारत मे आज भी उसका उपयोग धडल्ले के साथ किया जा रहा है। इन पीडक-नाशको से होने वाले वातावरणीय दूषणो तथा अस तुलन पर विश्व भर म अनक परीक्षण किये जा चुके हैं और तत्सम्ब धी अनेक आकड भी उपल ध है यथा-बेरी (1963), रुड (1964), गोल्डमन (1967), मूरे (1967), बिल्सन (1968), व ब्रेसलर (1968)। परिस्थितियो को प्रभावित करने म मनुष्य काफी चतुर रहा है परन्तु कीट भी कम नही पडते हैं। मानव म बहुत स रोगकारक जीवाणु आजकल ऐसे उत्पन्न हो गय हैं जो प्रतिजविका (Antibiotics) को ही अपना भोजन बना लेत हैं और अब इन औषधियो का असर ही जाता रहा है। रोगकारी कवक तथा कीट वग भी इसी प्रकार समय पाकर विष प्रतिरोधी उप-जातियो म विकसित हो गये हैं (बोवल 1972) कि उन पर डी०डी०टी० आदि का भी असर नही होता है। अब तक करीब दो सौ से अधिक कीटो की प्रजातियो इन रसायनो के प्रति प्रतिरोधिता पदा कर चुकी हैं। अब यह अनुभव होने लगा है कि पीडकनाशियो के निर तर उपयोग से मानव एक हारी हुई लडाई लड रहा है।

आज विश्व के बाजारो म दो प्रकार के पीडकनाशको की बिक्री होती है -

(i) अकाबनिक पीडकनाशक

(ii) काबनिक पीडकनाशक।

(i) अकार्बनिक पीडकनाशक —इसमे मूलत आरसेनिकयुक्त पदार्थ आते हैं जो कि कई दशकों तक व्यापक रूप मे इस्तेमाल होते रहे थे और यह भूमि म अत्यन्त मन्द गति से विघटित होते हैं अर्थात् ये दीर्घस्थायी पदार्थ अनेक वर्षों तक अपना प्रभाव रखते हैं और हानि पहुचाते रहते है। इनका निरन्तर उपयोग, भूमि मे इनकी मात्रा को बढ़ाने म सहायक है और यह पादपो को आने वाले कई वर्षों तक हानि पहुचाता रहता है। जब इन रसायनो की क्षमता 75 पी पी एम से अधिक हो जाती है तो इनका जहरीलापन प्रकट होने लगता हैं। एक वर्ष के लगातार छिडकाव स इनकी क्षमता 1000 पी पी एम तक हो सकती है। यह रसायन उपापचय सब धी क्रियाओं व श्वसन क्रिया म विकृति ला देते हैं।

(ii) कार्बनिक पीडकनाशक —सन् 1940 से पूर्व तक अकार्बनिक पीडकनाशकों का उपयोग होता रहा था परन्तु बाद म कार्बनिक रसायनो का प्रयोग निरन्तर बढ़ता रहा है और पर्यावरण भी उसी के अनुरूप विषाक्त होता जा रहा है। इनके दो कुल देखने को मिलते हैं —

(अ) कार्बनिक फास्फेट (ब) क्लोरीनेटेड हाइड्रोकार्ब स

(अ) कार्बनिक फास्फेट —इन यौगिको मे पैराथियन, मैलाथियन, क्लोरथियन व काडड्रिन आदि प्रमुख हैं। यह विष कोलीनस्टरेज एजाइम जो कि तत्रिका आवेगो के सचारण के लिये आवश्यक है, उसके निरोधक हैं। ये मुख्य रूप से सूत्र-युग्मन की साधारण क्रिया को बन्द कर देते हैं। ये सभी रसायन गभीर रूप से प्रभावी विषो की श्रेणी म रखे जाते हैं और स्नायु-तन्त्र का कुप्रभावित करते हैं। विषाक्तता की दृष्टि से पैराथियम मानव के लिये सबसे अधिक घातक सिद्ध हुआ है। कार्बनिक फास्फेट वातावरण व जैविक उत्तको म तुलनात्मक रूप से कम टिकाऊ होते है और जिन प्रदेशो म छिडके जाते है वहा पर ये लक्ष्य किये गये नाशक जीवो के साथ अन्य प्राणियो की विस्तृत मृत्यु का कारण बनते हैं। इनके विशिष्ट लक्षण यह हैं कि ये वातावरण से दूर तक प्रसारित नही हो पाते और ना ही वातावरण व उत्तको मे लम्बी अवधि तक सचित ही हो पाते है। इस प्रकार ये क्लोरीनेटेड हाइड्रोकार्ब स की अपेक्षा कम घातक हैं।

(ब) क्लोरीनेटेड हाइड्रोकार्ब स —इस कुल म डी०डी०टी०, क्लोरडिन, डाइल्डिन, एण्ड्रिन, एल्ड्रिन, हेप्टाक्लोर, टोक्साफीन, लिनडेन, मायूरान, साइमेजिन, डायोक्सिन, पिक्लोरैम, कैकोडायलिक अम्ल व बी एच सी इत्यादि सम्मिलित हैं। तुलना म यह रसायन अपने रासायनिक स्थायित्व के साथ विभिन्न वर्गों के प्राणियो के बडे समूहो-समुदायो पर इन विषो की गहरी छाप रहती है। यह वातावरण मे सचित होते रहते हैं और आहार

शृंखलाओं के सहारे जीवमण्डल मे वायु तथा जल के माध्यम से भ्रमण करते हैं और अन्त मे मनुष्य के भोजन तक मे पाये जाते हैं।

चार वर्ष पूर्व तमिलनाडू के कृषि विश्वविद्यालय, कोयम्बटूर की अध्ययन रिपोर्ट म यह रहस्योद्घाटन किया गया कि सम्पूर्ण राज्य म गायो व माताओ के दूध के नमूनो म बी एच सी के अवशेष पाये गये थे। दूसरी ओर बाजारो म उपलब्ध सब्जियो म जो ताजगी नजर आती है वह वास्तव मे उन पर डी डी टी एव बी एच सी के प्रभाव के कारण होती है। कहना न होगा कि सब्जी उत्पादक इस मामले म सबसे बडे अपराधी हैं।

वुस्टर (1969) ने भी परीक्षणो के पश्चात् इसी प्रकार के रहस्योद्घाटन किये हैं। यह विष रसायन वायु तथा जल की धाराओ के साथ समस्त वातावरण मे प्रकीर्ण हो जाते हैं तथा य क्लोरीन युक्त हाइड्रोकार्बन्स विश्व के अनेक भागो जीवीय-समुदायो का तेजी से निम्नीकरण कर रहे हैं। यह भी सिद्ध हो चुका है कि यह रसायन मूल्यवान जलीय खाद्य प्राणियो को डिंभक अवस्थाओ म नष्ट कर देते हैं। यह सागरीय पादप प्लवको के प्रकाश-सश्लेषण को भी सदमित करते हैं जिसके कारण वायुमण्डल के गसीय सन्तुलन पर गम्भीर प्रभाव पडता है।

पी कान (1967) तथा हिक्की व एण्डरसन (1968) ने भी इन रसायनो के विषय मे कुछ इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। यह कीटनाशक पक्षियो म अण्डो के खोलो के निर्माण म बाधा डालते हैं तथा यह प्रभाव स्टीरायड हारमोन के भग होने से उत्पन्न होता है और अत म भगुर अण्डो की उत्पत्ति होती है जो चूजो के अण्डज उत्पादन से पूर्व ही टूट जाते हैं।

मनुष्य के हार्मोन सन्तुलन पर तो इन रसायनो का प्रत्यक्ष प्रभाव देखने को नही मिला किन्तु मानव ऊत्तको मे उनकी सान्द्रता का स्तर इतना ऊचा हो जाता है कि भविष्य म कसर व नाशक उत्परिवर्तन अवश्य ही सामने आ सकते हैं।

घासनाशक रसायनो के दो समूहो पर भी अनुसन्धान व परीक्षण किये गये हैं। पहले समूह जिनम मोनूरान तथा साइमेजिन सम्मिलित हैं, प्रकाश-सश्लेषण की क्रिया म रुकावट डालते हैं और ऊर्जा के अभाव म पादपो के लिये मृत्यु कारक बनते हैं। दूसरा समूह 2 4 डाइक्लोरो फिनाक्सी एसिटिक अम्ल तथा 2 4,5 ट्राइक्लोरो फिनाक्सी एसिटिक अम्लो का होता है जो सम्भवत् पादपो का निष्पत्रण (defoliation) कर देते हैं। एक अन्य रसायन 2 3,6,7 टट्राक्लोरो डाइबेंजो-पी-डायोक्सिन जिसे प्रचलित रूप म डायोक्सिन भी कहते हैं यह रसायन बहुत की न्यून मात्रा अथवा सान्द्रताओ पर

भी गर्भ-विरूपणकारी (foetus deforming) होता है। यह भी देखा गया है कि सामान्यतः कारखानों मे 2,4 5 ट्राइक्लोर फिनाक्सी ऐसिटिक अम्ल बनाने वाले मजदूरों की त्वचा मे पिटिकाकार (acneform) परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगते है। पिक्लोरैम भी एक ऐसा ही रसायन है जो शाकनाशी मृदा मे दीर्घकाल तक स्थायी रूप मे बना रहता है।

श्री जगजीतसिंह न० भा० टा० ने 1987 म अपने प्रकाशित लेख मे पीडकनाशक रसायनों को लेकर अनेक घटनाओं का राष्ट्रीय परिपक्ष मे उल्लेख किया है जो निम्न प्रकार है —

(1) गत तीन दशको मे भारत मे कृषि क्षेत्र मे प्रगति के साथ कीटनाशक औषधियों की खपत बहुत बढ गई है। आज वह 2300 टन सालाना से बढकर 66 000 टन सालाना हो गयी है। यह कहा जाने लगा है कि भारत म कीटनाशकों की खपत अमेरिका व यूरोप की तुलना म अधिक है। भारत मे मानव उपयोगी वसाओं मे डी० डी० टी० का स्तर सबसे अधिक है। इसका सभावित कारण यह हो सकता है कि खाद्यों के भण्डारण के समय चूहो व कीटो से उनकी रक्षा के लिय काफी अधिक डी० डी० टी० का छिड़काव कर दिया जाता है क्योंकि अनाज को बचाने का सबसे अच्छा साधन इसे ही माना गया होगा।

(2) कीटनाशक दवाओं से विषाक्तता क कुल मामलो मे से एक तिहाई मामले केवल भारत मे ही होते हैं और किसान ही इसका सबसे बडा शिकार हुआ है। भारत के दो कपास उगाने वाले राज्यो मे किसान व उसके बच्चो म अधापन, विकृतागता, कैंसर तथा यकृत रोगो का पता चला है। आन्ध्र-प्रदेश सरकार ने इसे स्वीकार भी किया है कि सन् 1985 मे गूटूर तथा प्रकासम जिलो के 10 कृषि ग्रामो क प्रत्येक समूह मे कीटनाशकों की विषाक्तता के 75 मामले सामने आये हैं।

(3) भारत म 400 से अधिक कीटनाशक उत्पादन करने वाली फक्ट्रिया मौजूद हैं, जिसम लगभग 25 000 कामगार काय करते हैं। कानूनन इन सभी कामगारो को ओवरकोट, दस्ताने, गमबूट्स तथा क्नटोप का उपयोग करना अनिवाय है परन्तु वस्तुस्थिति इससे बिल्कुल विपरीत है। इण्डियन इन्स्टीट्यूट आफ मनजमेंट अहमदाबाद ने 1980 म इस रहस्य पर से पर्दा उठाया कि केवल 50 प्रतिशत कामगार ही सुरक्षित वस्त्रो का उपयोग कर रहे हैं 20 प्रतिशत कामगार तो काय के पश्चात अपने हाथ तक नही धोते और उनम से 80 प्रतिशत साबुन का उपयोग ही नही करते।

अहमदाबाद के ही एक अन्य संस्थान—नेशनल इन्सटिट्यूट ऑफ ऑक्युपेशनल हेल्थ द्वारा किये गये अध्ययन से पता लगा है कि पाच फार्मू -

लेशन इकाईया के 160 पुरुष कामगारो म से 73 प्रतिशत कामगारो म विषाक्तता के लक्षण विद्यमान थ । 35 प्रतिशत कामगार 'कार्डियो-वस्कूलर' और 'गस्ट्रो इन्टसटाइनल रोग के शिकार थे तथा एक ही अन्य इकाई के 40 कामगारो म 'आख की जलन' की तक्लीफ पाई गई ।

दक्षिण भारत म तिरुची नगर के कीटनाशक विशेषज्ञ का कथन है कि "फास्फोरस की 1 ग्राम मात्रा भी मितली, उवकाई, डायरिया तथा फालिज का कारण बन जाती है।"

श्रेष्ठ एव विस्तृत रूप मे ज्ञात रसायन डी डी टी केन्द्रीय तन्त्रिका सस्थान को प्रभावित कर कम्पन तथा ऐंठन उत्पन्न कर देता है । यह वसीय उत्तको म सचित हो जाता है तथा जब प्राणी द्वारा वसा निचल भाग म प्रयुक्त कर लिये जाते है तो डी डी टी रक्तवाहिनियो म आ जाता है और घातक प्रभाव डालता है । जलीय व स्थलीय दोनो ही वर्गो के प्राणी क्लोरीनेटेडहाइड्रो-कार्बनस के प्रति अत्यधिक सवेदनशील होते हैं । अकशेरुकी व कशेरुकी दोनो ही इन विषले रसायनो स प्रभावित होत हैं । मत्स्य व पक्षी कुछ अधिक प्रभावित होग जबकि स्तनधारी कम मात्रा म होत हैं । जैसाकि कुछ निश्चित रेडियो समस्थानिक क्षय होकर अन्य रेडियो समस्थानिको को बनात हैं उसी प्रकार कुछ क्लेरीनेटेड हाइड्रो कार्बन्स भी बनाते है यथा—एल्ड्रिन→ डाइल्ड्रिन, डी डी टी→ डी डी डी→ डी डी ई । वातावरण से यह पीडकनाशक जीवित झिल्लियो की सहायता से सक्रिय रूप म प्राप्त कर लिये जाते हैं या फिर पाचन नलिकाओ द्वारा ग्रहण कर लिये जात हैं । वातावरण से ही प्राणियो म प्रवेश कर लेने पर इनका सान्द्रता अनुपात कई हजार गुना बढ जाता है और इनका विष समान प्रभावशीलता के आधार पर शरीर का भाग बन जाता है । रेडियो समस्थानिको के समान ये भी खाद्य शृखलाओ के सहारे स्थानान्तरित होते है । जानवरो के उत्तको म इनका सचय कुछ कारको से प्रभावित होता है जसे यौगिक स्थायित्व, आहार शृखलाओ के आपसी सम्बध, प्राणियो मे टन ओवर का समय तथा उनके द्वारा उपापचयिक क्रियाएँ । साथ ही वायु तथा जल की सहायता स य दूर दूर तक भी पहुचा दिये जाते हैं ।

भारत मे डी डी टी के उपयोग से मलेरिया रोग से मरने वालो की सख्या 7 50,000 वार्षिक से घटकर केवल कुछ हजार रह गई है । श्रीलका म भी मलेरिया स मरने वालो की सख्या जो 1946 म 2 8 लाख थी 1961 मे घटकर केवल कुछ सौ ही रह गई । इतनी आश्चयजनक सफलता के बावजूद डी डी टी विशुद्ध वरदान नही रही और ससार के कुछ देशो ने तो इनके उपयोग पर प्रतिबध लगा दिया है । डी डी टी अपने स्थायित्व व अघुलन-

शीलता के कारण उपयोग किये जाने के 10-15 वर्षों तक भी वातावरण तथा मृदा मे समाहित रहती है। अपने वसाप्रिय गुण के कारण यह वसा उत्तकों म सग्रहित रहती है और आहार शृ खला के अतिम पद तक अपना भाग बनाय रखती है। इस प्रकार डी डी, टी ने एक ओर तो इतन लागो को जीवनदान दिया है जितना अभी तक सभी चमत्कारी औषधिया ने सम्मिलित होकर भी नही किया होगा। दूसरी ओर यह मानव, मुर्गिया व अन्य प्राणियो के लिये प्राण घातक भी सिद्ध हो रही है। इसका अनियत्रित बिखराव तथा जविक प्रभाव स्पष्टतया विदित हो चुका है और निश्चित हो गया है कि डी डी टी सम्पूर्ण जीव मण्डल म उत्तरी ध्रुव स दक्षिणी ध्रुव तक बिखरा पडा है तथा कीटनाशक विष पर्यावरण का एक सामान्य हिस्सा बन गया है। वायुमण्डल म पाउडर के रूप म छिडकाव स यह प्रशान्त महासागर का वायु मे मुख्य धूल के रूप मे भी पाया जाता है और वाष्पित होकर वायु, वर्षा के जल, बर्फ और यहा तक की दक्षिणी ध्रुव पर निवासित पेंगुइनो की वसा का हिस्सा बन गई है। (टेटन व रुजिका 1969)।

राबट एल रुड (1964) ने भी इसी भाति की घटना का उल्लेख किया है। अमेरिका मे जब एक विशिष्ट जाति की डक्युक्त चिंटी को मारन हतु 2 पौंड डायल्ड्रिन या हेप्टोक्लोर प्रति एकड के हिसाब से 25 लाख एकड क्षेत्र मे छिडकी गई तो कुछ समय के उपरान्त मछलिया, मुर्गे मुर्गिया व जगली तथा पालतू पशु बडी सख्या म मरने लग किन्तु चिटिया ज्यो की त्यो जीवित रही। कहने का अथ केवल यही है कि इन सभी ज्ञात पीडकनाशक रसायनो के घातक परिणाम ही समस्त मानव जाति के समक्ष आय हैं। अब अपेक्षा की जाती है कि इस भयकर प्रदूषण से किस प्रकार बचा जा सकता है तथा पारितन्त्र अथवा विश्व पर्यावरण की अखण्डता व सन्तुलन को कायम रखा जा सकता है। इन विषम परिस्थितिया मे नाशक जीवो पर नियन्त्रण का आधार क्या हो, एक महत्वपूर्ण प्रश्न है?

जविक नियन्त्रण (Biological control)

सभी प्रकार के जीवधारिया मत्स्य पक्षी स्तनधारी व वनस्पति के उत्तको म पीडकनाशका, कीटनाशका व शाकनाशको आदि की उपस्थिति के आधार पर यह प्राय सिद्ध है कि यही उनकी मृत्यु का कारण भी थे। अब यह भी ज्ञात हो चुका है जीवनाशियो के निरन्तर उपयोग मे मानव पर्यावरण विक्षिप्त हुआ है तथा अनेक अहितकर प्रभाव भी देखे गय हैं जस —

1 उन जीवो की मृत्यु हो जाना, जिन्हे मारना नही था तथा जीवनाशक का बचा रहना।

2 भाजन-शृ खलाओ मे जीवनाशको का सग्रह व सान्द्रता की निरन्तर वृद्धि।

3 खरपतवारो म जीवनाशियो के प्रति निरोधक्ता विकसित होना।
4 प्रजनन क्षमता म यूनता था जाना।
5 जलीय वातावरण पर कुप्रभाव।
6 वनस्पति पर कुप्रभाव।
7 विष का उत्पन्न होना।
8 वायु तथा जल के माध्यम स जीवनाशको का विश्वव्यापी प्रकीणन।

केवल डी डी टी के उपयोग के कारण अमरिका म वाल्डईगल, भूरे पेलिकान तथा पेरीग्राइन फाल्कन की 1960 70 के बीच भारी कमी हो गयी थी। वनस्पति तथा ज तु दोनो के हो शरीरो मे जीवनाशको का भारी जमाव था। प्रयोग द्वारा यह निष्कर्ष निकलता है कि मत्स्य जल के द्वारा 0 265 पी पी टी, डी डी टी का अवशोषण करते हैं और जि ह 1 000 000 की सा द्रता म उनके शरीर से प्रयुक्त किया जा सकता है। यह भी अनुमान है कि इन रसायना का 'जैविक सग्रहण' सरल गणितीय आधार पर नही होकर रेखागणितीय आधार पर हाता है। यथा —जब सग्रहण की प्रक्रिया होती है तो वह चारो दिशाओ से ही होती है। कहने का आशय यह है कि पादप व सब्जिया जिनका हम उपयोग करते है दूषित जल म पाय जाने वाले मत्स्य जल जिसमे लीच्छ रसायन घुले रहत हैं, वायु जिसमे हम श्वास लेते हैं तथा मृदा जिसका हमारा ज म व मत्यु का नाता है, सभी इन रसायनो से प्रदूषित हैं।

आज नये-नये पीडकनाशक व कीटनाशक रसायनो की खोज के परिणाम-स्वरूप अनेक ओझल समस्याएँ उठ खडी हुई है। इन रसायनो का हवाई छिडकाव किया जाता है जिस पर भारी द्रव वहन करना पडता है तथा यह केवल जीवनाशका को ही नष्ट नही करत साथ ही उपयोगी जातियो को भी समाप्त कर देते हैं। अनेक जातिया इसके प्रयोग स सवेदनशील भी वन गई हैं। इसलिये अब यह नितात आवश्यक हो गया है कि समस्या के समाधान के लिये 'प्राकृतिक निय त्रण विधिया अर्थात जविक निय त्रण का ही प्रयोग किया जाय। जविक निय त्रण के अ तगत मानव द्वारा जावनाशका स वचने क लिय उनके प्राकृतिक शत्रुओ का ही अपनाना होता है जो या तो नाशको को दवा देते हैं या उ हे नष्ट कर देत है। वसे जा जविक निय त्रणो क अनक सम्भावी तरीक है पर इनम दो हा प्रमुख हैं।

(ı) कोटनाशिया पर निय त्रण तथा
(ıı) खरपतवार या पादपनाशिया पर निय त्रण

जविक निय त्रण म आक्रमणकारी शत्रु कोट वग से सगत हो सकता है अथवा रागकारक सूक्ष्मजीव भी हा सकता है, कशेरुकी व अकशेरुकी जा

नाशको को खा लेते है, वे भी हो सकते है। इसके लिय पाच विभिन्न विधिया का उपयोग किया जाता है —

(1) ऐसे स्थानो से जहा परजीवी व परभक्षी बडी सख्या म पाये जाते है तथा परिवधित होते हैं एकत्रित कर लिया जाता है, लाने व सग्रहण के पश्चात उ ह छोड दिया जाता ह।

(2) आतिथ्य प्रदान करन वाले काटो को भी एकत्रित कर सग्रहित कर लिया जाता है और परजीवियो तथा परभक्षिया द्वारा उन्ह मरवा दिया जाता है।

(3) परजीवियो तथा परभक्षियो को प्रयोगशालाओ मे पालना और आवश्यकता पडने पर उ ह छोड दिया जाना।

(4) परजीवी तथा परभक्षी साधारणतया रोग के कीटाणुओ के ले जाने वाले कारण हैं जो बाहर से आयात होते हैं।

(5) वध्यीकरण (Sterilization) नर तकनीक द्वारा।

☐ ☐

पर्यावरण तथा विकिरण के खतरे

मानव की तकनीकी क्षमता के विकास से रेडियोधर्मी पदार्थों को उपयोग मे लाकर जो परमाणु ऊर्जा ताप आणविक विस्फोटों के रूप म काम म ली गयी है उस के कारण वायुमण्डल रेडियोधर्मी पदार्थों से परिपूर्ण हो गया है, और विकिरण का स्तर निरन्तर बढता जा रहा है। परमाणु ऊर्जा अथवा परमाणु विकिरण आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति मे एक दोधारी तलवार बन गई है। हजारो की सख्या मे बनाये गये परमाणु अस्त्र तथा प्रेक्षापास्त्रो ने पृथ्वी के सम्पूर्ण जीवजगत को महाविनाश के कगार पर ला खडा किया है, वही दूसरी ओर ऊर्जा विकिरण का बिजली के उत्पादन, कृषि, चिकित्सा, धातु कर्म व अ य सेवा म भी व्यापक प्रयोग किया जा रहा है। पर तु इनके साथ ही परमाणु विकिरण के अनेक खतरे भी सामने उपस्थित है। इसीलिये वैज्ञानिक, दार्शनिक लेखक आदि परमाणु ऊर्जा साधना पर पूर्ण प्रतिब ध लगाने की माग रखत आय हैं। सही अर्थो म देखा जाय तो बिजली उत्पन्न करने वाले परमाणु रिएक्टर वास्तव मे परमाणु अस्त्र तो नही है पर तु उनके साथ भी खतरे तो अवश्य ही जुडे हुए हैं। गत तीन दशको म रिएक्टरो के कारण अनेक दुर्घटनाएँ हुई हैं।

आज मुख्य मसला परमाणु विकिरण के मानव-जीवन पर पडने वाले दूरगामी दुष्परिणामो का है। इस विकिरण से केवल परमाणु ऊर्जा के सभालने वाले लोग ही प्रभावित नही होते वरन् अनेक बेकसूर लोगो को भी भुगतना पडत हैं। परमाणु विकिरण ऊर्जा के एसे साधन हैं जो विकिरणो के रूप म होने हैं पर तु प्रकाश की भाति दिखाई नही पडत। साधारणतया अदृश्य किरणें ही विकिरण' होती हैं।

विकिरण के प्रकार —

इस शताब्दी के दूसरे दशक म रदरफोर्ड ने प्रयोगो के माध्यम स सिद्ध किया कि परमाणु नाभिक स तीन प्रकार के विकिरण होते हैं और ग्रीक वर्णमाला के प्रथम तीन अक्षरो के आधार पर इनका नामकरण α, β तथा γ किरणें किया गया है। पारिस्थितिकीय दृष्टि स यह महत्वपूर्ण आयनकारी विकिरण होत हैं। α तथा β विकिरणो म परमाणविक या अधपरमाणविक कणो की सरिताएँ होती है। जिस किसी स यह कण टकरात हैं उसी पर अपनी ऊर्जा स्थानान्तरित कर देत हैं। इस कारण इ हे कणिकामय (Corpuscular) विकिरण कहत हैं।

(अ) α (अॅल्फा) कण हिलीयम परमाणु का केन्द्रीय भाग है तथा यह तत्वो के परमाणविक परिमाणो पर असर डालते हैं। वायु मे कुछ सेंटीमीटर चलते हैं तथा कागज के द्वारा या मानव त्वचा के मत स्तरो से रोके जा सकते हैं। परन्तु इस प्रकार रोके जाने पर वे भारी परिमाण को स्थानीय आयनन सम्पन्न कर देते हैं। अॅल्फा कणो मे 2 प्रोटोन व 2 न्यूट्रोन आधारभूत कण होने के कारण, इन पर (+) विद्युत आवेश होता है। एक अॅल्फा कण मे 2 इकाई धन आवेश व 4 गुणित भार होता है अत यह शरीर मे अधिक दूरी तक प्रवेश नही कर सकते।

(ब) β (बीटा) कण—यह कण तेज चाल वाले इलैक्ट्रान होते है। यह काफी छोटे होते हैं जो वायु मे कई फुट या उत्तको म कई सेंटीमीटर दूर तक गमन कर सकते हैं, तथा अपनी ऊर्जा लम्बे रास्ते तक प्रदान कर सकते हैं। नाभिक के प्रोटोन व न्यूट्रान जब एक दूसरे मे बदलते हैं तब इन विशिष्ट इलैक्ट्रानो का जन्म होता है। परमाणु नाभिक जब अधिक उत्तेजित हो जाता है तब वह गामा किरणो का उत्सर्जन करता है। बीटा कण (—) विद्युत आवेश युक्त होता है व इन कणो का वेग प्रकाश के वेग से कुछ कम ही होता है।

(स) γ (गामा) किरणें—इनका परिमाण कणीय नही है वरन् किरणे हैं। गामा किरणें एव समस्त सम्बधित एक्स-विकिरण को विद्युत-चुम्बकीय विकिरण कहते हैं। प्रकाश की भाति इनकी तरंग-दैर्घ्य बहुत कम होती है। यह बहुत दूरियो तक गमन कर सकती है तथा द्रव्य मे सरलता के साथ चल सकती हैं और लम्बे मार्ग तक अपनी ऊर्जा मुक्त करती हैं। इनका असर किरणो की मात्रा एव ऊर्जा तथा स्रोत मे प्राणी की दूरी पर निर्भर करती है। साराश मे कहा जा सकता है कि α β व γ किरणो मे क्रमश भेदन क्षमता बढ़ती हैं परन्तु आयतन को सान्द्रता व स्थानीय हानि कम होती है।

सर्वप्रथम रेडियम के परमाणु नाभिक मे स्वत विकिरण होने का अध्ययन किया गया था इस कारण यह रेडियोधर्मी विकिरण कहलाता है। सरचनात्मक आधार पर यह दो प्रकार के होते हैं —

(1) कणीय विकिरण—α, β व न्यूट्रान किरणें, इनमे भार होता है।

(2) विद्युत चुम्बकीय विकिरण—प्रकाश किरणें, एक्स किरणें गामा किरणें व पराबैगनी किरणें।

प्रभाव आधारित विकिरणो को भी दो रूपो म देखा जाता है —

(1) आयनकारी विकिरण तथा (2) अन आयनकारी विकिरण।

पर्यावरण तथा विकिरण के खतरे

मानव की तकनीकी क्षमता के विकास से रेडियोधर्मी पदार्थों को उपयोग में लाकर जो परमाणु ऊर्जा, ताप आणविक विस्फोटों के रूप में काम में ली गयी है उस के कारण वायुमण्डल रेडियोधर्मी पदार्थों से परिपूर्ण हो गया है, और विकिरण का स्तर निरन्तर बढ़ता जा रहा है। परमाणु ऊर्जा अथवा परमाणु विकिरण आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति में एक दोधारी तलवार बन गई है। हजारों की संख्या में बनाये गये परमाणु अस्त्र तथा प्रक्षेपास्त्रों ने पृथ्वी के सम्पूर्ण जीवजगत को महाविनाश के कगार पर ला खड़ा किया है, वहीं दूसरी ओर ऊर्जा विकिरण का बिजली के उत्पादन, कृषि, चिकित्सा, धातु कर्म व अन्य क्षेत्रों में भी व्यापक प्रयोग किया जा रहा है। परन्तु इनके साथ ही परमाणु विकिरण के अनेक खतरे भी सामने उपस्थित हैं। इसीलिये वैज्ञानिक, दार्शनिक, लेखक आदि परमाणु ऊर्जा साधनों पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने की मांग रखते आये हैं। सही अर्थों में देखा जाय तो बिजली उत्पन्न करने वाले परमाणु रिएक्टर वास्तव में परमाणु अस्त्र तो नहीं है परन्तु उनके साथ भी खतरे तो अवश्य ही जुड़े हुए है। गत तीन दशकों में रिएक्टरों के कारण अनेक दुर्घटनाएँ हुई है।

आज मुख्य मसला परमाणु विकिरण के मानव-जीवन पर पड़ने वाले दूरगामी दुष्परिणामों का है। इस विकिरण से केवल परमाणु ऊर्जा के संभालने वाले लोग ही प्रभावित नहीं होते वरन अनेक बेकसूर लोगों को भी भुगतने पड़ते हैं। परमाणु विकिरण ऊर्जा के ऐसे साधन हैं जो विकिरणों के रूप में होते हैं परन्तु प्रकाश की भांति दिखाई नहीं पड़ते। साधारणतया अदृश्य किरणें ही विकिरण होती हैं।

विकिरण के प्रकार —

इस शताब्दी के दूसरे दशक में रदरफोर्ड ने प्रयोगों के माध्यम से सिद्ध किया कि परमाणु नाभिक से तीन प्रकार के विकिरण होते हैं और ग्रीक वर्णमाला के प्रथम तीन अक्षरों के आधार पर इनका नामकरण α, β तथा γ किरणें किया गया है। पारिस्थितिकीय दृष्टि से यह महत्वपूर्ण आयनकारी विकिरण होते है। α तथा β विकिरणों में परमाणविक या अधोपरमाणविक कणों की सरिताएँ होती हैं। जिस किसी से यह कण टकराते हैं उसी पर अपनी ऊर्जा स्थानान्तरित कर देते हैं। इस कारण इन्हें कणिकामय (Corpuscular) विकिरण कहते हैं।

(अ) α (ॲल्फा) कण हिलीयम परमाणु का केन्द्रीय भाग है तथा यह तत्वो के परमाणविक परिमाणो पर असर डालते हैं। वायु मे कुछ सेंटीमीटर चलते हैं तथा कागज के द्वारा या मानव त्वचा के मृत स्तरो से रोके जा सकते हैं। परन्तु इस प्रकार रोके जाने पर व भारी परिमाण की स्थानीय आयनन सम्पन्न कर देते हैं। ॲल्फा कणो मे 2 प्रोटोन व 2 न्यूट्रोन आधारभूत कण होने के कारण, इन पर (+) विद्युत आवेश होता है। एक ॲल्फा कण मे 2 इकाई धन आवश व 4 गुणित भार होता है अत यह शरीर मे अधिक दूरी तक प्रवेश नही कर सकते।

(ब) β (बीटा) कण—यह कण तेज चाल वाले इलेक्ट्रान्स होते हैं। यह काफी छोटे होते हैं जो वायु मे कई फुट या उत्तको म कई सेंटीमीटर दूर तक गमन कर सकते हैं, तथा अपनी ऊर्जा लम्बे रास्ते तक प्रदान कर सकते हैं। नाभिक के प्रोटोन व न्यूट्रान जब एक दूसरे म बदलते है तब इन विशिष्ट इलक्ट्रानो का जन्म होता है। परमाणु नाभिक जब अधिक उत्तजित हो जाता है तब वह गामा किरणो का उत्सजन करता है। बीटा कण (—) विद्युत आवेश युक्त होता है व इन कणो का वेग प्रकाश के वेग से कुछ कम ही होता है।

(स) γ (गामा) किरणें—इनका परिमाण कणीय नही है वरन किरणें है। गामा किरणें एव समस्त सम्बधित एक्स-विकिरण को विद्युत-चुम्बकीय विकिरण कहते हैं। प्रकाश की भाति इनकी तरग-दैर्घ्य बहुत कम होती है। यह बहुत दूरियो तक गमन कर सकती है तथा द्रव्य म सरलता के साथ चल सकती हैं और लम्बे मार्ग तक अपनी ऊर्जा मुक्त करती हैं। इनका असर किरणो की मात्रा एव ऊर्जा तथा स्रोत म प्राणी की दूरी पर निभर करती है। साराश मे कहा जा सकता है कि α β व γ किरणो मे क्रमश भेदन क्षमता बढती हैं पर तु आयतन का सा द्रता व स्थानीय हानि कम होती है।

सवप्रथम रेडियम के परमाणु नाभिक मे स्वत विकिरण होने का अध्ययन किया गया था इस कारण यह रेडियोधर्मी विकिरण कहलाता है। सरचनात्मक आधार पर यह दो प्रकार के होते हैं —

(1) कणीय विकिरण—α, β व न्यूट्रोन किरणें, इनमे भार होता है।

(2) विद्युत चुम्बकीय विकिरण—प्रकाश किरणें, एक्स किरणें गामा किरणें व पराबगनी किरणें।

प्रभाव आधारित विकिरणो को भी दो रूपो म देखा जाता है —

(1) आयनकारी विकिरण तथा (2) अन-आयनकारी विकिरण।

आयनकारी विकिरण —

यह विकिरण प्राय शक्तिशाली होते हैं क्योकि परमाणु से टकराने पर उन्हे आयनित करने की क्षमता रखते हैं अर्थात जब आयनकारी विकिरण किसी परमाणु से टकराता है उसका बाह्य इलक्ट्रोन अपनी कक्षा से बाहर निकलकर बाहर आ जाता है और इलक्ट्रोन अभावी होने के कारण परमाणु धन आयनित हो जाता है तथा इलैक्ट्रोन ऋणात्मक कण के रूप मे अलग हो जाता है और आयन-युग्म बनाता है। इस प्रतिक्रिया को ही आयनीकरण कहते हैं। उष्मा तथा प्रकाश किरणो के प्रभाव से परमाणु आयनीकरण मे परमाणु के बाहरी इलैक्ट्रान अपनी कक्षाओ को बदलने लगते हैं, परन्तु रेडियाधर्मी विकिरण इतना शक्तिशाली होता है कि वह परमाणुओ के इलेक्ट्रोनो को उनसे पूर्णतया अलग कर देता है और तब वह परमाणु विकिरण आयन का रूप ले लेते है, साथ ही विभिन्न रासायनिक प्रतिक्रियाओ का प्रदर्शन करने लगते है। यह विकिरण वस्तुओ की रासायनिक व्यवस्था के बदलने मे समर्थ है और विकिरण मे यह आयनकारी प्रभाव नही होता। सभवत विकिरणो द्वारा जीव द्रव मे होने वाली हानिया का मुख्य कारण भी आयनीकरण ही है। यह हानि अवशोषी पदार्थों मे उत्पन्न आयन-युग्मो की सख्या का समानुपाती है। आयनकारी विकिरण मूलत पृथ्वी पर उपस्थित रेडियोधर्मी तत्वा द्वारा ही निकलते हैं तथा कुछ विकिरण अतरिक्ष द्वारा भी आते है। इसलिये तत्वा के वे समस्थानिक जिनसे आयनकारी विकिरण उत्पन्न होता है, रेडियो न्यूक्लिओसाइड्स अथवा रेडियो समस्थानिक कहलाते हैं।

आयनकारी विकिरणो की श्रेणी मे साधारणतया γ (गामा) किरणें व x-किरणो की गणना की जाती है। यह वास्तव मे विद्युत-चुम्बकीय तरगे होती हैं। x-किरणो मे न तो आवेश ही होता है और न ही भार। जब β किरणे अथवा इलक्ट्रोस युक्त धाराएँ या कैथोड किरणें किसी बाधा पर टकराती है तो इलैक्ट्रोन की गतिज ऊर्जा x किरणो मे परिवर्तित हो जाती हैं जो अत्यन्त शक्तिशाली तथा अतर्भेदी होती हैं। सन 1895 मे यह खोज जर्मन भौतिकशास्त्री रोजन ने की थी। अतर्भेदी विलक्षणता से शरीर के भीतरी अगो, विशेषकर हड्डियो के चित्र उतारने मे इनसे आसानी हो जाती है क्योंकि यह त्वचा तथा मासल भाग दोनो को सरलता से भेद सकती है परन्तु हड्डियो को नहीं। इनका तरगदैर्ध्य बहुत छोटा—0 1 एगस्ट्रॉम से 100 एगस्ट्रॉम होता है, इसलिए इनकी अतर्भेदी क्षमता भी उतनी ही बढ जाती है। इनका उपयोग चिकित्सा क्षेत्र मे एक महत्वपूर्ण उपलब्धि माना गया है।

γ (गामा) किरणें भी एक्स किरणो के समान ही होती है परन्तु अधिक शक्तिशाली हैं। इनका तरगदैर्घ्य और भी छोटा होता है (0.0001 एगस्ट्राम से 0.1 एगस्ट्रॉम तक)। स्पष्ट है कि गामा किरणें x-किरणो की तुलना मे अधिक भेदनशक्ति रखती है। इसकी उत्पत्ति परमाणु नाभिक से होती है। नाभिक की आतरिक हलचल के कारण अथवा विघटन के परिणाम-स्वरूप ही गामा किरणो का उद्गम होता है।

न्यूट्रॉन आवेशविहीन कण है जिसमे एक युनिट भार होता है यह स्वय आयनीकरण नही करते परन्तु जिस भी पदार्थ को भेदते हैं उन उत्तको म या रेडियोधर्मी पदार्थों मे रेडियोधर्मी लक्षण प्रेरित कर देते हैं। अवशोषित ऊर्जा के विशिष्ट परिमाण के लिये गामा किरणो का तीव्रगामी न्यूट्रॉन दस गुना तथा मदगति वाला न्यूट्रान पाच गुना हानि पहुचाते है।

अन्तरिक्ष किरणें—अन्तरिक्ष विकिरण साधारणतया कणिकामय व विद्युत-चुम्बकीय घटको के सम्मिश्रण होते हैं। इनकी तीव्रता जीव-मण्डल म न्यून होती है परन्तु अन्तरिक्ष यात्रा के समय वीभत्स स्वरूप प्रस्तुत करती है।

मादाम क्यूरी की पुत्री आयरीन व दामाद फ्रेडरिक को सन 1934 मे प्रथम बार जानकारी मिली कि विभिन्न तत्वो पर यदि ऐल्फा कणो की बौछार की जाय तो उनके नाभिक अस्थिर होकर नये समस्थानिक बना देते है और परमाणु विकिरण भी उत्पन्न करते हैं। एसी स्थिति मे सभी तत्वो से एक या उससे अधिक समस्थानिक तैयार करना सभव होता है। परमाणु अस्त्रो के विस्फोट मे बड पैमाने पर रेडियो-न्यूक्लि-आसाइड्स उत्पन्न होते हैं जो जल, थल तथा वायु मे प्रसारित हो जाते हैं। नाभिक विखण्डन के कारण उत्पन्न होने वाले न्यूट्रोन कण आगे भी रेडियो न्यूक्लिओसाइडस को जन्म दे सकते हैं अतएव जीव-जगत पर इनका घातक प्रभाव पड़ना निश्चित है। अन्तरिक्ष किरण भी मृदा एव जल मे उपस्थित प्राकृतिक रेडियोधर्मी पदार्थों से निकलने वाले विकिरण पृष्ठभूमिक विकिरण का निर्माण करते हैं जिनके प्रति आधुनिक जीव-जन्तु अनुकूलित है। वास्तव म आनुवशिक तरलता (Gnetic fluidity) कायम रखने के लिये जीव-जगत इन्ही पृष्ठ भूमिक विकिरणो पर निर्भर है। जीव-मण्डल के विभिन्न भागो मे यह पृष्ठ-भूमि 3-4 गुना तक परिवर्तन ला सकती है।

विकिरण मापन एव मात्रक —

विकिरण सम्बन्धी घटनाओ के अध्ययन के लिये दो प्रकार के मापन की आवश्यकता होती है —

(i) होने वाले विघटन की दृष्टि से रेडियाधर्मिक पदार्थ के परिमाण का मापना तथा (ii) अवशोषित ऊर्जा की दृष्टि स विकिरण मात्रा का मापन जो आयनन अथवा हानि पहुचाने म समर्थ हो।

रेडियोधर्मी पदार्थ के परिमाण का मात्रक क्यूरी (Curie-Ci) होता है। पदार्थ के इस परिमाण को एक क्यूरी माना गया है जिसमे प्रति सकिंड 3.7×10^{10} परमाणुओ का विखण्डन होता है। उदाहरण के रूप म रेडियम का एक ग्राम क्यूरी (Ci) होता है जिसमें प्रति सकिंड 3.7×10^{10} विकिरण निकलते हैं। एक क्यूरी म विभिन्न पदार्थों के भिन-भिन्न भार होते हैं। जबकि दृष्टि से निम्न छोटे मात्रको का प्राय प्रयोग किया जाता है यथा—

मिली क्यूरी (m Ci) $= 10^{-3}$Ci
माइक्रो क्यूरी (m Ci) $= 10^{-6}$Ci
नैनो क्यूरी (n Ci) $= 10^{-9}$Ci
पाइको क्यूरी (p Ci) $= 10^{-12}$Ci

विकिरण की मात्रा (radiation dose) के मापन का मात्रक रैड (Rad) होता है, वह मात्रा एक रैड मानी जाती है जिसम प्रति ग्राम उत्तक 100 अग ऊर्जा अवशोषित हो।

रोएन्जन (R) एक प्राचीन मात्रक है। जहा तक प्राणियो पर प्रभावो को देखा जाता है रोए जन तथा रड एक से ही होते हैं। रोएन्जन अथवा रैड कुल मात्रा के मात्रक हैं। एक इकाई समय मे प्राप्त किया गया परिमाण मात्रा दर (dose rate) कहलाता है। इस प्रकार यदि एक प्राणी 10mR (माइक्रोरोएन्जन) प्रति घण्टा प्राप्त कर रहा है तो 24 घण्टो की अवधि मे कुल मात्रा 240mR या 0.24R होगी। सन 1980 मे अन्तर्राष्ट्रीय विकिरण मापक आयोग ने नये मात्रको की पेशकश की थी जो शनै शन प्रयोग मे आ रहे हैं।

अवशोषण के मात्रक हैं— 1 ग्रे (Gray) = 100 रैड (rad)
1 सीवाट (Sievart) = 100 रम (rem)

रेडियोधर्मिता के मात्रक है —
1 बक्वरेल (Bacquerel) = 27
पाइको क्यूरी (pci)

रेडियो न्यूक्लिओसाइडस अध आयु एव ऊर्जा—

एक तत्व के अनेक समस्थानिक हो सक्ते हैं जिनम कुछ विकिरण उत्सर्जित कर सकते हैं। ऐसे समस्थानिको का रडियो- यूक्लिओसाइड या रडियो समस्थानिक (radio-isotopes) कहा जाता है। प्रत्येक रडियो यूक्लिओसाइड की एक निश्चित अभिलक्षणिक दर हाती है जो इनकी अध आयु से प्रदर्शित होती है। अपनी रेडियोधर्मिता का आधा अश खोने म एक रेडियो समस्थानिक द्वारा लिया गया समय उसको अधआयु अवधि (Half life period) कही

जाती है। केलिसयम 45 की अर्धजायु अवधि 160 दिन होती है। यह अवधि वातावरणीय कारको द्वारा प्रभावित नही हाती है। एक रेडियो समस्थानिक वा ऊर्जा विकिरण अवश्य ही भेदन क्षमता को प्रभावित करता है। जितनी ऊर्जा अधिक होगी जैव द्रव को उतना ही अधिक सम्भाव्य खतरा बना रहेगा।

रेडियो न्यूक्लिओसाइड्स व पारिस्थितिक महत्व—

पारिस्थितिक दृष्टि स रेडियो समस्थानिको मे प्राय 0 1 से 5 0 mev के बीच ऊर्जा होती है, उन्हे निम्न तीन समूहो मे वर्गीकृत किया जाता है —

(1) प्राकृतिक रूप म पाये जाने वाले रेडियो न्यूक्लिओसाइड्स।
(2) उपापचयी महत्व के तत्वा के समस्थानिक।
(3) यूरेनियम जैसे तत्वो के विखण्डन से उत्पन्न समस्थानिक।

उपरोक्त मे तीसरा समूह ही सर्वाधिक विध्वसकारी सिद्ध होता है क्योकि नाभिकीय विस्फोट मे तथा नियत्रित नाभिकीय क्रियाओ मे इन्ही विखण्डन समस्थानिको का भारी परिमाण मे निर्माण होता हैं। यह न तो उपापचनिक महत्व के तत्वो के समस्थानिक होते हैं और न ही जीवद्रव क आवश्यक घटक ही। यह आसानी के साथ जीव भू रासायनिक चक्रा मे प्रवेश कर जाते हैं तथा आहार-शृ खलाओ मे सांद्रित हो जाते हैं। अनेक विखण्डन समस्थानिको का अपक्षय होता है और सतति समस्थानिक बन जात हैं। यह अधिक शक्तिशाली तथा विध्वसकारी होत हैं। स्ट्रांशियम व सीजीयम इसके मूल उदाहरण हैं जो भोजन शृ खलाओ म घर कर जाते है।

विकिरण सवेदनशीलता—

अब यह सर्वविदित हो चुका है कि कोई भी घटक-जीव का अग अथवा सम्पूर्ण जाव अथवा पूर्ण समष्टि जो तेज गति से वृद्धि कर रही है, निम्नस्तर के विकिरणो से प्रभावित हो सकती है तथा निम्नस्तर की पुरानी मात्राओ को मापना बहुत कठिन काय हैं क्योकि इनके कारण लम्बी अवधि के आनुवशिक एव वाह्य-प्रभाव दृष्टिगत हाते हैं। स्पेरो एव ईवास (1961) ने सिद्ध कर दिया है कि उच्च वर्गीय पादपो की सवेदनशीलता कोशिका के द्रव-गुणसूत्रा अथवा डी एन ए की रेडियाधर्मी आयतन की सीधी ही समानुपाती है परन्तु उच्च वर्गीय जन्तु ऐसा कोई सीधा सम्बन्ध कोशिका आकार तथा सवेदनशीलता मे नही बनता। परन्तु विशिष्ट अगो पर तीक्ष्ण मात्राओ का प्रभाव अधिक घातक होता है। स्तनी समुदाय निम्न मात्राओ के प्रति अधिक सवेदनशील होता है क्योकि रक्त उत्तक अस्थि-मज्जा म बहुत तीव्र गति से विभाजन करत हैं।

यह सच है कि पष्ठ-भूमिक विकिरण मात्राओ के प्रति जीव म लगाव उत्पन्न हो जाता है और ऐसे विकिरण के तीन मुख्य स्रोत हैं—(i) अन्तरिक्ष किरणें (ii) जविक तन्तुओ मे पोटेशियम-40 तथा (iii) बाह्य विकिरण जो भूमि व जल मे रेडियम विखण्डन से आते ह। यह भी सही है कि वर्गिकी की दृष्टि से, विभिन्न समूहा की विकिरण सवेदनशीलता के लिय काइ सामान्य नियम का प्रतिपादन नही किया जा सकता, फिर भी इतना तो अवश्य है कि स्तनपायी सबसे अधिक विकिरण सवदनशील तथा सूक्ष्म प्राणी सबस अधिक प्रतिरोधी होते हैं। सभवत् इसी बात को देखकर लुई (1958) ने प्रस्तुत किया कि "यदि मानव रेडियो जैविक आधार पर अपनी सुरक्षा कर लेत है ता कुछ हर-फेर के साथ शेष प्रकृति स्वय की सुरक्षा कर लेगी। भूमि, सागर व अन्य रेडियोधर्मी प्रदूषण, जहा मानव वास्तव म नही पहुचा है उनका मानवीय जीव सहायक सस्थान पर कोई प्रभाव नही हुआ है।

रेडियोधर्मी अवपात (Radio active fallout)

परमाणु विस्फोटो के बाद भूमि पर गिरनेवाली राख अथवा परमाणविक धूल रेडियोधर्मिक अवपात कहलाता है। अवपात मुख्यत परमाणविक अस्त्रो के प्रकार पर निभर करता है जो दो प्रकार के होते हैं—(1) विखण्डन बम तथा (2) सलयन बम।

विखण्डन बम (fission bombs) —इनमे यूरेनियम तथा प्लूटोनियम जैसे भारी तत्वो का विभाजन होता है फलत ऊर्जा एव विखण्डन उत्पाद मुक्त होते हैं और वातावरण म फेक दिय जात है। यह काय मर्टिन (1944) के अनुसार निम्न प्रकार प्रस्तुत किया गया है —

जब यूरनियम सूईया म धीमी गति से चलन वाले न्यूट्रोन को प्रवाहित किया जाता है तो यूरेनियम परमाणु विखण्डन कर बेरियम व क्रिप्टान परमाणु बनाते हैं साथ ही प्रत्यक परमाणु विखण्डन के साथ अतिरिक्त न्युटान व 200 mev ऊर्जा उत्पन्न होती है। यह क्रिया शृखलाबद्ध क्रम म चलती है।

2 सलयन बम (fusion bombs) इनम हाइड्रोजन तत्व के समस्थानिक ड्यूटीरीयम जैसे हल्के तत्वा के सलयन से भारी तत्व यथा हिलीयम तत्व बनता है और ऊर्जा एव न्युट्रा म मुक्त होत हैं। सलयन की क्रिया को आरम्भ करने के लिये विखण्डन क्रिया का ही उपयोग किया जाता है क्योकि सलयन बमा में अत्यन्त उच्च तापमान की आवश्यकता हाती है। मामा य तथा सलयन बम अथवा तापनाभिकीय अस्त्र कम विखण्डन उत्पाद और अधिक न्यूट्रोन्स उत्पन्न करत हैं। ग्लस्टान (1957) क अनुसार नाभिकीय

अस्त्रों की 10 प्रतिशत ऊर्जा अपशिष्ट नाभिकीय विकिरणों में निहित होती है जिसके कुछ अंश का जीव-मण्डल में विस्तृत प्रकीर्णन हो जाता है। तत्पश्चात् यह रेडियो न्यूक्लिओसाइड्स लोहे, सीसे, सिलिका, धूल तथा जो कुछ भी समीप में स्थित होता है, उससे संयोग कर लेते हैं और अपेक्षाकृत अविलयशील कणों का निर्माण कर देते हैं। इन कणों का आकार अलग-अलग होता है। छोटे कण पान्प-पत्तियों के साथ चिपक जाते हैं और पत्तियों में विकिरण जनित हानियां उत्पन्न कर देते हैं, तब इनका शाकाहारी अन्तग्रहण भी करते हैं। इस तरह के अवपात प्रत्यक्ष रूप में शाकाहारियों तथा प्राथमिक उपभोक्ताओं के पोषण स्तरों में प्रवेश कर जाते हैं।

छोटे परमाणु शस्त्रों के अवपात साधारणतया सीमित होते हैं। यह वायु के साथ सकरे रेखीय रूप में निक्षेपित होते हैं। स्ट्रांशियम 90 तथा सीजीयम 137 जैसे कुछ अत्यन्त सूक्ष्म कण विस्तृत तौर पर प्रसारित हो सकते हैं व वर्षा के साथ दूर दूर पृथ्वी पर गिर सकते हैं। इसके अतिरिक्त भी रेडियोधर्मिता का सम्पूर्ण परिणाम नाभिकीय परीक्षण के स्थान से दूरी के साथ साथ कम हो जाता है। अत्यन्त शक्तिशाली 'मैगाटन' अस्त्र द्रव्य को समताप मण्डल में भी फेंक देते हैं जिसके फलस्वरूप सभी स्थानों पर विश्वव्यापी सदूषण तथा विश्व-विस्तृत अवपात हो जाता है जिसका प्रभाव भी अनेक वर्षों तक रहता है। एक विशिष्ट क्षेत्र द्वारा प्राप्त किया गया अवपात उस क्षेत्र की वर्षा का लगभग समानुपाती होगा। इसका एक विशेष उदाहरण अमरिका से मिलता है जिसमें सन 1965 तक स्ट्रांशियम 90 का अवपात नमी लिये क्षेत्रों में 200 mCi/वर्ग मील तथा शुष्क क्षेत्र में 80 mCi/वर्ग मील पाया गया था।

सीमूर (1959) तथा पोलम्बो (1961) ने भी कहा था कि रेडियोधर्मी अवपात के उन तत्वों के अधिकतम परिणाम समुद्री जन्तुओं में स्थानान्तरित हो जाते हैं और कार्बनिक पदार्थों के साथ मिलकर जटिल सम्मिश्रण तैयार करते हैं जैसे कोबाल्ट-60 लोह-59, जस्ता 65 एवं मैंगनीज-54 प्रशान्त महासागर में विस्फोट के कारण सागरीय जन्तुओं में पहुंच गये थे। इसी प्रकार विलयशील रेडियोधर्मी अपशिष्ट स्ट्रॉशियम-90, एवं सीजीयम-137 के अधिकतम परिणाम स्थलीय पादपों व जन्तुओं में भी पाये जाते हैं। कुछ रेडियो न्यूक्लिओसाइड्स जैसे Ce-144, Pr-144, Zr-95 तथा Rh 106 विविक्त या कोलोइडों के रूप में भी सान्द्रित रहते हैं। रेडियोन्यूक्लिओसाइड्स की जो परिणाम आहार शृंखलाओं में प्रवेश करता है अन्त में मानव शरीर में भी पहुँच जाता है।

इसी प्रकार वायु द्वारा प्राप्त किये गये परिणाम पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना तथा जीव-भू-रासायनिक चक्रों की प्रकृति को भी प्रभावित करते

हैं। यह कोई भी नहीं बता सकता कि रेडियोधर्मी धूल के यह कण कितने हानिप्रद हो सकते ह यह स्पष्ट है, कि अय प्रदूषणो की भाति यह कोई वास्तव म अच्छा काय नही कर रह है।

अपशिष्टों से मुक्ति —

वायन बग तथा हेनोल्ड (1971) दोनो ही वैज्ञानिका की अभिव्यक्ति है कि नाभिकीय ससाधनो की ऊर्जा कभी समाप्त होने वाली नहीं है, परन्तु इस ऊर्जा के अत्यधिक उत्पादन से वातावरण मे उत्पन्न होने वाले दोषो के कारण उनका सीमित रखना अनिवाय है। नाभिकीय स्रोतो की इस ऊर्जा का असीमित, स्वतन्त्र व स्थायी प्रयोग करने के वातावरणीय दुष्प्रभावो को न्यूनतम करने के पर्याप्त साधन खोजने होगे क्योकि यह विध्वसकारी प्रभाव रेडियोधर्मी अपशिष्टो से तथा ताप के भारी परिमाणो के द्वारा होते हैं और ताप के कारण तापीय-प्रदूषण (thermal pollution) उत्पन्न होता है।

रेडियोधर्मी अपशिष्टों का वर्गीकरण —

यह तीन प्रकार के होते हैं —(1) उच्च स्तरीय (2) मध्य स्तरीय तथा (3) निम्न स्तरीय।

(I) उच्च स्तरीय अपशिष्ट इन अपशिष्टो को जीव-मण्डल मे कहीं भी मुक्त करने के घातक परिणाम होते हैं, इसी कारण इन्हे अन्तर्विष्ट ही रखना पडता है। इन्हे प्राय भूमिगत तालो म सग्रहीत करना होता है। परमाणु ऊर्जा के प्रयोगो का वर्जित करन के कारण सग्रह-स्थानो की भारी समस्या आ पड़ी है और अब उन्हे तालो मे सग्रहित करने के नय साधनो अथवा विकल्पा पर विचार किया जा रहा है।

(अ) द्रवो को उपयुक्त ठोस रूपो म परिवर्तित कर उन्हे भू-स्तरो मे गाडा जा सके।

(ब) शहरी लवणो की खदानो म द्रवो व ठोसो का सग्रहण किया जा सके।

उच्च स्तरीय अपशिष्टो द्वारा उत्पन्न होने वाला ताप इस समस्या को अत्यन्त जटिल बनाये हुए हैं।

(II) मध्यस्तरीय अपशिष्ट इनकी रेडियोधर्मिता इतनी उच्च होती है कि स्थानीय अन्तर्विष्टि आवश्यक हो जाती है परन्तु यह रेडियोधर्मिता इतनी थोडी होती है कि उच्च स्तरीय व दीघ आयु वाले घटको का अलग करना एव शेष आयतन के साथ निम्न स्तरीय अपशिष्टो जसा व्यवहार करना सम्भव होता है।

(III) निम्न स्तरीय अपशिष्ट —यह ठोस द्रव तथा गैसें, जिनके प्रति इकाई आयतन म बहुत थोडी रेडियोधर्मिता होती है, आयतन म इतने विस्तृत

होते हैं कि इन्हे पूर्णतया अन्तर्विष्ट करना साधारण बात नही है। इसलिये इनका कुछ प्रकीर्णन वातावरण मे करना पड जाता है। यह प्रकीर्णन कुछ इस प्रकार व दूर से करना पडता है कि मुक्त हुई रेडियोधर्मिता के कारण पष्ठ-भूमि की रेडियोधर्मिता से खास वृद्धि न हो या फिर वे आहार-शृंखलाओ मे सान्द्रित न हो जाय।

प्राणियो पर विकिरण प्रभाव

जसा इस अध्याय मे पहले भी व्यक्त किया जा चुका है कि पष्ठ भूमिक विकिरण अन्तरिक्ष किरणो, सजीव कोशिकाओ मे विद्यमान पोटेशियम 40 तथा रेडियम या चट्टानो म पाये जाने वाले रेडियो न्यूक्लिओसाइडस वाह्य विकिरण के द्वारा आते हैं। प्राणी वर्ग प्राकृतिक तथा पष्ठभूमिक मात्राओ के परिणाम के प्रति अनुकूलित होते है, नाभिकीय विस्फोटो तथा नियन्त्रित नाभिकीय क्रियाओ से उनके परिणामो मे अभिवृद्धि होती है। इन प्रभावो को दो शीर्षको के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है —

(i) कायिक प्रभाव व (ii) आनुवांशिक प्रभाव।

(i) कायिक प्रभाव —इन प्रभावो को जीवो की बाल्यावस्था से मृत्यु पर्यत तक देखा जा सकता है। जन्तु उत्तको पर ऐसे कायिक प्रभावो का निम्न वर्णन किया जा रहा है —

(क) रक्त निर्माण करने वाले उत्तक —रक्त कोशिकाओ का निर्माण अस्थिमज्जा, प्लीहा व लसिकाय अंगो मे रक्तकोशिकाओ के पूर्वगामियो द्वारा होता है। यह पूर्वगामी विकिरणो के प्रति अत्यन्त सवेदनशील होते है और शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं फलस्वरूप रक्त कोशिकाओ का अभाव दृष्टिगोचर होने लगता है। यदि शरीर का केवल एक ही हिस्सा विकिरणो के प्रति अनावरित हो तो अप्रभावी उत्तको मे रक्त निर्माण करने वाली कोशिकाओ को पहले रक्त मे तथा वहां से नष्ट हुए भागो मे ले जाया जाता है जहा इसका सवर्धन होता है। अब यह नष्ट हुई कोशिकाओ का प्रतिस्थापित करती है। ऐसी परिस्थितियो मे तो विकिरण यदि शरीर के एक ही हिस्से पर अनुप्रयुक्त किये जायें तो सहनीय होगे।

विकिरण के बाद कुछ ही घण्टो मे लसीकाणु लुप्त होने लगते हैं, तत्पश्चात श्वेताणुओ की बारी आती है और वे समाप्त होने लगते है। विकिरण के 4-5 सप्ताह के पश्चात् रक्त प्लेटलेटस की सख्या म भी भारी कमी आने लगती है। इन कोशिकाओ की सख्या म कमी के कारण रक्तस्राव हो सकता है। विकिरण के 6-7 सप्ताहो के पश्चात् लाल कणिकाएं भी सख्या म कम होने लगती है जिससे अरक्तता नामक रोग हो जाता है।

(ख) त्वचा प्रभाव —विकिरणों के कारण त्वचा पतली हो जाती है क्योंकि उसके नीचे स्थित याजी-उत्तक नष्ट हो जाते हैं और रक्त वाहिनियां अवरुद्ध होने लगती हैं। इन परिवर्तनों का सामूहिक प्रभाव त्वचा का कैंसर है। त्वचा के अतिरिक्त अंग-रोम भी प्रभावित हुए बगैर नहीं रहते, यह भूरे रंग के पडने लगते हैं और अन्त में लुप्त हो जाते हैं।

(ग) प्रजनन प्रक्रिया —प्रजनन कोशिकाएँ विकिरणों के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं, यह नष्ट हो जाती हैं तथा विकिरण द्वारा स्थायी व अस्थायी में व धीय कृत (Sterlized) हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त भी जनन कोशिकाओं में उत्परिवर्तन प्रकट होने लगते है जो अगली संततियों में भेज दिये जाते हैं।

(घ) जठरान्त्र नलिका —आहार-नाल के भीतरी अस्तर भी विकिरणों के प्रति काफी संवेदनशील होते हैं जिससे आंतों की गतिशीलता विक्षुब्ध हो जाती है, स्राव भी कुप्रभावित हुए बगैर नहीं रहता और आंतों के भीतरी भागों में घाव पड जाते हैं। अनावरण के कुछ ही घंटों के पश्चात जी मिचलाना व कै होना आरम्भ हो जाता है। तत्पश्चात डायरिया निर्जलीकरण, तथा जीवाणुओं का आक्रमण आरम्भ हो जाता है।

(ङ) नेत्र प्रभाव — विकिरणों के कारण विशेषकर नेत्रों के लाल खराब हो जाते हैं। यह अपारदर्शक हो जाते हैं जिससे मोतियाबिंद जैसे रोग उत्पन्न होते हैं। कार्निया, रेटीना, व कंजक टिवा काफी मात्रा में विकिरणों को सह सकते हैं परन्तु भ्रूणों में दृष्टिपटल (retina) आसानी से प्रभावित हो जाता है जिससे अंधापन आ जाता है।

(च) तंत्रिका तंत्र प्रभाव — 10 000 रोएंटजेंस या अधिक तीव्र विकिरणों के प्रभाव से भी तंत्रिकाओं में दोष उत्पन्न हो जाते हैं जिनसे कुछ ही समय में प्राणियों की मृत्यु हो सकती है।

(छ) अस्थियां प्रभाव — विकिरण की सूक्ष्म सी मात्रा से भी दांतों व कंकाल की वृद्धि रुक सकती है। परिपक्व दांत व अस्थियां विकिरण के प्रति प्रतिरोधी होते हैं। इससे अस्थियों में विद्यमान खनिज तत्वों को भारी हानि उठानी पडती है। अस्थियों का नक्रोसिस अथवा अस्थि विभजन होने लगता है।

(ज) संवहनी तंत्र प्रभाव — उच्च विकिरणशीलता के कारण रक्त वाहिनियों के भीतर अस्तर की कोशिकाएँ मर जाती हैं और वाहिनियां टूटने लगती हैं और अवरुद्ध होने पर फट पडती है जिससे उनमें क्षीणता उत्पन्न हो जाती है।

(झ) अन्त स्त्रावी ग्रन्थि प्रभाव — प्राय सभी ग्रंथियां थोडे से विकिरण के प्रतिरोधी होती हैं और सूक्ष्म मात्राओं से भी उनमें ऐसे परिवर्तन हो जाते हैं कि उनका काय ही बन्द हो जाता है जिसका सम्पूर्ण शरीर पर घातक प्रभाव पडता है।

(ञ) वृक्क प्रभाव — यह भी विकिरणो के प्रति प्रतिरोधी अंग है परन्तु 500 से 1000 रोण्टजन्स की उच्च मात्राओ से ही इनमे क्षीणता का प्रभाव दिखाई पडता है, इनका वृक्क कार्यिकी पर घातक प्रभाव होता है।

(ट) फुप्फुस प्रभाव — यह अंग विकिरणो के प्रति काफी संवेदनशील कहे गये है। थोडी-सी ही मात्रा के कारण निमोनिया तथा अधिक विकिरण की उपस्थिति मे फुप्फुस कैंसर जैसा भयानक रोग हो जाता है।

उपरोक्त सभी प्रभाव प्राणियों को अवश्य ही मृत्यु के कगार पर ला खडा कर देते हैं। मृत्यु का प्रमुख कारण रक्त-निर्माण करने वाले उत्तकों का नष्ट होना रक्त स्राव व अरक्तता ही है। मस्तिष्क की हानि तथा घातक जीन्स भी मृत्यु के लिये उत्तरदायी होते हैं।

(ब) आनुवंशिक प्रभाव — ऐसे प्रभाव वस्तुत अगली पीढियों मे प्रकट होते हैं। इनका अध्ययन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा रहा है —

(क) जीन्स प्रभाव — आनुवंशिक द्रव्य मे विकिरण, उत्परिवर्तन उत्पन्न करने मे समर्थ है। 10 प्रतिशत आनुवंशिक उत्परिवर्तनों का कारण, प्राकृतिक विकिरण है तथा शेष कृत्रिम विकिरणो के द्वारा ही प्रेरित रहते हैं।

(ख) गुणसूत्र प्रभाव — यह स्पष्ट देखा गया है कि विकिरण गुणसूत्रों को तोड देते हैं और टूटे हुए गुणसूत्रों के अंश कुछ ही मिनटों में पुन जुड भी जाते हैं। परन्तु कभी-कभी ऐसा नही भी होता है और इस विधि मे गुणसूत्रों के कुछ खण्डों की जीन्स सहित कमी रह जाती है और आने वाली सन्ताना मे बहुत से लक्षण अदृष्य रह जाते हैं। विकिरणो के दुष्प्रभाव से गुणसूत्र चिपचिपा भी जाते हैं तथा एक गुच्छा-सा बन जाता है और कोशिका विभाजन के समय उनका अलग होना सम्भव नही बन पाता। अत विकिरण कोशिका विभाजन क्रिया को रोक देते है। यह यूक्लिक अम्लों के संश्लेषण की प्रक्रिया में भी शिथिलता ला देते हैं।

पारिस्थितिकी तन्त्र पर विकिरणो का प्रभाव

वुडवेल द्वारा 1962-1965 के मध्य किये गये प्रयोगों से पारिस्थितिकी तन्त्र स्तर पर विकिरणो के प्रभाव को सरलता के साथ समझा जा सकता है। इस प्रयोग में एक ओक-पाईन वन मे गामा उत्सर्जी रख दिया गया था जिसे प्रतिदिन 20 घन्टो तक अनावरित छोड दिया जाता था, फलस्वरूप एक

पुरानी विकिरण प्रवणता का निर्माण हो गया। इस प्रवणता का परिसर स्रोत से 10 मीटर की दूरी पर 1000 रैंडस से 140 मीटर की दूरी पर पृष्ठ भूमि विकिरण के ऊपर इतनी अधिक वद्धि तक था, जिसे मापना कठिन था। यह विकिरण 2 वर्षों तक जारी रहा। दूसरे वष इसी वन म, विकिरण प्रवणता के अनुसार पाच अणुक्षेत्र देखे जा सकत थे —

(i) मुख्य केन्द्रीय अणु क्षेत्र जिसम कोई उच्च पादप जीवित नही रहा।

(ii) सेज जो एक प्रकार की घास होती है, दूसरे अणु क्षेत्र म केवल यही जीवित रही।

(iii) अगला अणु क्षेत्र जिसे झाडी अणु क्षेत्र भी कहा जाता है, इसम सैंज घास तथा झाडिया तो जीवित रही परन्तु ओक व पाईन के वक्ष नष्ट हो गये थे।

(iv) इसके पश्चात चौथा प्रतिचालित ओकवन अणु क्षेत्र था जिसमे सज, झाडिया व अनेक ओक वक्ष तो जीवित पाय गये परन्तु पाईन वृक्ष यहा पर भी नही थे।

(v) पूण ओक-पाईन वन जिसमे कम या सदमित वद्धि अवश्य दिखाई दे रही थी लेकिन किसी भी प्रकार के पादप पूणरूप से समाप्त नही हुए थे।

इन प्रेक्षणो से सिद्ध होता है कि सैंज घास विकिरणा के प्रति सर्वाधिक प्रतिरोधी होती है तथा यह प्रतिरोध इन अनुक्रम मे कम हाता रहता है— सैंज, झाडिया, ओक व पाइन वक्ष। अतिम सदस्य विकिरणा के प्रति सर्वाधिक सवेदनशील होते हैं। इससे यह भी निष्कष निकलता है कि समुदाय-अनुक्रमण (Community succession) की प्रारम्भिक अवस्थाएँ चरम समुदाय की अपेक्षा अधिक प्रतिरोधी है तथा वक्ष चरम-समुदाय को निरूपित करत हैं। इस कारण वे विकिरणो क प्रति कम प्रतिरोधी होते है।

सजीवो की विकिरण की प्रति तुलनात्मक सवेदनशीलता आशिक रूप मे पाये जाने वाले गुण सूत्रा म विभिनता के कारण होती हैं। इसका मुख्य कारण है शाकीय समुदाय मे भूमि के ऊपर अनावरित जीवभार बहुत तुच्छ होता है और इस कारण बीजा या सुरक्षित भूमिगत भागो से अकुरण द्वारा अधिक शीघ्रता से सभल जाते है। विकिरण के प्रति विभेदक सवेदनशीलता का बडा पारिस्थितिक महत्व है। कभी कभी अनवरत अनुतरित होन से एसे अनुकूलन व समायोजन हान लगत है कि सवदनशील जातिया या स्ट्रेस या प्रजातियो के प्रारूप विलुप्त हो जाते हैं। साथ हा विकिरण प्रतिबल से समष्टि की परस्पर मुख्य प्रतिक्रियाएँ भी बदल जाती हैं।

उपयोगी विकिरण —

(1) अनुज्ञापक कुछ विकिरण अत्यन्त घातक तथा विनाशकारी होते हैं परन्तु पूर्ण सावधानी तथा नियन्त्रण बरतने पर अनेक रेडियो-समस्थानिक चिकित्सा एवं कृषि में उपयोगी होते हैं। α, β तथा γ विकिरणों का उपयोग चिकित्सा के साथ-साथ शरीर में विभिन्न तत्वों के स्थान तथा गतिविधियों का पता लगाने के लिये किया जाता है। अतः शरीर में रेडियो-समस्थानिकों को औषधि अनुनायकों के रूप में काम में लिया जा सकता है। समस्थानिकों की उपस्थिति गिगर काउन्टर द्वारा ज्ञात की जाती है जो एक ऐसा संवेदी यन्त्र है, जो बहुत ही सूक्ष्म विकिरणों के विषय में भी पता लगा देता है। जब समस्थानिकों का ट्रेसर-अनुज्ञापक के रूप में अध्ययन होता है तो इस बात का ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है कि उसकी मात्रा इतनी छोटी हो कि वह शरीर पर किसी प्रकार का प्रभाव न डाले। रेडियो आयोडीन-131 का प्रयोग थायराइड ग्रन्थि की जांच करने में तथा हृदय की गतिविधियों की जांच करने के लिये किया जाता है। रेडियो कोबाल्ट-58 का प्रयोग विटामिन B_{12} के अवशोषण, रेडियो आर्सेनिक-74 का मस्तिष्क ट्यूमर का पता लगाने तथा रेडियो सोडियम 24 का उपयोग रुधिर परिसंचरण का पता लगाने के लिये किया जाता है।

(2) औषधि — वर्तमान में अनेक रोगों के उपचार में रेडियो-समस्थानिकों का उपयोग सफलता के साथ किया जाने लगा है। कैंसर का रेडियो कोबाल्ट-60, की सहायता से इलाज किया जाता है। आयोडीन-131 निर्वाधित थायरोयड के लिये फास्फोरस-32 का रक्त में लाल कणिकाओं की अति तथा रक्त में श्वेत कणिकाओं की अति (ल्यूकेमिया) के उपचार के लिये होने लगा है। मस्तिष्क व प्रोस्ट्रेट ग्रन्थियों के लिये रेडियोगोल्ड-198 की सहायता ली जाती है।

(3) कृषि — आलू, प्याज व अन्य फलों तथा सब्जियों का विकिरण कर, बगैर शीत सग्रहण के सामान्य तापक्रम पर, रेडियो समस्थानिकों की सहायता से एक वर्ष तक सुरक्षित रखा जा सकता है। कृषि क्षेत्र में हानि पहुंचाने वाले कीडों को भी विकिरणों द्वारा बन्ध्य कर दिया जाता है जिनसे उनके वंशज ही उत्पन्न नहीं होने पाते।

आधुनिक समय में परमाणु बिजलीघरों तथा रिएक्टरों के लिये दो बुनियादी इंधनों यूरेनियम व थोरियम का उपयोग किया जाता है। रिएक्टरों के भीतर जब यूरेनियम-235 विखण्डित होता है तो परमाणु-कणों के तीव्र वेग के रूप में ऊर्जा पैदा होती है। इस ऊर्जा से भाप बनती है, जेनरेटर गति करते हैं और विद्युत उत्पादन होता है।

वातावरण मे विकिरणो का भविष्य

परमाणु शक्ति हमारे समक्ष तीन रूपो म प्रयुक्त होती है। परमाणु तथा हाइड्रोजन बम इसके विध्वसक स्वरूप हैं जबकि परमाणु ऊर्जा तथा रडियो-समस्थानिक उसके रचनात्मक आधार है। जसा विदित हो चुका है कि परमाणु बमो के विस्फोट के कारण क्षण भर म ही ताप, प्रकाश तथा विकिरण के रूप मे अपार शक्ति का विमोचन होता है और विशाल क्षत्र मे सब कुछ नष्ट हो जाता है। यूरेनियम, प्लूटोनियम आदि तत्वा के नाभिकीय विखण्डन अर्थात परमाणु शस्त्रा या आणविक रिएक्टरो मे कृत्रिम रेडिया धर्मी विकिरण उत्पन्न होते हैं तथा कृत्रिम रेडियोधर्मिता के यही नये साधन मानव जाति के लिये प्रलयकरकारी सिद्ध हो रहे है।

6 अगस्त सन् 1945 को सयुक्त राज्य अमरिका ने जापान के हिरोशिमा नगर पर मानव इतिहास का सबसे क्रूर दाव खेला और परमाणु बम क रूप म ताण्डव आरम्भ किया। लगभग एक लाख व्यक्ति काल ग्रस्त हो गये और हजारो भवन राख के मल्वे मे बदल गये। वतमान म तो हिरोशिमा पर डाले गये बम से भी हजारा गुना ज्यादा शक्तिशाली परमाणु आयुध बना लिये गय हैं तथा अकेले अमरिका के पास इतने आणविक आयुध है कि सम्पूण मानव जाति का नाश हो सकता है। परमाणु विस्फोटो के कारण रेडियोधर्मी धूल का ऐसा विशाल बादल बन जाता है कि जो आग के गोल सदृश्य दिखता है उसमे लगभग 200 प्रकार के समस्थानिक रहते है जो वायु जल तथा मदा विश्व के सभी भागो मे गिरते हैं और मत्यु का नगा नाच आरम्भ कर देत हैं।

आजकल ऊर्जा पूर्ति क लिय, परमाणु शक्ति से परिचालित विद्युत घरो की सख्या मे निर तर वृद्धि होती जा रही है। परमाणु भट्टिया के अधिकाधिक उपयोग से वातावरण म विकिरण की मात्रा भा उसी अनुपात म बढती जा रही और अपशिष्टा को फेंकने की समस्या भी बलवती हो रही है। वातावरण मे प्रदूषण की दर म भी अभिवद्धि हो रही है। समस्थानिका का प्रयोग भी किसी प्रकार कम नहीं है, अत यहा सावधाना बरतने का विशेष आवश्यकता है।

जब रेडियो न्यूक्लिओसाइड्स वातावरण म विमुक्त होते हैं तो उनका प्राय प्रकीणन तथा तनुकरण हो जाता है परन्तु यह ज तुआ म आहार शृ खलाआ म स्थाना तरित होकर सान्द्रित भी हो सकते हैं तथा जल मृदा, वायु तथा अपशिष्टा मे सचित भी हो सकत हैं। यदि प्राकृतिक विघटनाभिक क्षय की दर की अपेक्षा उनका निवश अधिक हो। जन्तुओ एव वातावरण म विद्यमान रेडियो-समस्थानिका के अनुपात का प्राय सान्द्रता कारक माना जाता है।

आण्विक ऊर्जा का एक अन्य वातावरणीय दुष्प्रभाव तापीय प्रदूषण होता है। जीवाश्म इंधन से आण्विक शक्ति पर विस्थापित हो जाने से वायु-प्रदूषण काफी हद तक कम हो जाता है, परन्तु जल-प्रदूषण विशेषतया तापीय प्रदूषण बढ जाता है। सभी शक्ति संयंत्रों में यंत्रों को ठण्डा करने के लिये जल का ही प्रयोग किया जाता है। आण्विक शक्ति संयंत्रों में जल सतह के और भी बड़े क्षेत्रों की आवश्यकता होती है क्योंकि जल सतह में भी ठंडा करने की क्षमता अधिक होती है। ठंडा करने वाली मीनारों जैसी शक्तिमय युक्तियों से आवश्यक स्थान में कमी की जा सकती है लेकिन उनका व्यय काफी होता है। ठंडा करने के लिए महासागरों पर निर्भर रहना भी काफी मनमोहक लगता है परन्तु महासागरों को भी अब ऐसा क्षेत्र नहीं समझना चाहिये जहां मानव के सभी अपशिष्ट फेंके जा सकें। जलीय पारितन्त्र पर तापीय प्रदूषण के निम्न लिखित हानिकारक प्रभाव हो सकते हैं।

(i) जल के तापमान में वृद्धि होने से विषैले पदार्थों के प्रति प्राणियों की प्रभावशीलता बढ जाती है अर्थात् वे कम प्रतिरोधी हो जाते हैं।

(ii) उनके जीवन चक्रों में क्रान्तिक अवधियां (Stenothermal span) लम्बी हो जाती है।

(iii) वर्धित तापक्रमों के कारण सामान्य शवाल समष्टियां कम वांछनीय नीन रहित शवालों द्वारा प्रतिस्थापित हो जाती है।

(iv) जैसे-जैसे तापक्रम बढता है जन्तुओं को अधिक आक्सीजन की आवश्यकता होती है परन्तु गर्म पानी में आक्सीजन कम होती है।

इस तथ्य की भविष्यवाणी तो सभी व्यक्ति करते हैं कि तापीय प्रदूषण एक अत्यन्त गम्भीर स्थानीय विश्वव्यापी समस्या होगी परन्तु सार्वजनिक उष्मा संतुलन पर इस प्रदूषण का अंतत क्या प्रभाव होगा, इस विषय में विशेषज्ञ एक मत नहीं हैं।

□ □

पर्यावरण-प्रशासन एव प्रबन्ध

वतमान म तीन शब्द प्राय हमारे काना म टकराते रहते हैं—पर्यावरण, प्राकृतिक ससाधन तथा उनका सरक्षण। पर्यावरण क्या है ? मानव क चारा ओर की सम्पूर्णता ही पर्यावरण है। मानव क चारा ओर की वस्तु क्या है और किससे बनी है ? इस आस-पास म भौतिक, रसायनिक, जैविक व सामाजिक कारक होते हैं। अत मानव पर्यावरण इन सभी कारका का सफल योग है। दूसरा शब्द ससाधन क्या है ? ससाधन आस-पास के प्रत्यक तत्व के रूप मे एक घटक है और इन्ही घटका के आधार पर मनुष्य अपने लिये आरामदायक तथा महत्वपूर्ण जीवन का विकास कर लेता है। इन ससाधना को दो श्र णिया म वर्गीकृत किया जाता है—एक प्राकृतिक ससाधन जिनके अतगत वायु, जल भूमि, जविक, घटक, ऊर्जा, इधन व अय कच्चे माल सम्मिलित हैं तथा दूसरे मानव निर्मित ससाधन जिनके अन्तगत सासकृतिक वाशिकी, मानव जनसख्या सामाजिक व आर्थिक सरचना व कुछ अय क्रियाएँ सम्मिलित है। इस प्रकार प्राकृतिक ससाधन इस ग्रह पर जीवन की कुन्जी है जिनके अभाव मे पथ्वी पर जीवन सभव नही हो सकता। इस प्रकार हमारी मारी क्रियाएँ व अत क्रियाएँ प्राकृतिक ससाधनो को चारा ओर से घेरे रहती हैं और हमारी सभी उपलब्धिया प्राकृतिक ससाधनो के ही उत्पाद हैं। भोजन जो हम खाते हैं जल जो हम पीत हैं वस्त्र जो हम पहनत हैं, मज कुर्सी जिन पर बैठकर आराम करते हैं मकान जिनम रहते हैं तथा छोटी मशीनो से लेकर कम्प्यूटर जि हे हमने विकसित किया है, वास्तव म हम प्राकृतिक साधनो के ही उत्पादा को अपने लिये उपयोग म ला रहे हैं। शिशु जस ही ज म लेता है उसे श्वसन हेतु ससाधनो के एक घटक ऑक्सीजन की आवश्यकता पडती है, वह मृत्यु पयत जो कुछ भी उपयाग म लाता है प्राकृतिक ससाधनो की ही देन है। कहने का सीधा तात्पय यह है कि इस पथ्वी ग्रह पर जो कुछ भी हम देखत है, सब कुछ प्राकृतिक सम्पदाएँ ही हैं और उन सभी के सरक्षण' का भी उतना ही महत्व है।

हम भूमि जल यहा तक को लवणाय जल, खनिजा, मृदा, घासस्थलिया वन, जन्तु-जीवन, दुर्दात वय जतु, गसें—ऑक्सीजन कावन डाई-आक्साइड, नाइट्रोजन व अन्य सभी का सरक्षण चाहत है। एसा क्या ? क्योकि यह सभी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हमारे लिये मूल्यवान है और इसीलिये उनकी रक्षा हमारा लक्ष्य व कतव्य है। हमारे उद्देश्य की पूर्ति केवल इसमे निहित नहीं

रहती कि इन प्राकृतिक सम्पदाओ की एक लम्बी लिस्ट बना ली जाय। आवश्यकता इस बात की है कि हम यह अवलोकन करें कि हमारी आवश्यकताओ के अनुरूप किस वस्तु को प्राथमिकता देनी ह और उसी क्रम म उनका सरक्षण भी। दूसरे शब्दो मे हमारा मूल समाधन हमारा सम्पूर्ण पर्यावरण ही है। हमारा प्राथमिक उद्देश्य यह होना चाहिये कि मूल ससाधन पर्यावरण को सम्पूणता का ही सरक्षण करें। ससाधनो को अलग अलग कर इसके विषय म नही सोचे, जसे—लकडी, जल, वायु, मृदा आदि।

यदि शब्द 'सरक्षण' का विश्लेषण किया जाय जो पारिस्थितिकी का एक मूल आधार है तो सरक्षण की अवधारणा क्या होगी? क्या यह केवल मात्र ससाधनो को जमाखोरी' है जो एक सामाजिक बुराई है? क्या आप एक तालाब पर इश्तिहार लगा देंग 'यहा मछलिया नही पकडे और मछलियो का सरक्षण कर लेंगे इसी प्रकार घास के मैदान म 'यहा चरना मना है' लिखकर चारे का सरक्षण कर सकेंगे। नदी पर पानी नही पिये' वन मे 'पेड नही काटे'' की पट्टी लगाकर सरक्षण कर लेंगे। इसी प्रकार क्या आक्सीजन का सरक्षण होगा कि ''आक्सीजन उपयोग न करें'' क्योकि यह पर्यावरण मे कम होती जा रही है। यदि ऐसा होगा तो समाज हम असामाजिक तत्वो की श्रेणी मे ला खडा करगा। हमन अपने जीवन म सदव यह अनुभव किया ह जब कभी किसी उपभोक्ता का किसी वस्तु का अभाव होने लगता है तो यापारी उन वस्तुओ की जमाखोरी आरम्भ कर देत है और समाज की दृष्टि मे वे गिर जाते हैं। ऐसी स्थिति म उचित यही होता है कि वे वस्तुएँ सरक्षित रह, उनका सही उपयोग हो तथा उनकी उपलब्धता को देखते हुए साधनो को ईमानदारी स काम मे लिया जाय। इसमे सन्तुलन की महती आवश्यकता है क्योकि जीव सख्या वद्धि भी एक महत्वपूण कारक है। यदि इनमे से किसी भी एक कारक की अवहेलना होती है तो निश्चय ही सन्तुलन बिगड जाता है और ससाधनो मे कमी होन लगती हैं। इसलिये सरक्षण का मूल उद्देश्य ह जीव-मण्डल म ससाधनो की उपलब्धता की निरतरता को बनाये रखना, उपभोक्ताओ की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखना तथा साथ ही बराबर देखना कि ससाधन पूण सुरक्षित है आवश्यकता आने पर पूरी क्षमता के साथ जीव-मण्डल को उपलब्ध हो सकेंगे तथा उनका ह्रास नही होगा। इसके मूल म यह बात है कि सरक्षणदाता को अपने उत्पादन व उपज बढाकर सही दिशा दनी होगी और यह स्पष्ट शब्दो मे कहना पडेगा कि ससाधनो अर्थात सम्पूण पर्यावरण का 'प्रब ध' करना होगा। ससाधन सरक्षण की सही अवधारणा पर्यावरण सम्पूणता के प्रबन्ध मे है न कि एक घटक का अलग-अलग सरक्षण।

चूंकि पर्यावरण घटकों के अन्तर्गत जीव-मण्डल के सभी आवश्यक प्राकृतिक ससाधन सम्मिलित हैं, पर्यावरणीय प्रबन्ध समाधनों की उपलब्धता व सुरक्षित भण्डार की ओर अवश्य ध्यान केन्द्रित करता है—यह आशय भी नहीं है कि सचय की भावना को पूरी तरह तिलांजलि दे दी जाय, क्योंकि अनेक बार देखने को मिलता है कि समाधनों की कमी आन लगती है, उस समय ऐसे सुरक्षित ससाधनों (buffer stock) का उपयोग किया जाता है। यह सर्वथा सम्भव नहीं हो सकता कि जीव-मण्डल में ऐसे साधनों के उपयोग पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया जाय। पर्यावरण में सभी घटक आवश्यक व अन्तसम्बन्धी हैं और इसीलिये समग्र पर्यावरण की कल्पना ही उचित भी है। पर्यावरण के उचित प्रबन्ध हेतु हमारा ध्यान केवल साधन की उपलब्धता पर ही केन्द्रित नहीं हो सकता, उनकी गुणवत्ता व सांख्यिकी उत्पादन भी है तभी पर्यावरण सही दिशा में क्रियाशील रहेगा अन्यथा असन्तुलन की समस्या उत्पन्न होगी।

इस विषय को स्पष्ट समझने के लिये घरेलू उपयोग में आने वाले साधन का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। जब रसोई घर में खाना पक रहा होता है तो जो बर्तन आग पर गरम हो रहा होता है उसे ढका नहीं जाता, यह एक आम बात है। नहाने का गर्म पानी करने के लिये यदि उसे ढक्कन द्वारा ढक दिया जाय ऊर्जा का अपव्यय कम होगा और न ढकने पर अधिक आग की आवश्यकता होगी। सोचिये इंधन की कितनी मात्रा करोसिन तेल, खाना पकाने वाली गैस, लकड़ी अथवा कोयला कुछ भी हो। जब बरतन को ढका नहीं जाता क्षय होता है। यह केवल हमारी असावधानी या नासमझी के कारण होता है। घर में जल का क्षय भी हमारी अपनी अशिक्षा व अज्ञानतावश होता है। प्रात से ही जल का उपयोग आरम्भ हो जाता है जो देर रात तक चलता है—हाथ धोते, ब्रश करते, नहाते बर्तन धोते नल को खुला छोड़ दिया जाता है और जल निरन्तर बगैर कारण बहता रहता है, उसकी आवश्यकता नहीं होती और इस प्रकार जीवनोपयोगी जल ससाधन का दुरुपयोग व क्षय होता रहता है। अवश्य ही इस दिशा में कुछ इस प्रकार के प्रबन्ध किये जा सकते हैं कि जीवनोपयोगी इस प्राकृतिक सम्पदा का क्षय रोका जा सकता है। इन अभिव्यक्तियों के पृष्ठ में एक ही निष्कर्ष निकलता है कि प्राकृतिक सम्पदाओं के सरक्षण को पर्यावरण समग्रता के वृहद रूप में देखा जाय और उसके अनुकूल ही आचरण किया जाय।

विश्व में जनसख्या तीव्रगति से बढ़ रही है और प्राकृतिक सम्पदाओं के कोष खाली हो जायेंगे—अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जीवन मूल्यों का ह्रास आरम्भ हो जाएगा—इन कथनों में केवल सच्चाई ही छिपी है। मानव अपनी सभ्यता के विकास की दुहाई देकर तथा अपनी

आहार शृंखलाओं को स्थापित करने के लिए प्राकृतिक पारितन्त्रों को रूपान्तरित करने में लीन हैं। इन रूपान्तरणों के परिणाम अत्यन्त गम्भीर होते हैं जिन्हें पारिस्थितिक पिच्छत (Ecological boomerangs) कहते हैं। वातावरणीय रूपान्तरण का यह अज्ञात हानिकारक प्रतिफल है जो अनुमानित लाभों को ही हानि नहीं पहुंचाता वरन् वीभत्स समस्यायें भी ला खड़ी करता है—अफ्रीका में जम्बेसी नदी पर विद्युत उत्पादन हेतु एक बांध का निर्माण किया गया परन्तु उसने अनेक अज्ञात समस्याओं को जन्म दे डाला। आरम्भ में आयोजकों का विश्वास था कि बांध से जो मछली उद्योग होगा वह कृषि के लिये भूमि से होने वाली क्षति की पूर्ति कर देगा परन्तु यह अनुमान गलत सिद्ध हुआ। झील के बड़े तट के कारण—यहां सी०सी० मक्खी का आवास बन गया पशुओं में गम्भीर रोग उत्पन्न होने लगे, मृदा का अपरदन भी निश्चित था, आस पास का विशाल क्षेत्र दलदल में रूपान्तरित हो गया और लोग स्थान छोड़कर अन्यत्र जाने लगे। एक बड़े गम्भीर सामाजिक प्रत्थान का आरम्भ हो गया। पहले जब नदी में बाढ़ आ जाती थी तो प्रतिवर्ष निम्न भूमि मुफ्त में ही सिंचित होकर सम्पन्न हो जाती थी। अब बांध का निर्माण इस प्रकार आपेक्षित हानिकारक ही सिद्ध हुआ। भूमि अब उर्वर नहीं रही तो महंगे उर्वरकों का प्रयोग किया जाने लगा, आयात आवश्यक हुआ और व्यय भुगतान की कठिनाईयां आने लगी। कहना होगा कि प्राकृतिक संसाधनों के योजनाहीन उपयोग से ऐसे परिणाम भी अवश्यम्भावी हैं।

रूपान्तरणों की ऐसी योजनाओं में पूर्व सावधानीपूर्वक अध्ययन की आवश्यकता है। यह पूर्व में ही पक्का कर लेना चाहिये कि योजना के द्वारा मनुष्य को शुद्ध लाभ होगा। मानव स्वयं इस जटिल पारितन्त्र का एक अंग है—इसलिये पृथक योजनाओं की अपेक्षा समग्र पारितन्त्र का अध्ययन, प्रशासन प्रबन्ध एवं रूपान्तरण आवश्यक है। अन्यथा पिच्छत सुरसा की भांति मुंह फैलायेंगे तथा बाद में समस्याओं को सुलझाना मानव के वश में नहीं रहेगा। प्राकृतिक सम्पदाओं की सुरक्षा तथा प्रबन्ध का निम्न बिन्दुओं के द्वारा अध्ययन किया जा रहा है —

(i) खनिज सम्पदाएँ एवं प्रबन्ध
(ii) कृषि एवं वन-प्रबन्ध
(iii) वन्य जीव प्रबन्ध
(iv) भूमि एवं मृदा प्रबन्ध
(v) चरागाह प्रबन्ध
(vi) जल कृषि एवं सागर कृषि प्रबन्ध

(i) खनिज सम्पदाएँ एवं प्रबंध —

पूर्व से ही गलत अवधारणा व्याप्त रही है कि पृथ्वी पर खनिजों की इतनी विशाल मात्रा मौजूद है कि शताब्दियों तक उनका दोहन करने पर भी उनमें कमी आने वाली नहीं है तथा वे पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। यदि यह खनिज संसाधन समाप्त होने लग जाये तो उन्हें बचाने का कोई अन्य रास्ता भी नहीं रह जाता। इस सम्बन्ध में क्लाउड (1969) ने दो सकल्पनाएँ अभिव्यक्त की हैं।

(अ) जन-सांख्यिकीय लब्धि (Demographic Quotient)

इसे लब्धि (भागफल) Q द्वारा दर्शाया गया है तथा

$$Q = \frac{\text{सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध संसाधन}}{\text{जनसंख्या घनत्व} \times \text{प्रति व्यक्ति उपभोग}}$$

ज्यों-ज्यों यह लब्धि या भागफल नीचे गिरता है, आधुनिक जीवन स्तर भी गिरता जाता है तथा यह बहुत तीव्र गति से नीचे गिर रहा है क्योंकि उपभोग के बढ़ जाने से उपलब्ध संभरण भी कम होता जाता है। उपलब्ध संसाधन का पुनः चक्रण अथवा अन्य विधियों द्वारा नियमित करने पर भी स्थिति तब तक खराब होती रहेगी जब तक जनसंख्या व प्रति-व्यक्ति उपभोग बढ़ता रहेगा। अमरिका जैसे विकसित देश में तांबे जैसे थोड़े धातु का भी प्रति व्यक्ति उपभोग सन 2000 तक बढ़कर अनुमानतः तिगुना हो जावेगा। औद्योगीकृत देश न तो खनिजों की दृष्टि से और ना ही जीवाश्म ईंधन की ओर से आत्म निर्भर हैं। प्रायः राष्ट्र अविकसित देशों की सम्पदाओं का ही बेरहमी से उपभोग कर उनका शोषण कर रहे हैं। अविकसित देशों में भी इन संसाधनों के सुरक्षित भण्डार सीमित ही हैं और उन्हें किसी भी प्रकार बढ़ाया नहीं जा सकता। और यह भी निश्चित है कि स्वयं अविकसित देश जब इन सम्पदाओं का प्रयोग आरम्भ कर देंगे तो इन भण्डारों की कमी और भी अधिक अनुभव की जाने लगेगी।

(I) निःशेषण वक्र (depleting curve) — क्लाउड (1969) का ही कथन है कि असीमित खनन, प्रयोग व उत्पादनों को फेंकने की प्रवृत्ति के कारण कुछ खनिजों के शीघ्रातिशीघ्र बीत जाने का खतरा बना हुआ है और यदि प्रकृति निरंतर चालू रही तो जस्ता, टिन सीसा, तांबा आदि कुछ धातुओं की खानें सन 2000 से पूर्व ही खाली हो जावेंगी। इसी प्रकार युरेनियम 235 व प्राकृतिक खनिज गैसें भी तब तक खत्म होने के कगार पर होंगे। पुनः चक्रण के माध्यम से तथा कम उड़ाऊ प्रयोग से इस अवक्षय का कुछ समय अवश्य ही बढ़ाया जा सकता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि ससाधनो के उपभोग पर कठोर नियत्रण तथा प्रतिस्थापन या जहा भी सम्भव हो एक पदार्थ के एवज म अपेक्षाकृत दूसरा पदार्थ जो अधिक मात्रा मे उपलब्ध हो, उसका उपयोग करें। दक्ष पद्धतियो के माध्यम से पुन चक्रण का अपक्षय का समय और भी अधिक बढाया जा सकता है। अपक्षय को निलम्बित भी किया जा सकता है यद्यपि उसे पूर्णतया रोका नही जा सकता। यह भी सर्वमान्य है कि पुन चक्रण के बाद भी अपक्षय तो अवश्य होगा ही। प्रो० क्लाउड ने विज्ञान की राष्ट्रीय ऐकेडमी (सयुक्त राज्य अमेरिका) म अध्यक्ष पद से सम्बोधित करते हुए यह उदघोषणा की थी कि अ त मे जनसख्या वृद्धि पर नियन्त्रण अति आवश्यक है तथा पुन चक्रण का दक्षतापूर्वक क्रियान्वयन करने से ससाधनो का अच्छा प्रब ध सम्भव है।

(2) कृषि एव वन प्रब ध —पारितन्त्र की सम्पूर्णता की दृष्टि से मनुष्य के लिये कृषि एव वन प्रबन्ध के अ तर्गत भोजन तत्वो के अतिरिक्त अन्य कई उत्पाद्न सम्मिलित हैं। जहा शितोष्ण कटिब धीय प्रदेश का सवाल आता है वहा खाद्य-उत्पादन के अनेक सीमाकारी कारको पर उवरको, सिचाई साधनो व नाशक जीवो के नियन्त्रण के माध्यम से तकनीकी उन्नति कर व आनुवशिक वरण द्वारा फसलो का स्थापत्य कर लिया गया है परन्तु शितोष्ण प्रदेशो का कृषिशील्प विज्ञान उष्ण कटिब धीय प्रदेशो म लागू नही किया जा सकता। उष्ण कटिब धीय प्रदेशो म आज भी कृषि के तौर-तरीके अविश्वसनीय व अपूर्ण माने जाते है, ऐसी हालत मे पारिस्थितकीय अवधारणाओ पर आधारित पूर्णतया नवीन सिद्धान्तो व नियमो को अपनाने की महत्ता आवश्यकता है।

कृषि में उत्पादन म अभिवृद्धि 'हरित क्रान्ति' का मूल आधार कृषि क्षेत्र का औद्योगीकरण है जिसस बडी मात्रा म आर्थिक सहायता, कृत्रिम रासायनिक उवरको व उनका नियन्त्रण तथा विशेष [illegible] प्रजातियो तथा उप जातियो की आवश्यकता होती है। [illegible] मे बिना सोचे विचार यदि उत्पादन को बढान का [illegible] किया जाता है तो इसके अत्यन्त गम्भीर व जटिल परिणाम निकल सकते है तथा इस प्रकार पर्यावरणीय व सामाजिक पिछडो का [illegible] है। आधुनिक युग म यह तो प्राय निश्चित हो गया है कि विश्व [illegible] भारत म पालतू पशुओ स सम्पन्न हो रहा है, उसका [illegible] अमरिका म होती है, उसम [illegible] गुना ज्यादा उत्पादन होता है। लकिन उस पर [illegible] सौ गुना ज्यादा है।

हरित क्रांति के परिणाम स्वरूप सामाजिक दुष्परिणाम बहुत अधिक मात्रा म उत्पन्न हो जाते हैं। जब से कृषि का यन्त्रीकरण हुआ है, प्राय यह देखन म आया है कि छोटे किसान व मजदूर गावा को छोडकर शहरा की ओर भागने लग हैं जहा उन्ह अपनी आजीविका चलाने म भारी कठिनाइयो का सामना करना पडता है तथा रहन के लिये मकान भी नही मिल पात। अब छोटे-छोटे खेतो को मशीनीकरण के अन्तगत विशाल एव विस्तृत खेता म परिवर्तित किया जाता है तो जो लोग इन खेता का प्रबन्ध करत हैं, सम्पत्ति बढ़ाकर धनाढय हान लगते हैं परन्तु अधिकाश लोग गरीबी की रेखा क नीचे जीवन यापन करन को बाध्य कर दिय जाते हैं, और गरीबी व अमीरी के बीच खाइ बढती ही रहती है जिस पाटना टेढी खीर बन जाती है। ऐस ही दुष्परिणामा से निजात पाने क लिये छोटे-छोटे खेता को ही यदि सुधारा जाय तथा कृषि के यन्त्रीकरण से पूव ही जन सख्या वृद्धि पर नियन्त्रण कर लिया जाय तो अच्छे परिणाम निकल सकते है।

वनो का प्रबन्ध भी अत्यन्त महत्वपूण काय है। चूकि वनो द्वारा अधिकाश उत्पादन वास्तव म अतीत मे सचित वद्धि का सस्यावतन (Harvesting) होता है अत एक प्रकार से मनुष्य इस प्राकृतिक ससाधन का खनन कर रहा है। ऐसी अवस्था म यह और भी आवश्यक हो जाता है कि वन-उद्योगो को वना की वार्षिक वद्धि के अनुपात म सन्तुलित करना होगा। जो लोग वनो के प्रबन्ध से सम्बन्धित है, उनकी मान्यता है कि जन-सख्या घनत्व म वद्धि तथा रेशा के प्रति व्यक्ति उपयोग मे बढोतरा के कारण वन उत्पादनो की माग भी अवश्य ही बढ़ेगी। इसलिये वृक्षो के क्षेत्रा का विकास तथा रेशेवाले पादपो की खेती क विषय म गम्भीरता से सोचना होगा और इनकी खेती करना भी अनिवाय होगा। लेकिन इस प्रकार से उत्पादन बढाने का तात्पय यह होगा कि—(i) वन प्रबन्ध कर औद्योगीकरण को बढावा देना और ऊर्जा के व्यय म बढोत्तरी करना। (ii) एक धान-सस्कृति तथा कम अवधि वाले सस्यावतन द्वारा एक ही जाति विशेष की फसल उगाना-आज जो नय वन लगाये जा रहे हैं उनमे वद्धि दर बहुत तीव्र गति की है जबकि प्राचीन वन बहुत धीमी गति से अभिवद्धि करते हैं। (iii) पादपो की अधिक मात्रा म रेशे उत्पादन करने वाली उपजातियो का कृत्रिमवरण (artificial selection) जो उवरको की उच्चदर पाडकनाशको के अनुप्रयोगो तथा उनसे उत्पन्न सार्वत्रिक प्रदूषण और अनेक प्रकार के रोगो के फलने के खतरे बढते है तथा (iv) सम्भवत् इनका गुणवता म भी भारी क्षति होती है।

बहुत सारे वन-प्रबन्धको की मान्यता है कि वना के साथ फसला जसा व्यवहार नही करना चाहिये क्योकि वन मनोरजन क स्थल वन्यजीवो के लिय

आवास स्थल, वायु एव जल-औसारे के रूप मे उपयोगी सिद्ध होते हैं तथा यह वाय बहुजातिय व बहुआयामी वन कर सकते हैं जि हे निरन्तर बहुत थोडी सी मात्रा मे काटा भी जाना चाहिये।

मानव की अनेक वातावरणीय आवश्यकताओ की पूर्ति तथा पोषण पर व्यय की दृष्टि से कृत्रिम-वश-खेत तथा प्राकृतिक रूप म विकसित बहुआयामी वन दो पूणतया भिन्न पारितन्त्र हैं। अ य ससाधनो की भाति कागज एव दूसरे व य उत्पादन के पुन चक्रण, तथा कठोर एव नियन्त्रित सरक्षण ही एक मात्र ऐसी विधिया हैं जिनकी सहायता से व्यक्तिगत उपयोग को कम किये बगैर भी वनो की प्रति व्यक्ति माग कम की जा सकती है। इन विधिया के द्वारा ही भूमि को वृक्षो की फसल से ढकना एव गम्भीर दुष्परिणाम उत्पन्न करने का खतरा मोल लना आवश्यक हो जावेगा। अगर वक्षो की फसले उगाना नितात जरूरी भी हो जाय तो उन्हे अच्छी कृषि वे उपयुक्त समतल, उवरक भूमि तक ही सीमित रखा जाय। ऐसी भूमि जहा मृदा एव जल की दशाएँ गहरी तथा कृत्रिम-सवधन का लम्बी अवधि तक पोषित न कर सकें तथा ढालू भूमि के लिये प्रकृति से अनुकूलित वन ही सबसे उत्तम आवरण होते हैं।

(3) व य जीव प्रबन्ध —प्रकृति द्वारा पृथ्वी पर वनस्पति, वन्य प्राणी एव मानव के बीच सतुलन स्थापित किया हुआ है, अन्य प्राकृतिक ससाधनो क समान ही वन्य प्राणी भी प्राकृतिक सम्पदा हैं। सभी वना मे शाकाहारी व मासाहारी वन्य जीव निवास करत है। कुछ ही समय से इस शब्द का प्रयोग आरवेटो तथा समूर युक्त पृष्ठवशियो क लिय किया गया है। प्रकृति ने इनके मध्य एक शृ खला बना दी है जिससे इनकी सख्या निश्चित बनी रहती है और प्रकृति द्वारा प्रदान की गई इस शृ खला स किसी भी घटक के नष्ट होने से पूरे प्राकृतिक चक्र का सन्तुलन बिगड जायगा। यदि मासाहारियो का ज्यादा तादाद मे आखेट किया गया तो शाकाहारियो की सख्या बढने लगगी और इन पर नियन्त्रण समाप्त हो जायगा और इस सख्या वद्धि के परिणामस्वरूप ये हमारे वना व कृषि को नष्ट करेंगे और यदि वनो को नष्ट किया गया तो वन के साथ-साथ शाकाहारियो व मासाहारियो के जीवन को खतरा उत्पन्न हो जायगा। इस कारण प्रकृति द्वारा प्रदत्त सभी घटको का प्राकृतिक स तुलन बनाये रखना अनिवाय है।

आज के प्राकृतिक स तुलन म निश्चित ही बन्लाव की स्थिति उत्पन्न हो गयी है प्रकृति प्रदत्त वरदान भी कम हो रह है और जो लाभ हमे मिलन चाहिय वह नही मिल पा रह है जो प्राचीनकाल म प्राप्त थे। जगलो मे एक अजीब सी वीरानी छा गई है। वन्य जन्तु या तो नष्ट हो रह हैं या उनका

विलुप्तीकरण हो रहा है, कारण उनके आवास ही नष्ट किये जा रहे हैं। मनुष्य ने अपने क्षणिक मनोरंजन के लिये इनका शिकार कर इनके लिए खतरनाक चुनौती प्रदान कर दी है। जन-संख्या वृद्धि से वनों का बेरहमी से उपयोग किया गया, वहीं मनोरंजन के लिए शेर चीता के आखेट से उनकी संख्या में निरन्तर ह्रास हुआ है। आहार के लिये खरगोश, हिरन तीतर आदि का भी शिकार किया गया और इनकी संख्या में भारी कमी आई है। इन्हीं कारणों से आज प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ा है।

वन्य जन्तुओं के उचित विकास के लिये जरूरी है कि इनके आवास-स्थलों का इस प्रकार प्रबन्ध किया जाय जहाँ उन्हें प्रजनन, भोजन, स्वभाव के अनुसार, अनुकूल वातावरण प्राप्त हो सके। भारत सरकार व राज्य सरकारें भी इस दिशा में कदम उठाकर वन्य-जन्तुओं के आवास स्थलों के सुधार, भोजन की आपूर्ति वन्य-जीवों की संख्या में बढ़ोत्तरी तथा विलुप्त हो रही जातियों के संरक्षण के प्रति जागरूक हैं उसने अनियन्त्रित शिकार पर रोक लगा दी है और कुछ कानून भी बना दिये जिनका कठोरता से पालन करने पर वन्य जीवों को संरक्षण प्राप्त हो सकेगा। यह पूर्णतया सही है कि हम वन वन्य जीव एवं वातावरण संरक्षण के माध्यम से पर्यावरण प्रदूषण से कारगर और सार्थक बचाव कर सकेंगे और यही मानवता की सच्ची सेवा भी होगी।

(4) भूमि एवं मृदा प्रबन्ध —भूमि पर मृदा का एक स्तर होता है। यह स्तर विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग होता है। पथरीली भूमि, पहाड़ी क्षेत्रों में जहाँ मृदा का स्तर कम होता है वहीं मैदानी व नदी क्षेत्रों में इसका स्तर मोटा होता है। भूमि की उर्वरता के लिये अनिवार्य है कि उसमें निश्चित मात्रा में नमी मौजूद हो। नमीयुक्त भूमि में पादप एवं जन्तुओं के मरने बाद वे सड़ने तथा गलने लग जाते हैं और भूमि में आत्मसात हो जाते हैं। ऐसी जीवांश युक्त भूमि को ही ह्युमस' कहते हैं। भूमि में ह्युमस जितनी अधिक मात्रा में होगी भूमि उतनी ही अधिक उपजाऊ होगी। प्रकृति में इस प्रकार की ह्युमस बनने में अनेक वर्ष लग जाते हैं परन्तु भूमि के अनुचित प्रयोग से इसकी गुणवत्ता शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। मृदा के इस अवगुणन को भूमि कटाव अथवा अवक्षय नाम दिया गया है।

किसान अपनी अज्ञानतावश या किन्हीं दूसरे कारणों से निरन्तर एक ही प्रकार की फसल बोता है जिससे भूमि में लवणों व अन्य आवश्यक तत्वों की मात्रा में ह्रास होता है। अतः भूमि अनउपजाऊ या बन्जर बन जाती है। भूमि में होने वाले ऐसे भी बदलावों को अवक्षय कहा गया है। इन गतिविधियों को रोकने के लिये यह जरूरी है कि भूमि पर लगातार एक ही प्रकार की

खेती नहीं की जाय और फसलो को बदल-बदल कर उगाया जाय । इसी प्रकार भूमि मे मृदा का स्तरीकरण कम हो जाना या उनका नष्ट हो जाना 'भू अपरदन' कहलाता है-यह अपरदन तेज वाता, आधी, वर्षा, बाढ आदि के कारण स होता है जिससे मृदा एक स्थान से उडकर या बहकर अ यत्र चला जाती है। फलस्वरूप भूमि की गुणवत्ता व समतलता समाप्त हो जाती है साथ ही तेज गतिशील पवन, रेगिस्तान के प्रसार म योग देते है।

भूमि के अपदन को रोकने के लिये आवश्यक हो जाता है कि भूमि पर सघन खेती कर भमि को निर तर विकसित किया जाय। इस प्रकार पादप-जडो म मृदा ब धी हुई रहती हैं। पेडो से लगातार गिरने वाली पत्तिया भूमि-सात् होकर मृदा स्तरा को सुरक्षित रखती हैं। भूमि क अहितकारी उपयोग क कारण उ ह पुन स्थापित करने का भार तो वहन करना ही पडता है, साथ ही इसक कारण मृदा-ससाधनो की भी स्थायी हानि होती है। जैस कम वर्षा वाला घासस्थलियो म यदि हल चला दिया जाय और मेढ़ यो दें तो वहा अस्थायी मरुस्थल का निर्माण अवश्यमभावी है। दूसरी ओर घासस्थली को बनाए रखा जावे और उस पर पशुओ का साधारण रूप मे चरने दिया जाय तो मरुस्थल प्रसार की सम्भावनायें कम हो जाती है। कृषि योग्य अच्छी मृदा वाले समतल क्षेत्रो म फसलो को बदल-बदल कर बोना पट्टीदार खेती, ढालू क्षेत्रो म कटिवत मेड, कृषि की जाय तो 'भूमि का सरक्षण हो सकता है।

5 चरागाह प्रब ध

चरागाहो सम्ब धी प्रब ध के विषय मे भी जानकारी लेना लाभदायक होगा। प्राकृतिक चारागाह लम्बे समय मे विकसित हुए है और उनका मानव तथा अ य प्राणियो द्वारा विभि न प्रकार से उपयोग हुआ है। अत चारागाहा की ऐतिहासिक अभिमुखता विचारणीय है। विश्व क घासस्थ न क्षत्रों को नष्ट होती सभ्यताओं क अनुक्रम स सिद्ध होता है कि इन सम्पदाआ के प्रति भी मनुष्य का व्यवहार अनुचित रहा है। वह अपने कठोर परिश्रम से बनाये गय कृत्रिम चरागाहो को नष्ट करन की कभी नही सोचता, फिर भी उसे उस प्राकृतिक चरागाह के जब कारणो एव प्रभावो को समझन मे कठिनाई होती है जिस उसने स्वय बनाया है। चरागाह प्रब धका को इस ओर विशेष ध्यान देन का आवश्यकता है —

(i) चरने वाले प्राणिया के लिये चरागाह की वाहन-क्षमता को निर्धारित करना ताकि प्राथमिक उत्पादकता व सकल उत्पादकता की प्रतिशतता जिस प्रति वर्ष हटाया जा सके तथा घास पादपो ने फिर भी उत्पादकता बनाये रखने का तथा मौसम की प्रतिकूल अवस्थाओ, यथा वात-प्रवाह के प्रतिबल का सहन करन का सामर्थ्य बना रह।

(ii) प्राथमिक उत्पादकता वर्षा की लगभग अनुपाती है। वार्षिक सकल उत्पादकता के आधे से कम भाग का पशुओं द्वारा उपभोग होना चाहिये और यह गणना महत्वपूर्ण है कि निश्चित वर्षा से कितनी मात्रा भार में मांस का उत्पादन होगा। और इसी के अनुसार प्राणियों की संख्या निश्चित की जा सकती है।

(iii) वर्षा का वार्षिक वितरण, चारे की किस्म खाने की दर व वृद्धि आदि परिकलण अत्यन्त जटिल हैं, परन्तु चरागाह प्रबंधक यह अवश्य ही ज्ञात कर सकते हैं कि चरागाह का उपयोग ठीक प्रकार से हो रहा है अथवा नहीं और यह निर्धारित करने के लिये पारिस्थितिक संकेत-सूचक सबसे अधिक व्यावहारिक साधन है। 'ह्रासक' कहलाने वाले पादप इस कार्य में सराहनीय रूप से लाभदायक होते हैं। चरागाह से उनका लुप्त हो जाना अतिचारण (overgrazing) का समय रहते 'चेतावनी सूचक' होता है। यदि अतिचारण बन्द न किया गया तो खाने के अयोग्य अपतृण तथा मरुस्थली झाड़ियाँ उगने लगेंगी और अन्त में मानव निर्मित मरुस्थल का उदय होगा। अतिचारण से ही चूहे व मूषकों की समष्टियाँ व टिड्डियों की संख्या बढ़ने लगेगी।

(iv) चरागाह-प्रबन्ध के क्षेत्र में दीर्घ-कालीन चारण के अध्ययन को विशेष महत्व दिया जाता है। अति संग्रहण के कारण अल्पकालीन आर्थिक लाभ, यथा अधिक मांस तो उपलब्ध हो जाता है लेकिन चारक व चरागाह दोनों की गुणता नष्ट हो सकती है और इसी कारण गुणता को बनाये रखने के लिये अधिकतम संग्रहण दर अनुकूलतम नहीं होती। अल्पकालीन लाभ वास्तव में वातावरण की दीर्घकालीन हानि के कारण ही होता है।

(v) चारकों द्वारा भूमि को रौंदने के कारण मृदा का संहत होना महत्वपूर्ण है। जब बड़ी संख्या में चारक लम्बी अवधि के लिये चरागाह में छोड़ दिये जाते हैं तो मृदा बन्ध (Sodbound) जाती है और चारकों के हटा देने पर भी उत्पादकता कम ही रहती है। ऐसी घटनाओं को रोकने के लिये चरागाहों के आवर्तन की आवश्यकता पड़ती है, चारकों की विभिन्नता भी लाभदायक हो सकती है क्योंकि इससे पादपों की सभी जातियों तथा सभी अवस्थाओं का संतुलित उपयोग होता है।

6 जल कृषि एवं सागर कृषि प्रबन्ध

मत्स्य पालन, जल कृषि एवं सागर कृषि का एक महत्वपूर्ण अंश है। प्राय विश्व के सभी भागों में मछलियों का भोजन के लिये उपयोग होता है। मत्स्य उद्योग उन मछलियों की समष्टियों के मुख्य प्रबंध से सम्बन्धित है जो व्यापारिक दृष्टि से पकड़ा जाता है तथा वे जातियाँ जो आउट में प्रयुक्त होता

है। आखेट म प्रयुक्त सर्वोत्तम मछलिया मासाहारी होती है और यह लम्बी आहार-शृ खलाओ के किनारो (edges) पर उत्पन्न होती है अत इनके प्रति एकड उत्पादन भी सीमित रहता है। जब मछलिया का सस्यवर्त्तन किया जाता है तो उनकी आहार-शृ खला मे कम से कम चार स्तर पाये जाते है—पादप प्लवक, कीट व क्रस्टेशियन उपभोक्ता, छोटी मासाहारी, चारा मछलिया एव बडी मासाहारी शिकार मछलिया। यह मछलिया मछुआ द्वारा आसानी म पकड ली जाती है, लेकिन प्रबन्ध की दृष्टि से तालाबो एव झीलो मे मछलिया की एक स तुलित समष्टि को बनाये रखने का प्रयास किया जाता है ताकि मनुष्य को निरन्तर उत्पादन प्राप्त होता रहे एव उसके लिये जलाशयो मे उसे केवल अकार्बनिक उवरक डालने पडे और भोजन व मछलियो के निवेश की आवश्यकता नही रहे।

शिकार मछलिया के तालाबो का निर्माण पारितन्त्र को सरल करने के लिये किया जाता है अर्थात इन तालाबो मे घटक स्तर कम कर दिये जाते हैं, उनम वाछनीय घटक प्रत्यक्ष रूप म मौजूद रहे। इस स्थिति की सुचारु रूप से निरन्तरता को कायम रखने के लिये जलाशय का आकार, गहरा, निषेचन दर व मत्स्य समष्टि का आकार, अनुपात व जातिय-सगठन स घटको का सीमाकरण करना आवश्यक होना है।

रोसन (1952) का कथन है कि प्रति इकाई क्षेत्र म मछलियो के उत्पादन की तुलना बडी, गहरी झीलो तथा छोटी छिछली झीलो म नही की जा सकती। बडी व कृत्रिम झीलें प्रारम्भ मे मछली पकडने की दृष्टि से अच्छी होती है, परन्तु कुछ समय के उपरान्त वे ठीक नही रहती। छोटी झील सस्ती होने के साथ अधिक दक्षतापूवक प्रबन्ध की जा सकती है।

योजनाबद्ध विकास से पर्यावरण के गुणों तथा सुन्दरता का सरक्षण होगा तथा इसस मनोरजन के लिये व प्रदूषण की कमी के लिये भी काफी स्थान शेष रहेगा। यह विकास निम्नलिखित विधियो स सम्पन्न हो सकता है —

(i) गाव व नगर के चारो ओर आपसी स्थलो के समूह का विकास हो तथा प्रत्येक दो समूहो के मध्य वृक्षो की एक पट्टी हो।

(ii) सरिता, घाटियो, नाला, झीलो व कच्छ क्षेत्रो को अपशिष्ट पदार्थों के फेंके जाने वाले क्षेत्रो को अलग रखा जाय और घरो स मुक्त रखा जाय।

यह सुनिश्चित है कि प्राकृतिक रूप म खुला स्थान मनुष्य के पर्यावरण का एक अनिवार्य अग है। यथोचित प्रदूषण रहित निवास-स्थान ही जन-सख्या घनत्व के निर्धारण का माप-दण्ड होना चाहिये, भोजन नही। मैकहाग (1969) ने कहा था कि 'अनियत्रित विकास, जो विवेक के अभाव म पल रहा है, हृष्य भूमि कोपामयर व प्रदूषण स भ्रष्ट कर देता है तथा वह सब

आंशिक रूप मे नष्ट कर देता है जो सु दर व यादगार लायक है चाहे प्रत्यक घर या उपविभाग कितन ही सु दर ढग क्यो न सुसज्जित किया गया हो।

पर्यावरण एव नतिकता —

आज राजस्थान नहर से जबरदस्त जल प्रदूषण हो रहा है पारिस्थितिक सतुलन भी बिगड रहा है, परन्तु सरकार फिर भी उस काय म प्रगति की सोच रही है क्याकि प्रदूषण व पर्यावरणीय अस तुलन से उत्पन्न होने वाल खतरो से अधिक दुखदायी राजस्थान नहर का न होना है। अत समाज के हित म किये गये काय को अनैतिक नही कहा जा सकता। वज्ञानिका द्वारा भविष्य मे सम्भावित खतरो को दृष्टि म रखत हुए केवल वतमान पूर्ति को ही सर्वोपरि समझना, अनैतिक कहा जा सकता है क्याकि कालातर म यह सम्भावित खतरे लाभ की तुलना म अधिक भयकर परिणाम दे सकते हैं। आज मनुष्य म प्रकृति को दास बनाने की इच्छा उसके दिमाग म मण्डराती है। यदि मनुष्य ने प्रकृति को मशीनो के माध्यम से अपन ढग से नियन्त्रित करने का दु साहस किया तो आगे चलकर इसके परिणाण और भी भयकर होंगे। सारी मानव सभ्यता ही नष्ट हो जायगी, प्रकृति का इस प्रकार दोहन अनैतिक कृत्य है। मा अपनी स तानो के लालन-पालन एव प्रगति हेतु स्वय कष्ट सहन करती आयी है ना कि आत्म हत्या कर। मा की हत्या से सतान अनाथ की भाति हो जाता है, ठीक उसी प्रकार से प्रकृति के विध्वस से मानवता दुबल होती जायगी।

आधुनिक काल म नैतिकता तथा अनतिकता लोग अपने ही ढग स परिभाषित करते हैं। प्राकृतिक विज्ञान, तकनीकी को भला बुरा कहने वाला की सख्या म निर तर वद्धि हो रही है और आज माग यह है कि विज्ञान के अन्वेषणो का मानवीयकरण एव सामाजीकरण करने की आवश्यकता है।

☐ ☐

बदलती हुई मानसिकताऐं और पर्यावरण सन्तुलन

20वीं सदी के अन्तिम चार दशकों म हमने अपनी 'पृथ्वी' को अन्तरिक्ष से झाक कर देखा और जनमानस पर इसका व्यापक प्रभाव पडा। हमने अनुभव किया कि 'पृथ्वी' ब्रह्माण्ड का केन्द्र नही है अपितु सौर मण्डल का, बुध, मंगल, शुक्र, वृहस्पति व शनि ग्रहों के समान एक सदस्य है। अंतरिक्ष से यह 'पृथ्वी एक छोटी व कोमल गेंद-सी दिखाई पडती है, जिस पर मानवीय कृतियां व कृत्यो का ही नहीं वरन् बादलो, महासागरो, मृदा तथा हरियाली के शिल्प-सौंदय का आधिपत्य है। यह नयी वास्तविकता इस शताब्दी के नये विकास से अधिक सकारात्मकता से जुड गई हैं। अब हम विश्व म पहले की अपेक्षा सूचना तथा सामग्री का तेजी से सम्प्रेषण कर सकते हैं। अपने समाधनो का अल्प विनियोग कर अधिक अनाज अधिक वस्तुओं का उत्पादन कर सकते ह। हमारा तकनीकी ज्ञान और विज्ञान हमें प्राकृतिक तत्व को देखने व समझने के बेहतर तरीके दे सकता है। अब हम मानव क्रियाओ तथा प्राकृतिक नियमो के मध्य सामजस्य स्थापित करने म अधिक क्षमता व दक्षता रखने लगे हैं। अब हम विश्वास के साथ अभिव्यक्त कर सकते हैं कि हम अधिक समृद्ध अधिक न्यायवादी और अधिक सुरक्षित होते जा रहे हैं और हम सभी का भविष्य अधिक उज्ज्वल है।

इसमे किसी प्रकार का सन्देह नही है कि आज हमने अनेक सफल व आशातीत चिह्न यथा—शिशु मृत्यु-दर मे कमी, जीवन सम्भावनाओ की वृद्धि शिक्षित वयस्को का विश्व म बढता अनुपात, जनसंख्या की वृद्धि की तुलना म विश्व म बढते उत्पादन प्राप्त कर लिये हैं किन्तु उन उपलब्धियो के उत्पादन साधनो ने ऐसी प्रवृत्तियो को बढ़ावा दे दिया है कि यह धरती उसके निवासी सुदीर्घ समय तक सहन नही कर सकते। इन प्रवृत्तियो को परम्परागत रूप मे 'विकास' की असफलताएँ तथा मानवीय पर्यावरणीय व्यवस्थाओ की कमियां कहा जायगा। विकास का एक पक्ष यह है कि पूर्ण जनसख्या के आधार पर पहले की अपेक्षा अब विश्व मे अधिक लोग भूखे सोते हैं और मर भी जाते हैं। इनकी सख्या तीव्र गति से बढ़ रही है जिसे जनसंख्या विस्फोट (Population explosion) की संज्ञा दी गई है। इसी के परिणामस्वरूप सख्या की दृष्टि से शिक्षा की सुविधाएँ, शुद्ध पेयजल की

उपलब्धता, सुरक्षित आवास, प्रति व्यक्ति इंधन की मात्रा में ह्रास हो रहा है। धनी व निर्धन देशों के मध्य खाई घटने के स्थान पर चौड़ी होती जा रही है तथा इस बात की सम्भावनाएँ भी निरन्तर बढ़ती जा रही हैं कि वर्तमान प्रवृत्तियाँ, मानव आचरण और संस्थागत व्यवस्थाएँ इस प्रक्रिया को उलट भी सकेंगी।

इन्हीं आधुनिक सफलताओं व असफलताओं के वशीभूत होकर मानवीय मानसिकताएँ बदलती जा रही हैं। ऐसी मानसिकताओं के प्रति सावधान व सचेत होने की आवश्यकता भी है क्योंकि—

(i) प्रतिवर्ष 60 लाख हेक्टेयर उपजाऊ भूमि शुष्क अनुपयोगी मरुस्थलों में रूपान्तरित हो जाती है। तीन वर्ष के पश्चात यह भूमि लगभग सऊदी अरबिया के क्षेत्रफल के बराबर हो जायगी।

(ii) प्रतिवर्ष 110 लाख हेक्टेयर भूमि के वन नष्ट हो रहे हैं और तीन दशक में यह भूमि लगभग भारत के क्षेत्रफल के बराबर होगी। इस वन का अधिकांश भाग निम्न श्रेणी के खेतों में रूपान्तरित हो जाता है जो किसानों की आजीविका के लिये अपर्याप्त है।

(iii) यूरोप में अम्लीय वर्षा के कारण वनों तथा झीलों का लगातार विनाश हो रहा है जिससे किसी भी राष्ट्र की वास्तुकला धरोहर नष्ट हो जाती है, इस वृहद क्षेत्र की मृदा अम्लीय हो जाती है और उसके सुधार की कोई उपयुक्त प्रणाली नहीं है।

(iv) जीवाश्म इंधन के जलाने से वायुमण्डल में कार्बनडाई-आक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है जो विश्व के तापमान को निरन्तर बढ़ा रही है। एक अध्ययन के अनुसार सन् 2020 तक कार्बन-डाई-आक्साइड का स्तर दुगुना हो जावेगा। अतः विश्व का तापक्रम 30 सेल्सियस बढ़ जायेगा और 2100 तक तापक्रम 6° सेल्सियस बढ़ जायगा जिससे सारी ध्रुवीय बर्फ पिघल जायेगी तथा नदियों में बाढ़ की स्थिति होगी। आगामी 21वीं सदी के आरंभ में ही यह 'ग्रीन हाउस प्रभाव" विश्व के औसत तापमान को इतना बढ़ा सकता है कि हमें विश्व के कृषि उत्पादन क्षेत्रों को बदलने की आवश्यकता पड़ सकती है। सागर जलों का स्तर भी बढ़ सकता है और अनेक सागर-तटीय नगर पूर्ण रूप से जल मग्न हो सकते हैं। पृथ्वी के बहुत बड़े भू-भाग पर बाढ़ का प्रकोप हो सकता है तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था चरमरा सकती है।

(v) वायु-मण्डल की बाह्य परत—ओजोन रूपी सुरक्षा कवच है—औद्योगिक गैसों के प्रवहन के कारण ओजोन मण्डल को इतना खतरा हो सकता है कि मानव तथा जन्तुओं के लिये घातक हो सकता है। इससे कैंसर

रोग बढेगा और महासागरो की आहार-शृ खलाएँ तथा भूजल स्तर पूर्ण रूप मे विषैला बन जायेगा जिसे पुन शुद्ध करना सम्भव नही होगा ।

मानव मस्तिष्क मे अब यह अनुभूति घर करती जा रही है कि पर्यावरणीय समस्याओ तथा आर्थिक मसलो को अलग करना असम्भव हो गया है । विकास काय आधारभूत प्राकृतिक ससाधनो को नष्ट कर देते हैं तथा पर्यावरण अध पतन से आर्थिक विकास रुक जाता है और इसी का गम्भीर परिणाम हमे देखने को मिल रहा है—'गरीबी का अभिशाप' । विश्व के पाचो महाद्वीपों म विकास की वतमान प्रवृतिया अरक्षित तथा निधन व्यक्तियो की सख्या बढाने के साथ-साथ पर्यावरण पतन मे भी सलग्न है । फिर मानव विचारधारा इसी प्रश्न को लेकर सोच के घेरे म आ पडती है । आगामी सदी म जब विश्व जन सख्या द्विगुणित हो जायगी और पर्यावरण इसी प्रकार स्थिर होगा, आगे विकास किस प्रकार होगा ?

आर्थिक प्रगति को नवीन प्रौद्योगिकी के कारण प्रेरणा मिली है, साथ ही प्रदूषण के नये रूप और विकास क क्रम को बदलने वाले जीवो की नयी प्रजातियो का पृथ्वी पर जैसे खतरे प्रौद्योगि की ही देन ह । विकासशील देशो मे पर्यावरणीय साधनो पर आश्रित और भयकर प्रदूषण फलाने वाले उद्योगो का तजी से विकास हो रहा है । इन देशो म प्रगति की बडी आवश्यकता है परन्तु साधन सम्पन्न राष्ट्रो म इन प्रभावो को घटाने की क्षमता भी न्यूनतम है । आज हम पारिस्थितिकीय तनावो जैसे मृदा जल साधनो, वायुमण्डल व वनों के अधोपतन का हमारे आर्थिक विकास पर पडने वाले प्रभावो की की ओर भी ध्यान देने को मजबूर कर दिये गये हैं । स्थानीय ससाधन-आधारो के क्षीण हो जाने पर इसका विस्तृत क्षेत्रो पर भी घातक प्रभाव पड सकता है । पवतो म रहने वाले किसानो द्वारा वनो का विनाश किया जाता है जिससे मदानो खेतो में बाढ की स्थिति बन जाती है । औद्योगिक प्रदूषण स्थानीय मछवारो स उनका शिकार छीन रहे हैं । अमेरिका तथा एशिया मे तो वनो के विनाश के फलस्वरूप प्रलयकारी बाढें आयी हैं । अम्लीय वर्षा तथा रेडियोधर्मी धूल योरोप की सीमा के आर-पार फैल गई ह । विश्व का बढ़ता तापमान और ओजोन परतो के नष्ट होने जैसी प्रवत्तिया विश्व स्तर पर उभर कर सामने आ रही है । विनाशकारी रसायनो का व्यापार धडल्ले से चल रहा है और वे निरकुश हो विश्व के समस्त भोजन पदार्थों म मिल रहे है । आगामी शताब्दी मे जनसख्या का दबाव भी भारी पड सकता है । स्पष्ट है कि गत कुछ वर्षों म जीवन के लिये सकटपूर्ण पर्यावरणीय घटनाएँ सम्पूर्ण विश्व पर छा गई हैं । पूर्व म विभिन्न विश्वव्यापी दुर्घटनाओं ने जनमानस को झकझोर डाला है । पर्यावरण सकट ऊर्जा सकट व विकास

सकट के भयावह काले बादल सिर पर मडराने लगे हैं। यह सभी विषमताएँ मूल रूप मे समस्त पृथ्वी की पर्यावरणीय समस्यायें हैं जिन पर समय रहते विचार करना तथा उनसे उभरना अति आवश्यक है।

अनेक विकासशील तथा अविकसित देशो म अन्तर्राष्ट्रीय सगठन अर्थ-सम्बधी पर्यावरणीय व्यवस्था मे समस्याएँ उलझा देत हैं और गतिरोध उत्पन्न कर देते हैं। इसका ज्वलन्त उदाहरण है सम्पूण अफ्रीका महाद्वीप। यह ताजा दुखान्तका आर्थिक एव पारिस्थितिक अन्त क्रियाओ की विनाशी भीषण सहारक विभीषिका की वास्तविकता है। तीव्रता से बढ़ती जनसख्या व छोटे किसानो की आवश्यकताओ पर देरी से और बहुत कम ध्यान दिया गया है तथा इस गरीब महाद्वीप से देने की अपेक्षा लिया अधिक गया है। अफ्रीकी देशो द्वारा ऋणो का भुगतान नही हो पाता और उन्ह अपने उत्पादनो के विक्रय पर ही निर्भर रहना पडता है। इस कारण उन्हे लूटा जा रहा है। वे लोग अपनी बहुमूल्य भूमि का अत्यधिक उपयोग कर उसे बजर भूमि व रेगिस्तान म बदले जा रह है। उनके लिये उचित दाम लेकर अपना सामान बेचना कठिन हो रहा है तथा वहा के पारिस्थितिकी तन्त्र पर अधिक दबाव बढ रहा है। दानदाता राष्ट्रो स सहायता भा अपर्याप्त रहती है। यही स्थिति लेटिन अमेरिकी देशो की भी है। ऋण सकट के कारण उनके प्राकृतिक ससाधनो का उपभोग, उनके स्वय के विकास के लिये नही वरन विदेशी साहूकारा के आर्थिक आभारा की पूर्ति मे हो रहा है। सत्य है कि गरीब देशो की अपने अल्प ससाधना के निर्यात की मात्रा बढाने पर भी अपनी बढती हुई गरीबी को स्वीकारने हेतु बाध्य होना पडता है। लेटिन अमेरिका, एशिया, मध्यपूर्व व अफ्रीका मे पहले से ही पर्यावरणीय स्तर मे गिरावट राजनैतिक असन्तोष तथा अन्तर्राष्ट्रीय तनाव का कारण बन गई है। हाल ही मे अफ्रीका की शुष्क भूमि कृषि मे हुआ अधिकाश विनाश किसी सेना के हुए हमले से भी अधिक विनाशकारी है और यह घर फूक नीति साबित हुआ है।

आज विश्व म स्थिति यह है कि पर्यावरण सकट से ग्रस्त अधिकतर सरकारे अपनी जनता को आक्रामक रगिस्तान की अपक्षा हमलावर सेना से सुरक्षा प्रदान करने म अधिक पैसा खच कर रही है। सम्पूर्ण विश्व म सैन्य बल पर कुल दस खरब डालर प्रतिवष खच होता है और यह निरतर बढ़ रहा है। बहुत से देशा म सकल राष्ट्रीय उत्पादन का इतना अधिक अनुपात सेना पर व्यय होता है जिससे सामाजिक विकास की सुविधाओ का भारी हनन होता है। वज्ञानिक अनुसन्धाना स ज्ञात होता है कि एक छोटा-सा नाभिकीय युद्ध ही शीतल तथा अधरी नाभिकाय सर्दी उत्पन्न कर देगा जो

जन्तु व पादप पारिस्थितिकी तन्त्र को पूणरूप से नष्ट कर देगा और विरासत मे प्राप्त हुई पृथ्वी को वीरान तथा मानवरहित बना देगा। इस वतमान पथ-भ्रष्टता के परिणामस्वरूप भावी पीढी के लिय वैकल्पिक मार्ग तेजी स बन्द हो रहे हैं। अम्लीय वर्षा, विश्व का तापमान, ओजान परतो का अध-पतन, विस्तृत मरुस्थलीकरण तथा अनेक प्रजातियो का विलुप्तिकरण जसे भयावह परिणामो को पृथ्वी पर अनुभव किये जाने से पूव आज क नीति निर्धारण करने वाले लोग ही मृत्यु को प्राप्त हो जायेग।

इसलिये जनसख्या वृद्धि, खाद्य सुरक्षा, जातियो तथा प्रजातियो की हानि आनुवशिक ससाधन, ऊर्जा उद्योग तथा मानवीय आवास आदि क्षेत्रो पर ध्यान केन्द्रित कर, उनके उपचार हेतु कुछ अनुशशाऐ प्रेपित की जाती है।

मानव-ससाधन एव जनसख्या

विश्व के अनेक भागो मे जनसख्या विस्फोट हो रहा है तथा उपलब्ध प्राकृतिक सम्पदा द्वारा उनका पोषण सम्भव नही है। यह जन सख्या वृद्धि दर इतनी अधिक है कि आवास, स्वास्थ्य रक्षा, खाद्य समस्या तथा ऊर्जा आपूर्ति के क्षेत्र मे सुधार की यथोचित व्यवस्था करन म असमथ है। वास्तविक समस्या यह रहती है कि जनसख्या सम्बद्ध ससाधनो से किस प्रकार सम्बधित हो और जनसख्या समस्या से पार पाने के लिय प्रयास, गरीबी को मिटाने का होना चाहिये। जनसख्या वृद्धि की दर पर अकुश लगाने के लिय प्रभावी कदम उठाने होगे ताकि जनसख्या 6 अरब पर जाकर स्थिर हो जाय। शिक्षा-सुविधा नौकरिया तथा गभ निरोधक अम्लो की ओर ध्यान देना परम आवश्यक है।

आहार सुरक्षा—शक्ति एव पोषण हेतु

अनाज उत्पादन वद्धि की तुलना म आज विश्व म जन सख्या वृद्धि अधिक तेज गति से हो रही है। प्रतिवप पर्याप्त भोजन न पाने वालो की सख्या बढ रही है। विश्व कृषि पर्याप्त भोजन सामग्री जुटाने मे असफल रही है। एसी भी स्थिति देखने को मिलती है कि एक क्षेत्र मे भोजन उपलब्ध नही होता जहाँ उसकी आवश्यकता होती है। अधिक उत्पादन के लिये मृदा व रसायन का अति उपयोग करने का प्रयत्न किया जाता है—रसायनो क प्रयोग से जल तथा भूमि-प्रदूषण की समस्या बढ जाती है जिससे प्रामाण रेशा का ह्रास होता है। इस कारण विकासशील देशो को फसलो म उत्पादन बढाने के लिये अधिक प्रभावी व्यवस्था की आवश्यकता है तथा वितरण प्रणाली पर विशेष ध्यान देन की आवश्यकता पड जाती है, इसम राजनीति को स्थान नही मिलना चाहिये।

समन्वित ग्रामीण विकास भी इस क्षेत्र म सहयोग दे सकेगा। डा० फ्रैंसिस पैटरो । कहा है कि पर्यावरण विनाश क साथ ही म भोजन सकट को बहुत बड़ा-चढ़ाक र व्यक्त किया जा रहा है। मानव का यह सोचना निराधार है तथा भय भी निराधार है कि बढ़ती हुई आबादी व साथ खाद्योत्पादन का सामजस्य किस प्रकार हो सकेगा ? सयुक्त राज्य अमरिका म गत तीस वर्षों म गहूँ का उत्पादन । 5 टन प्रति हक्टयर स बढ़ कर 2 3 टन प्रति हक्टयर हो गया है अर्थात 53 प्रतिशत वद्धि हुई है। जमनी म भी यह वद्धि दर 77 प्रतिशत था जब कि कृषि मजदूरो की मख्या काफी घट गई है।

20वीं सदी के अन्त तक विश्व की आबादी 9 अरब होने का अनुमान है और अनाज उत्पादन की मात्रा भी दुगुना हो जायगी जबकि आज से केवल 4 प्रतिशत ही अधिक भूमि कृषि कार्यों के उपयोग म लाया जायगी । कहने का तात्पय यह है कि प्रति हक्टेयर उत्पादन की मात्रा भी बढ़ जायगी । सन 1970 म प्रतिहक्टेयर औसत उपज केवल 2 6 लोगों के लिय काफी होती थी परन्तु आने वाले सन् 2000 तक यह हक्टेयर अपनी बढ़ी हुई उपज से 4 व्यक्तियो का पट पाल सकेगा। परन्तु इससे मानव को म तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए कि विश्व म हर व्यक्ति के लिये यथष्ट अनाज उपलब्ध हो सकेगा। जल्दी ही मरुस्थलो दानव के प्रसार को वनीकरण व सिंचाई के साधनों म नियंत्रित करना होगा। विशेषकर अफ्रीका व एशिया महाद्वीपो म मुख्यता अर्थात सूखे के कारण स्थिति डरावनी हो जायगी। रूस चीन इजराइल न यह प्रयत्न किय हैं तथा भारत म भी थार के रगिस्तान प्रसार को रोकने के प्रयास हो रहे हैं। इस दिशा म इदिरा गाधी नहर का निर्माण एक महान उपलब्धि है।

पादप व जन्तु प्रजातियां, पारिस्थितिक तत्व विकास हेतु साधन —

भूतल पर आज अनेक पादप व ज तु प्रजातिया तनाव की स्थिति म जी रही हैं, तथा तीव्रगति से विलुप्तीकरण की ओर अग्रसर हो रही ह, ऐसा पृथ्वी पर पहले कभी नहीं देखा गया । यह आवश्यक हो गया है कि इस प्रक्रिया को रोकना होगा। जीवमण्डल तथा पारितन्त्र की सामा य व सम्पूण क्रियाशीलता के लिए जीवो म विविधताओं का होना जरूरी है क्योंकि व य प्रजातियो की आनुवंशिक तत्व विश्व आर्थिकी मे प्रति वष उन्नत नसलो, नवीन औषधियो व उद्योगो के लिये कच्चे माल के रूप म अरबो डालरो का महत्वपूण योग देते है। इस उपयोगिता के अतिरिक्त भी व य जीवो के सरक्षण के नतिक नसर्गिक, सास्कृतिक तथा विशुद्ध वज्ञानिक पहलू भी ह । अत व य जीवो की विलुप्त होती प्रजातियो तथा नष्ट होते हुए पारित त्रो को सुधारने के कार्यो की समुचित व्यवस्था, राजनैतिक आधार पर उसे एक आर्थिक व ससाधनीय मुद्दा बनाना होगा।

ऊर्जा का पर्यावरणीय व विकास हेतु विकल्प —

विनाशरहित विश्व की कल्पना ही विकास की सीढी है, इसे प्राप्त करने के लिये सुरक्षित एव पूर्ति योग्य ऊर्जा पथ का होना नितात आवश्यक है जिसे हम आज तक नही खोज पाये हैं। ऊर्जा प्राप्ति की वृद्धि दर बराबर घटती जा रही है। इन परिस्थितियो मे औद्योगीकरण कृषि विकास तथा बढती हुई जन-सख्या के लिये अधिक ऊर्जा की जरूरत होगी। आज सहारा के मरुस्थल मे वहा के नागरिको की तुलना मे औद्योगिक बाजार का एक औसत मनुष्य 80 गुना अधिक ऊर्जा का उपयोग कर रहा है अर्थात विकासशील देशो मे प्राथमिक ऊर्जा उपयोग को समुचित मात्रा मे बढाने की व्यवस्था की जानी चाहिये। सन् 2025 तक विकासशील देशो को ऊर्जा उपयोग की दृष्टि से औद्योगिक देशो के स्तर तक पहुचने के लिये विश्व ऊर्जा उपयोग को 5 गुना बढाना होगा। परन्तु पारिततन्त्र ऐसा करने मे समर्थ नही होगा क्योकि जीवाश्म ईंधन ससाधन पर्याप्त नही है। यह तभी सभव हो सकता है जब अयोग्य ईधन की पुनर्विनिकरण पद्धतियो की खोज की जाय। विश्व तापमान तथा पर्यावरणीय अम्लीयता की चेतावनिया प्राथमिक ससाधनो की आधुनिक स्थिति पर आधारित ऊर्जा उपयोग का शायद ही दुगुना कर दे। इसलिये आर्थिक विकास का कोई नया युग, अतीत के विकास की अपेक्षा कम ऊर्जा निभरतावाला होना चाहिये।

विकासशील देशो मे लाखो लोग जलाऊ लकडी के अभाव मे रह रहे हैं जो कि विश्व की आधी मानव जाति के लिये मुख्य घरलू ऊर्जा का साधन है और जिनकी सख्या निरतर बढ रही है। लकडी की कमी वाले देशो को उनके कृषि-क्षेत्रो को इस प्रकार विकसित करना होगा कि अधिक से अधिक मात्रा मे लकडी तथा पादप ईंधन प्राप्त किया जा सके, परतु यह सम्भव नही लगता। दूरगामी भविष्य मे मानव प्रगति को बनाये रखने के लिय सुरक्षित पर्यावरणीय सुदृढ़ जीवात ऊर्जा पथ आवश्यक है और विश्व ऊर्जा सरचना के लिये, जीव का कार्य करने वाले पुनर्वीनी कृत ससाधनो पर आधारित निम्न ऊर्जा पथ विकसित करने होगे। वैकल्पिक ऊर्जा का विकास इस गरज से भी करना होगा कि विद्युत ऊर्जा के लिये कोयला, पेट्रोल व जल की आवश्यकता होती है और उनकी कमी के कारण कोयल व पट्रोल की पूर्ति नही होगी। आज अन्य देशो की भांति भारत मे भी अणुऊर्जा पैदा करना आरम्भ कर दी है परन्तु भारत जसे गरीब देश के लिय महगी और प्रदूषण से भरी है। हम सन् 2001 तक 16 0000 मेगावाट विद्युत-शक्ति की आवश्यकता पडेगी, और इसके लिय सौरऊर्जा पवन ऊर्जा, जल-ऊर्जा तथा बायोगैस जैसे साधनो को जुटाना होगा जो अपेक्षा सस्त तथा प्रदूषण

रहित सिद्ध होंगे। साथ ही उन्नत किस्म के निर्धूम चूल्हे तथा उन्नत विद्युत शवदाहों का भी विकास करना होगा जिसमें महती आवश्यकता इस बात की है कि पर्यावरण प्रदूषण रहित बना रहे।

(1) सौर ऊर्जा—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के अनेक सौरमण्डलों में से हमारा सौर मण्डल भी एक है जिसका केन्द्र बिन्दु सूर्य है। यह हमसे 15 करोड़ किलोमीटर की दूरी पर है तथा उसका व्यास 13 लाख 12 हजार किलोमीटर है। इसका वजन पृथ्वी से 3,30000 गुणा ज्यादा है तथा आकार में यह पृथ्वी से 110 गुणा बड़ा है। सूर्य अनेकों गैसों का भण्डार है जिसकी परत 16,000 किलोमीटर मोटी है। यह सूर्य प्रतिक्षण अपनी 56 करोड़ 40 लाख टन हाइड्रोजन को जलाकर 56 करोड़ टन हिलीयम में परिवर्तित कर देता है। अनुमानतः यह प्रक्रिया गत 5 अरब वर्षों से चल रही है। वैज्ञानिकों के मतानुसार हाइड्रोजन के नष्ट होने और अपनी ऊर्जा को वितरित करने का यही क्रम यदि बना रहे तो और यह गति 150 वर्ष तक चलती रही तो भी सूर्य अपनी ऊर्जा शक्ति का केवल एक प्रतिशत से भी कम खर्च कर पायेगा। इससे सूर्य की प्रचण्डता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है जो कभी भी क्षीण नहीं होने वाली ऊर्जा साधन के रूप में सदैव प्रयुक्त होती रहेगी।

वर्तमान में इजरायल ऐसा देश है जहां दैनिक जीवन में एक परिवार में सौर ऊर्जा का ही उपयोग हो रहा है। अन्तरिक्ष उड़ान में निरन्तर ऊर्जा मिलती रहे इसलिए सौर बैटरियों का निर्माण किया गया है जो अन्तरिक्ष यानों को ऊर्जा प्रदान करती है। लेकिन भूतल पर सूर्य की किरणें 9 10 घण्टे तक ही उपलब्ध होती है अतः अब ऐसी बैटरियों का विकास करना होगा। यह सौरताप का अवशोषण कर लम्बे समय तक उसे सुरक्षित रख सकती है। आजकल गावों में विद्युतीकरण, टेलीविजनों का संचालन, पंखे तथा मशीनें चलाने के लिये तथा खाना पकाने के लिए सौर-चूल्हों का प्रयोग निरंतर बढ़ता जा रहा है। भारत में यह प्रयोग बहुत उपयोगी सिद्ध होगा, इसमें किसी प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं हैं।

(2) निधूम चूल्हे —भारत में अपने परम्परागत चूल्हों जिनमें लकड़ी ही जलायी जाती है, इसका दूसरा विकल्प नहीं है अतः इन परम्परागत चूल्हों को ही उन्नत कर लेना एक महत्वपूर्ण कदम होगा। ऐसे चूल्हों में धूंआ नहीं निकलता, इस कारण आंखों पर कुप्रभाव नहीं पड़ता तथा रसोई घर भी गंदा नहीं होता। आग की लपटों के कारण फफड़ों की बीमारियों से भी सुरक्षा मिलती है। उन्नत किस्म के चूल्हों से 10 पेड़ों को काटना भी रोका जा सकता है क्योंकि इनमें अन्य चूल्हों की अपेक्षा ⅓ कम ईंधन ही खर्च

होता हैं। देश मे वतमान मे ऐसे लगभग 18 लाख चूल्हे लग चुके हैं। भारत सरकार ने अपने विशेष कार्यक्रम के अनुसार सातवी पचवर्षीय योजना मे 2 करोड़, आठवी योजना मे 4 करोड़ तथा नवी योजना काल मे 9 करोड़ निर्धूम चूल्हे लगाने का लक्ष्य रखा है।

(3) बायोगस सयत्र —गोबर के अतिरिक्त सीवेज, तरकारिया, झूठी पत्तलें, जल कुम्भी, मल-मूत्र आदि से बायोगैस तैयार की जा सकती है। भारत सरकार ने इस ऊर्जा प्राप्ति की योजना 1980-81 म स्वीकृत की थी। गोबर के कण्डे द्वारा 11 प्रतिशत केरोसीन तेल द्वारा 48 प्रतिशत ताप शक्ति प्राप्त की जाती है गोबर गैस द्वारा 60 प्रतिशत ताप क्षमता का उपयोग किया जा रहा है। बायोगस से ईंधन व खाद दोनो ही प्राप्त होती है। यह अनुमान लगाया गया है कि भारत मे पैदा होने वाली गोबर से केवल यदि गैस बनायी जावे तो समस्त ग्रामोण परिवारो की इधन की समस्या हल हो सकती है और चूल्हो मे लकडी जलाने की आवश्यकता भी नही पडेगी। वतमान म सिफ 30 प्रतिशत गोबर ही जलाने के काम आता है। यदि इसे जलाया न जाकर गैस तयार की जाये तो 69500 लाख लीटर कैरोसीन तेल की प्रतिवष बचत की जा सकती है। गोबर गैस म 55-56 प्रतिशत मीथेन गैस होती है। जो अधिक ज्वलनशील, गधहीन, रगविहीन और साथ ही विषैली भी नही होती। इसमे 30-40 प्रतिशत कार्बन-डाई-आक्साइड, 5-10 से प्रतिशत हाइड्रोजन तथा 1-2 प्रतिशत नाइट्राजन विद्यमान रहती है। ऐसा भी अनुमान हैं कि एक व्यक्ति को भोजन बनाने के लिय 350-400 लीटर गस प्रतिदिन जरूरी है तथा इसके लिये 10 किलोग्राम गोबर की आवश्यकता होगी।

बायोगैस सयत्र से उपलब्ध खाद की उवरता, खड्डे की खाद से 43 प्रतिशत अधिक होती है। इस खाद मे नाइट्रोजन 1 8 से 2 5 प्रतिशत फस्फोरस 1 0 से। 2 प्रतिशत एव पोटाश 0 6 से 1 8 प्रतिशत होती है जबकि गाबर की खड्डे वाली खाद मे नाइट्रोजन 0 5 से 0 7 प्रतिशत, पोटाश व फोस्फारस 0 5 प्रतिशत ही होता है।

(4) पवन चक्किया —यूरोप के कई देशो म कुछ शताब्दियो से ही पवन चक्कियो का उपयोग किया जा रहा है। भारत म भी ऊर्जा प्राप्ति के साधनो के रूप मे वातो अथवा पवनो का प्रयोग आरम्भ हो गया है। विश्व मौसम विज्ञान सगठन के अनुसार केवल वायु वेग से ही सारी दुनिया के विद्युत स्टेशनों द्वारा उत्पादित विद्युत ऊर्जा का 10 गुना पैदा करना सभव हो सकेगा। अमेरिका मे नासा तथा जमनी की सरकारें पवन-चक्कियो के पुनर्जीवित करने म लगी हुई हैं लेकिन इनका पुनर्गमन क्या उर्जा का साथक हल पेश कर सकेगा? इसमे सशय है। जमन ऊर्जा की खपत की

10 प्रतिशत आपूर्ति के लिये जर्मनवासियों को योरोप के समूचे उत्तरी सागर तट पर 40,000 आधुनिक हवाई टरबाईनों का निर्माण करना होगा और ऐसी हर टरबाईन 1 मेगावाट ही उत्पन्न कर सकेगी।

(5) जल विद्युत ऊर्जा स्रोत —नदियों पर विशाल बांध बनाकर जल-विद्युत प्राय विश्व के अनेक देशों में प्राप्त होने लगी है तथा औद्योगिक देशों ने ऐसी उन्नति के कोई अवसर अब नहीं छोड़े हैं और तीसरी दुनिया में तो इसके विकास की सम्भावनाएँ असीमित हैं। कुछ अन्य न समाप्त होने वाले वैकल्पिक स्रोतों में ज्वारभाटा (tides), सागर जल के परिवर्तनशील ताप तथा भूतापीय ऊर्जा जैसे साधनों का अधिक से अधिक उपयोग किया जा सकता है। अन्य वैकल्पिक साधनों के पक्षधर तो यहां तक कहते हैं कि सुरक्षित शक्ति के अथाह भण्डार आज भी मौजूद हैं जिनका दोहन बहुत लम्बे अर्से तक किया जा सकता है यथा धरती तक पहुंचने वाली सौर ऊर्जा की मात्रा ही हमारी ऊर्जा सम्बन्धी वार्षिक आवश्यकता से 10,000 गुनी अधिक है। विश्व का सालाना जीव-भार (biomass) उत्पादन भी 75,0000 लाख टन कच्चे तेल के बराबर है।

यूरोप ने जीवभार पद्धति पर प्राप्त होने वाली ऊर्जा उत्पादन समस्या भी भिन्न नहीं है। ब्राजील (दक्षिणी अमेरिका) में अब तक 7,00,000 मोटरगाड़ियां गन्ने से निर्मित इथेनाल से चलने लगी है। ब्राजील का 2 प्रतिशत क्षेत्रफल ही इतना बड़ा है कि उसमें यूरोप के बेल्जियम, आस्ट्रिया व स्वीटजरलैंड तक समा जायं, परन्तु क्या घनी आबादी वाले देश ब्रिटेन व जापान में इथेनाल क्रान्ति सम्भव है। ब्राजील में तो गन्ने की तीन फसलें बोई व काटी जा सकती है, पर यूरोप के मध्यवर्ती भाग में जलवायु इसके लिये उपयुक्त नहीं है। भारत इस दिशा में अवश्य कुछ कर सकता है।

(6) परमाणु ऊर्जा —वर्तमान में यह स्पष्ट हो चुका है कि बड़े स्तर पर परमाणु ऊर्जा का प्रयोग ही आगे आने वाले वर्षों में ऊर्जा-आपूर्ति के टेढ़े मढ़े विवादों का हल प्रस्तुत करेगा। यह भी सौ-फीसदी सही है कि परमाणु ऊर्जा की उपेक्षा करना राजनीतिक स्तर पर ब्लैकमेलिंग को निमंत्रण देना है। विरोधियों की मान्यता है कि परमाणु शक्ति इतनी खतरनाक है कि उसे किसी भी प्रकार न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। यह भी सत्य है कि इसके दुरुपयोग की आशंकाएँ बहुत अधिक हैं। युद्ध काल में शत्रु परमाणु बमों का उपयोग कर सकता है और रिएक्टरों को दुर्घटनाग्रस्त भी कर सकता है जो अवश्य ही घातक सिद्ध होंगे-एक ऐसी ही दुर्घटना लाखों की लोगों जान लेवा हो सकती है।

लेकिन साथ ही सोचने की बात यह है कि इस प्रकार उससे मिलने वाली भारी सुविधाओं से भी वंचित रहने का खतरा मोल ले रहे हैं। किसी भी

विकसित देश मे यदि दो दिन भी बिजली गायब हो जाय तो चारो ओर तहलका मच जाता है। प्रशीत घरो तथा रेफ्रीजेनरेशन मे रखी लाखो व करोडो की खाद्य वस्तुऐं नष्ट हो जाती हैं। अस्पतालो में जन-जीवन पर यन्त्रिक उपकरणो की चूक के कारण घातक प्रभाव पडता है। गायो का दूध मशीनो के माध्यम स दुहा जाता है, डेयरी फार्मों पर मशीनो से दुही जाने वाली गायो, भैसो के थन फट जायेंगे। ऐसे सैंकडो व हजारो उदाहरण दिये जा सक्ते हैं। बहुमजिली इमारता म लोगो का अपने कार्य पर पहुचना दूभर हो जाएगा।

ऊजा प्राप्ति के लक्ष्यो म खतरे तो हैं ही परतु इसका तात्पय यह कदापि नही हो सकता कि हम अपने उन लक्ष्यो की ओर से पूणतया विमुख हो जाय। सोचा जाय कि जल विद्युत ऊर्जा ही एक मात्र कम खतरे वाला विकल्प हो सक्ता है और परमाणु ऊर्जा के सभी सयत्रो पर रोक लगा दी जायें तो ऐसा नही हैं। जहा तक कम खतरनाक होने का दावा किया जाता है तो वास्तविक्ता यह है कि बाधा के टूटने व दुघटनाओ के कारण मानव जीवन का जितना विनाश हुआ है, इसी साधन स हुआ है। बाध बार-बार टूटते रह हैं तथा भविष्य म अब नही टूटेंगे, इस बात की कोई भी भविष्य-वाणी नही की जा सकती है। आज जितने भी बडे बडे, विशाल जलाशयो का निमाण किया जाता है, खतरे उतने ही अधिक बढ जाते हैं। फिर आण्विक ऊर्जा के आसन्न खतरो से डरने की आवश्यकता नही— नारे तो समस्त तथा कथित 'हानिरहित व सुरक्षित' माध्यमो के विरोध मे भी लगते रहे हैं और लगते रहेंगे। बहरहाल आवश्यक्ता इस बात की है कि हम खतरो के साथ जिदा रहने की अनिवायता को तो स्वीकार कर ल। हमको एक ही समय मे भाति-भाति के खतरो के साथ रहने को बाध्य होना पडगा क्योकि कोई भी ऐसी तकनीक अभी तक ज्ञात नही हो सकी है जिसे हानि-रहित अथवा सुरक्षित' कहा जा सके।

औद्योगीकरण-अल्प ससाधन व अधिक उत्पादन —

ऐसा अनुमान है कि सन 1950 की तुलना म आज विश्व मे औद्योगिक उत्पादन 7 गुना अधिक हो गया है तथा 21वी शताब्दी के आरम्भ होने तक वतमान जनसख्या वद्धि की दर को देखते हुए विकासशील देशो मे उत्पादन व उपभोग को औद्योगिक देशो के समान स्तर पर लाने के लिये उत्पादन की मात्रा में 10 गुना वद्धि की आवश्यक्ता होगी। विकसित राष्ट्रो मे जिस नवीन तक्नीको का विकास किया गया यह है, वे अवश्य ही अधिक उत्पादन बढती दक्षता और घटते प्रदूषण का रास्ता देती है, परन्तु यह तकनीकी नये विषैल रासायनिक पदार्थों व अपशिष्ट पदार्थों तथा अकल्पनातीत बडी दुघटनाओ के खतरो से खाली नही हो सक्ती। ऐसी कोई गारन्टी नहीं

मिल सकती कि औद्योगीकरण से मानव केवल उन्नति की ओर ही अग्रसर होगा और वह भी विनाश रहित। विश्व के राष्ट्रा को अनुचित औद्योगीकरण की कीमत को चुकानी ही पडेगी और बहुत से विकासशील देश तो अनुभव भी करते हैं कि उनके पास न तो पर्याप्त ससाधन हैं और न इतना समय व धन है कि जल्दी ही कोई तक्नीकी परिवतन ला सकें, पर्यावरण को अभी विगड जाने दें और बाद मे उसम सुधार कर लिये जावेंगे। मानव जीवन मे आवश्यक्ताओ की पूर्ति जिन उद्योगो से हो सकती है, ऐसे उद्योगो मे धन लगाकर समुचित विकास की महती आवश्यक्ता है अ यथा धन का अविरल प्रवाह ही रुक जावेगा। इसके नियान्वण मे औद्योगिक राष्ट्रो स सूचना व सहयाग की भारी आवश्यक्ता होगी।

शहरीकरण की चुनौतियाँ—

इस बात मे कोई अतिशयोक्ति नही है कि इक्कीसवी शताब्दी का ससार मुख्यत 'शहरी विश्व' हागा क्योकि विश्व की लगभग आधी आबादी शहरा मे रहने लगेगी। ऐसा अनुमान है कि 70 वष के पश्चात, विकासशील देशो की शहरी आबादी 10 गुणा वढ़ चुकी हागी जो कि 1920 मे लगभग 10 करोड थी और आज एक अरब हो चुकी है। सन् 1940 मे 100 मे से एक व्यक्ति दस लाख या अधिक आवादी वाले शहर मे रहता था सन 1980 मे 10 म एक व्यक्ति शहरा मे रहने लगा है तथा वष 1985 से 2000 तक ऐसे शहरो मे वतमान एक अरब लोगो का 3/4 भाग और बढ जायगा। साफ दिखाई दे रहा है कि आगामी कुछ वर्षों म विकासशील राष्ट्रो को अपनी उत्पादन क्षमता 65 प्रतिशत तक बढ़ाने की आवश्यकता होगी और शहरी-सेवाएँ आवास व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान देना होगा वरना अभाव की विकट तथा विकराल स्थितियो का सामना होगा।

जन-सख्या विस्फोट और शहरीकरण के कारण सरकारा के समाने ऊर्जा ससाधन प्रशिक्षित व्यक्ति, भूमि सेवाये और मानव जीवन की सुख सुविधाआ सम्बधी आवश्यकताएँ यथा स्वच्छ जल, शिक्षा, अस्पताल सेवाएं आदि की समस्याएँ रहती हैं। दूसरी ओर असख्य झुग्गी झापडिया कुकुरमुत्ते के समान बढ जाती हैं। भीड बढ जाती है जिसके कारण सक्रामक रोगो के प्रसार के आसार भी बढ जाते हैं—जो अस्वास्थ्यकर पर्यावरण को जन्म दता है। औद्योगिक राष्ट्रो म शहरी सभ्यता का उदय होता है जिसम विगडता हुआ सौन्दय, पर्यावरण अवनति, अन्त नगरीय क्षरण व टूटते हुए मानव रिश्ते प्रमुख हैं।

विश्व के समक्ष प्रदूषण की समस्याएँ—खाद्य सामग्री की कमी प्राकतिक सम्पदा के चूकते स्रोत प्रदूषण का विकराल भूत और ऊर्जा सक्ट की चीख पुकार के बीच सास लेना तथा मिमक्ता आदमी सोचने को वाध्य है कि अब हम अपनी जानी-पहचानी दुनिया म नही बल्कि अनगिनत सक्टो व दुश्चिताओ

से घिरे घर मे कैद होकर रह गये हैं, हमारी स्वच्छ दता कभी की समाप्त हो चुकी है। प्रश्न यह है कि क्या सचमुच इन सारी समस्याओ और चिन्ताओ का कोई वास्तविक आधार है, या यह केवल एक मानसिकता बनकर रह गयी है ? क्या हमारे पास अपनी ही कृत्य उन समस्याओ का कोई जवाब है ?

1 हम अपनी ही धरती की खनिज सम्पदा को स्वय लूट रहे है ?

2 हवा, पानी तथा मृदा (मिट्टी) म जहर घोल रहे हैं ?

3 प्रकृतिक आवासो को तहस-नहस कर, लाखो की सख्या म पादप और जन्तुओ को बेघर कर रहे है तथा उनको लुप्त होने की ओर धकेल रहे हैं ?

4 ऊर्जा की कमी का अनोखा तथा विकराल रूप देखने को मिलने वाला है ?

5 हम जिस डाल पर बैठे है उसी को काटने का प्रयत्न तो नही कर रहे है ?

इस सदभ मे प्रसिद्ध अमेरिकन पारिस्थितिकवेत्ता फोलिक्स आर पैंटूरी ने इसे केवल (निरी) मानसिकता कह कर सम्बोधित किया है और तथ्या पर आधारित आश्वासन दिया है कि इन सकटो से किसी भी प्रकार घबराने की आवश्यकता नही हैं, यहा केवल प्रबध (management) तथा प्रशासन (administration) की आवश्यकता अधिक महत्वपूण है।

सन् 1920 मे भूगभ विज्ञानियो ने ससार के तेल भण्डारो का अनुमान लगाते हुए उसकी मात्रा 60 000 लाख टन आकी थी परन्तु आज कहा जाने लगा है कि 600,000 लाख टन का उपयोग कर लेने के बाद भी ज्ञात तेल मण्डल मे 870,000 लाख टन तेल के भण्डार बचे हुए हैं। अज्ञात तेल होओ की खोज की जा सकती है। उनमे 1,500,000 लाख टन तेल और भी मिलने की सम्भावना है। कुछ लोगा का कथन है कि सुरक्षित तेल भण्डारा का अनुमानित सार तो और भी अधिक है जो न्यूनतम 2,700,000 लाख टन से अधिकतम 6,500,000 लाख टन हो सकता है। यह भी कहा जाता है कि तैलीय-बालूकाराशि और तल-चट्टाना म भी 7,000,000 लाख टन तेल के भण्डार छिपे पडे हैं। इनका ½ भाग तो बिना अतिरिक्त व्यय के आज भी प्राप्त किया जा सकता है।

प्राकृतिक खनिज गसो के विषय मे भी इसी प्रकार की आशावादी अभिव्यक्तिया की गई हैं। एक अन्दाजा यह है कि हम लगभग 200 000 लाख टन गैस का अब तक उपयोग कर चुके है। सुरक्षित भण्डारा म 1,800,000 लाख टन से 4,000,000 लाख टन गैस अब भी मौजूद है।

ब्राउन कोल तथा पिटकोल की अनुमानित राशि तो और भी उत्साहवर्धक दिखायी पडती हैं। 1 4 बिलीयन टन के सुरक्षित भण्डारा म तो इतना कोयला छिपा पडा है कि पूरी दुनिया इसे 500 वर्षों तक बिना हिचक उपयोग म ला सकती है।

औद्योगिकरण के बालपन के 70-80 वर्षों में पर्यावरण को जितनी हानि हुई है उसके उपचार को जटिल तकनीक भी सम्पन्न दशा के पास है। भले ही इस उक्ति में विरोध का आभास मिलता हो परन्तु 'स्वच्छ' तकनीक का मार्ग औद्योगिक सम्पन्नता एवं तकनीकि विकास से ही प्रशस्त हो सकेगा। इसके रास्ते विकास में यता से नहीं निकलते हैं। 90 प्रशस्त कार्बन-डाई-ऑक्साइड उत्सर्जन का कारण केवल तेल, कोयला व गैस को जलाना है और गत 15 वर्षों में तो औद्योगिक देशों में ऊर्जा की खपत भी 50 प्रतिशत बढ़ गई है परन्तु वायुमण्डल में सल्फर-डाई ऑक्साइड की मात्रा स्थिर बनी हुई है। धूल की मात्रा भी गत वर्षों में लगातार घटती रही है। सन् 1970 में जर्मनी के सबसे बड़े औद्योगिक क्षेत्र शहर में 260 हजार टन धूल जमी हुई थी परन्तु 7 वर्ष के बाद इस धूल की मात्रा केवल 150 हजार टन रह गई और यह क्रम अब भी जारी है। कहना सही ही प्रतीत होता है कि विगत 15 वर्षों से जल-प्रदूषण भी घटने की स्थिति में है। इसका अर्थ यह नहीं निकाल लेना चाहिये कि हमारी नदियां व झीलें स्वच्छ बनती जा रही हैं।

इसी संदर्भ में एक अन्य उदाहरण और भी मिलता है। सन 1963 में श्री लंका देश में डी० डी० टी० का प्रयोग निषिद्ध कर दिया गया था क्योंकि विश्व भर के आंकड़े यह दर्शा रहे थे कि कीटनाशी पेड़ पौधों, जन्तुओं तथा मानव-जाति के लिये घातक हैं। भोजन तत्वों के साथ डी० डी० टी० जन्य-उत्पादों यहां तक की मां के दूध में भी सकेन्द्रित हो जाता है और बहुत से उपयोगी कीटों का भी विनाश कर देता है। यह सभी आंकड़े अपने स्थान पर सही थे। इसका असर यह हुआ की सन् 1963 के पश्चात मलेरिया के रोगियों की संख्या निरंतर बढ़ने लगी। सन 1969 में यह संख्या 10 लाख तक पहुंच गई और इनमें से 1/3 लोग मृत्यु का आलिंगन कर कालग्रस्त हुए। डी० डी० टी० स्वास्थ्य के लिये हानिकर अवश्य था परंतु अब तक इसके कारण कोई गम्भीर नुकसान या मौत की खबर नहीं मिली थी। अंततः श्री लंका की सरकार ने डी० डी० टी० पर लगाई निषेधाज्ञा को हटा ली।

इस सबका निष्कर्ष यह है कि वायु जल, मिट्टी, वनस्पति, जीव-जन्तु तथा आकाशीय रिश्ता में संतुलन स्थापित करने हेतु किया गया कार्य नैतिक मूल्यों पर खरा उतरता है जबकि अपनी स्वार्थ पूर्ति हेतु प्रकृति के सन्तुलन को विध्वंस करना अनैतिक कार्य है। मनुष्य विश्व का सबसे अधिक चिंतनशील एवं प्रकृति की अनूठी शान है। प्रकृति ने जीव-जन्तुओं, वनस्पति, नदी-पहाड़, वायु जल खनिज सम्पदा आदि की रचना की है। अतः मानव-समाज का यह पावन कर्त्तव्य है कि प्रकृति की विविध आयामी देन का विवेक सम्मत संतुलित उपभोग करता हुआ हमारे समाज और राष्ट्र के भौतिक-आध्यात्मिक विकास में युगानुकूल अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाये। □ □

पारिभाषिक शब्दावली

अकशेरुकी—Invertebrates
अकार्बनिक—Inorganic
अजीवीय—Abiotic
अपरद—Detritus
अपमार्जक—Detergents
अपशिष्ट—Waste
अवसादी—Sedimentary
अन्तरिक्ष—Space
अम्ल—Acid
अवशोषण—Absorption
आहार कड़ी—Food Link
आहार जाल—Food Web
आहार शृंखला—Food Chain
आन्त्रशोथ—Gastro-Intestinal
ईंधन—Fuel
उत्पादक—Producer
उत्परिवर्तन—Mutation
उत्पत्ति—Origin
उपभोक्ता—Consumer
उर्वरक—Fertilizers
ऊष्मीय—Thermal
ऊर्जा प्रवाह—Energy Flow
ऊर्जा स्तूप—Pyramid of Energy
कवकनाशक—Fungicides
कशेरुकी—Chordates
कार्बनिक—Organic
कार्यिकी—Physiology
कीटनाशक—Insecticides
कृषि—Agriculture
क्रियान्वित—Operate
खरपतवार—Weeds
चक्र—Cycle
चारण—Grazing
जनसंख्या—Population
जस्ता—Zinc
जलवायु—Climate
जीवमण्डल—Biosphere
जीव-भार—Biomass
जीवाणु—Bacteria
जैव-गैस संयंत्र—Bio gas plant
दुर्लभ—Rare
डिंभक अवस्था—Larval Form
नाभिकीय—Nuclear
नियंत्रण—Control
निष्पत्रण—Defoliation
पर्यावरण—*Environment*
स्थायित्व—Homoestasis
पारिस्थितिक तंत्र—Ecosystem
पारिस्थितिक अनुक्रमण—Ecological Succession
पारिस्थितिक विकास—Ecological Evolution
पारिस्थितिक परिवर्धन—Ecological Development
पारिस्थितिक स्तूप—Ecological Pyramids
परजीवी—Parasite
पारितंत्र—Ecosystem
पुनः निविष्ट Feed Back
पुनः चक्रण—Recycling
पिटिकाकार—Acneform
पीड़कनाशक—Pesticides
प्रकीर्णन—Dispersal
परिवर्धन—Development
प्रकाश संश्लेषी—Photo-synthetic
पोषण-स्तर—Trophic Level
प्रदूषण—Pollution
प्रदूषक—Pollutant

प्रशीतन—Cooling
प्रवाही जल—Lotic Water
मृतोपजीवी—Saprophyte
मासाहारी—Carnivore
रक्ताल्पता—Anaemia
रेडियोधर्मिता—Radio-activity
रेडियो-समस्थानिक—Radio-isotopes
रूपा तरकारी—Transformers
वन्यजीव—Wild Life
व ध्याकरण—Sterilization
विघटक—Decomposer
विस्फोटक—Explosion
शाकनाशक—Herbicides
शाकाहारी—Herbivores
शैवाल—Algae
स्थूल शारीरिकी—Anatomy
समष्टि—Population
समुदाय—Community
स्वपोषित—Autotrophic
सतुलन—Balance
स्वास्थ्य—Health
सम्पदा } —Resources
ससाधन }
सागर—Ocean
सीसा—Lead
सा द्रता—Concentration
स्थिर जल—Lentic Water
सरक्षण—Conservation
सौर अभिवाह—*Solar Flux*
स्तनधारी—Mammal
हृदयरोग—Cardio-Vascular

□ □